

87

जुलाई-दिसम्बर, 2024

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066

UGC Care List, Group-C (Multi disciplinary), Sl. no.-15

(अंक-87, जुलाई-दिसम्बर, 2024)

संरक्षक

प्रो. नीलिमा गुप्ता

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव

सम्पादक

डॉ. अनिल कुमार तिवारी

डॉ. आशुतोष कुमार मिश्र

डॉ. वंदना राजोरिया

डॉ. संजय यादव

डॉ. विवेक जायसवाल



डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सागर (मध्यप्रदेश)-470003

सम्पादकीय परामर्श मण्डल

- प्रो. आनंद प्रकाश त्रिपाठी
- प्रो. अशोक अहिरवार
- प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत
- प्रो. डी.के. नेमा
- प्रो. नागेश दुबे
- प्रो. अनुपमा कौशिक

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

अंक-87, जुलाई-दिसम्बर, 2024

ISSN 0974-0066 (पूर्व-समीक्षित अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका)

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

UGC Care List, Group-C (Multi disciplinary), Sl. no.-15

प्रकाशित रचनाओं के अभिमत से डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर या सम्पादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है तथा यहाँ प्रकाशित आलेखों की 'प्लेजिरिज्म' (Plagiarism) सम्बन्धी शुचिता की जिम्मेदारी लेखकों की है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार:

मध्य भारती

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर - 470003 (म.प्र.)

सदस्यता शुल्क		आजीवन
प्रति अंक	व्यक्तिगत	संस्थागत
रु. 150 / -	रु. 2000 / -	रु. 4000 / -
रु. 200 / -		

ई-मेल : madhyabharti_ss@dhsgsu.edu.in

मुद्रण:

जैना ऑफसेट प्रिंटर

शाहिबाबाद (यू.पी.)

अनुक्रम

वाचिक परम्परा में श्रीमद्भागवतम् प्रो. बी.के. श्रीवास्तव	7
वर्धा के खोजा समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का मानवशास्त्रीय विश्लेषण वीरेन्द्र प्रताप यादव	17
हिंदी कविता में आदिवासियत : स्वप्न और संघर्ष संजय नाईनवाड	25
बगवाल-सामरिक अभ्यास से धार्मिक परम्परा तक: देवीधूरा के विशेष सन्दर्भ में ऋचा जोशी	35
जजिया कर और हिन्दू प्रतिरोध : एक मूल्यांकन शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय	44
बाल श्रम तथा भारत सरकार की नीतियां : दिल्ली के संदर्भ में स्मिता अग्रवाल, अभय कुमार शुक्ल	57
एडमिरल ए. टी. महान के नौशक्ति सिद्धांत के आलोक में भारतीय सामुद्रिक उदय: संभावनाएं एवं चुनौतियाँ डा. लखन सिंह कुशरे	72
भारतीय पुनर्जागरण में सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका आभा सिंह	84
Kerala Renaissance through the Lens of Women's Autobiographies Joseph Mathew, Minna Ann Andrews	96

Women in Male Dominated Occupations: A Sociological Analysis <i>Priya Garg, Kali Nath Jha</i>	104
Mathematics for Students with Special Needs in Inclusive Classroom <i>Adya Shakti Rai, Rajni Ranjan Singh</i>	112
Reproductive Colonisation of Women in Margaret Atwood's The Handmaid's Tale <i>Anshul Dhankar, Devendra Kumar Sharma</i>	127
Is the Problem of Subjectivity a Pseudo-Problem? <i>Madhu Mangal Chaturvedi</i>	134
Digital Transformation, and Digital Leadership for Sustainable Development in India's Higher Education System <i>Neelam Tripathi, Meenakshi Harraw Verma</i>	143
Wellbeing of Adolescents in Kerala: EPOCH and PERMA Dimensions <i>Asha Mathew, Manish Kumar Verma</i>	157
Regulatory Framework Challenges in Managing the Gig Economy in India <i>Honey Soni, Pushpa Suryavanshi</i>	172
Jhanda Satyagraha with special reference to Sagar <i>Naveen Gideon</i>	179

Emojis in Communication: Understanding Misunderstandings and Emotional Expression <i>Advitya Indu Mahajan, Rashi Taggar</i>	187
Unveiling Reality: Sci-Fi, Upaniṣadic Wisdom, and the Post-Truth Paradigm <i>Vandana Rajoriya</i>	202
A Sociological Study of Nats in Bihar <i>Preeti Dwivedi</i>	211
Exploring Spiritual Ecology and Animistic Wisdom in Mamang Dai <i>Shweta Singh, Divya Joshi</i>	221
Deconstructing Patriarchy: Zero Tolerance and Mindset Shift for Gender Justice <i>Surendra Kumar Yadawa</i>	234
Renewable Energy and Its Role in India's Economic Growth: An Econometric Analysis <i>Mouneshwari G, H H Bharadi</i>	246
Temples in Shaping Socio-Economic Condition of Medieval Tamil Nadu <i>Priyanka Singh</i>	262

वाचिक परम्परा में श्रीमद्भागवतम्

बी.के. श्रीवास्तव

सारांश :

मौखिक रूप से बोल-बोलकर अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाना वाचिक परम्परा है। वैदिक ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को परमेश्वर द्वारा ईश्वरीय श्वास के रूप में प्राप्त हुआ। वेदों में अन्तर्निहित ज्ञान ही मूल ज्ञान है, उसी का विस्तार रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवतम्, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में प्राप्त होता है। यह सभी ज्ञान हमारे मनीषियों को श्रुति परम्परा से वाचिक परम्परा से प्राप्त हुआ है। ऋषि श्रेष्ठ नारद की प्रेरणा से व्यास जी ने श्रीमद् भागवत् का सृजन किया। उन्होंने इसे सर्वप्रथम अपने गर्भस्थ शिशु शुकदेव जी को सुनाया। शुकदेव जी से वाचिक परम्परा में इसका ज्ञान गंगा नदी के तट पर राजा परीक्षित सहित श्री सूत गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ। श्री सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य वन में वाचिक परम्परा में श्रीमद् भागवतम् का ज्ञान शौनक आदि ऋषियों को प्राप्त हुआ। श्रीमद्भागवत का पाठक वस्तुतः महाराज परीक्षित द्वारा पूछे गये प्रश्नों के शुकदेव गोस्वामी द्वारा दिये गये उत्तर सूत गोस्वामी के मुख से सुनता है। कहीं-कहीं सूत गोस्वामी नैमिषारण्य में एकत्र साधुओं के प्रतिनिधि शौनक ऋषि द्वारा पूछे गये प्रश्नों के सीधे उत्तर देते हैं। इस प्रकार एकसाथ दो प्रकार के संवाद सुनने को मिलते हैं— एक गंगातट पर महाराज परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी के मध्य और दूसरा नैमिषारण्य में सूत गोस्वामी तथा वहाँ एकत्रित साधुओं के प्रतिनिधि शौनक ऋषि के मध्य हुए संवाद। यही नहीं बीच-बीच में शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हुए ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन करते जाते हैं। वे उन विस्तृत दार्शनिक चर्चाओं का विवरण भी प्रस्तुत करते हैं जो मैत्रेय तथा उनके शिष्य विदुर जैसे महात्माओं के मध्य हुई थी। इस प्रकार श्रीमद् भागवतम् प्राचीन भारतीय वाचिक परम्परा को समझने का एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

बीज शब्द : श्रुति, अपौरुषेय, ब्रह्मज्ञान, ईश्वरीय श्वास, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आत्माभिव्यक्ति, ज्ञान संक्रान्ति, परिष्कार, निष्प्राण, स्कन्ध, सर्वांगीढ़, प्रवाहमान, सप्राण, जिज्ञासू, कल्पवृक्ष, साहित्यावतार, गर्भस्थ शिशु, आश्रयविहीन, आत्म साक्षात्कार, सर्वव्यापी, ब्रह्मविषयक, कृष्णद्वैपायन, अन्योन्याश्रित, भागवत-माहात्म्य, पुराण शिरोमणि,

वाचिक परम्परा का अर्थ उसके शब्द में ही अन्तर्निहित है। मौखिक रूप से बोल-बोलकर अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाना वाचिक परम्परा है। यह अपनी आत्माभिव्यक्ति का प्रस्तुतीकरण है। मौखिक परम्परा द्वारा जिज्ञासु की जिज्ञासायें आत्माभिव्यक्ति द्वारा ज्ञान संक्रान्ति के माध्यम से शान्त की जाती हैं। हमारी प्राचीन परम्परा वैदिक परम्परा रही है। वेदों को अपौरुषेय कहा गया है।¹ वैदिक ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को परमेश्वर द्वारा प्राप्त हुआ। वेदों को निगम एवं श्रुति कहा

गया है। श्रुति का संबंध सुनने से है। प्राचीनकाल में वेदों को गुरु परम्परा में सुनकर ही आत्मसात किया जाता था।

वेदान्त वाचिक परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग होने के कारण वेदान्त कहे जाते हैं। उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ उप+नि+षद् अर्थात् गुरु के पास शिष्य का बैठना। उपनिषद् शब्द का प्रयोग गूढ़ वाक्य के लिये किया गया है। इस गूढ़ वाक्य का अर्थ गुप्त रूप से वन में ही गुरु द्वारा शिष्य को सिखाया जाता था। तैत्तरीय उपनिषद् के भाष्य में शंकराचार्य ने उपनिषद् शब्द का अर्थ 'ब्रह्मज्ञान' बताया है। यह गूढ़ विद्या है। उपनिषदों में कहीं-कहीं 'इति उपनिषद्' एवं 'इति रहस्यम्' जैसे शब्द आये हैं।¹² इनसे पता चलता है कि उपनिषदों में रहस्यमय ज्ञान एवं गूढ़ रहस्यों के ज्ञान भी मिलते हैं। इन्हें ज्ञानी ऋषि ही आत्माभिव्यक्ति के द्वारा जिज्ञासु शिष्यों को समझा सकते हैं। उपनिषद् व्याख्यापरक ग्रंथ है, जो मौखिक परम्परा से ही समझाये जा सकते हैं।

श्रवण का अर्थ केवल सुनना नहीं होता, पढ़ना भी होता है। आप जब कुछ भी पढ़ते हैं तो उसी समय आपके कान उस पढ़े हुये का श्रवण भी कर रहे होते हैं। मनन का अर्थ है पढ़े एवं सुने हुये को मन द्वारा मान लेना अर्थात् जो हमने पढ़ा एवं सुना उसे हमारे मन ने तर्क करते हुये मान लिया। हम मानेंगे कब तक? जब तक हम श्रवण करेंगे एवं उसका चिंतन करेंगे। अर्थात् हमारे अंदर श्रवण — स्मरण, चिंतन एवं मनन की प्रक्रिया चलती रहती है। मनन के तहत हम श्रवण की गई बातों का स्मरण करके उसके पक्ष एवं विपक्ष पर चिंतन करते हैं। इसके पश्चात् ही हमारा मन उसे स्वीकार कर पाता है।

अब मौखिक अथवा वाचिक परम्परा द्वारा जो भी आपके श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा अपने जीवन में उतारा उसका निरन्तर सत्संग द्वारा हमें विस्तार करते रहना चाहिए। कोई भी विचार अंतिम सत्य नहीं है। जब हम किसी विचार का विकास एवं विस्तार करते हैं तब नवीन सृजन होता है। लिखित परम्परा में जो विचार लिख दिया गया उसका विराम हो जाता है। तालाब की भांति वह बंध जाता है। वाचिक परम्परा में अच्छे विचारों का निरन्तर परिष्कार होता रहता है। वह नदी की तरह सदा प्रवाहमान रहता है। इसीलिए हमारी परम्परा में लिखित परम्परा को निष्प्राण तथा वाचिक परम्परा को संप्राण माना गया है।

वेदों में अन्तर्निहित ज्ञान ही मूल ज्ञान है, उसी का विस्तार रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवतम्, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में प्राप्त होता है। यह सभी ज्ञान हमारे मनीषियों को श्रुति परम्परा से वाचिक परम्परा से प्राप्त हुआ है। श्रीमद् भागवतम् बारह स्कन्धों में है एवं इसमें 335 अध्याय एवं 18000 श्लोक हैं।¹³ शास्त्रों में श्रीमद् भागवतम् सुनने को जीवन के लिये महत्वपूर्ण माना है। भागवत कथा के दौरान हमें जो हजारों की संख्या में भीड़ दिखाती है, वह इसका प्रमाण है कि हम अपने सर्वांगीण उद्धार के लिये प्रयासरत् हैं। प्रथम स्कन्ध के दूसरे ही श्लोक में कहा गया है —

धर्मः प्रोज्झितकैतवो त्र परमो निर्मत्सरणां सतां

वेधं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।

श्रीमद् भगवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः

सद्यो हृद्यवरुध्यते त्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्।।¹⁴

अर्थात् यह श्रीमद् भागवतम्, सकाम कर्म से प्रच्छन्न, भौतिक कारणों से प्रेरित होने वाले समस्त धार्मिक कृत्यों को पूर्णरूप से बहिष्कृत करता है। यह सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है। यह पूर्णरूप से शुद्ध हृदय वाले जिज्ञासुओं के लिए सर्वोच्च सत्य एवं वास्तविकता को प्रस्तुत करता है। इसमें निहित ज्ञान तीनों प्रकार के कष्टों को समूल नष्ट करने वाला है। यह तीन कष्ट हैं — (1) मन एवं शरीर से उत्पन्न दुःख, (2) अन्य जीवों द्वारा दिये गये दुःख एवं (3) प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न दुःख जिन पर किसी का वश नहीं होता है। महामुनि श्री व्यास जी द्वारा संकलित यह भागवत परमेश्वर के साक्षात्कार के लिये अपने-आप में पर्याप्त है। इसे ध्यानपूर्वक सुनने, मनन करने एवं आत्मसात कर इसके अनुरूप आचरण करने पर अन्य शास्त्र को जानने की ज्यादा आवश्यकता नहीं है। जैसे-जैसे हम ध्यानपूर्वक शुद्ध मन से भागवत् का श्रवण करते हैं, वैसे-वैसे हम आत्म साक्षात्कार की ओर बढ़ते हैं। हमारे हृदय में परमेश्वर स्थापित हो जाता है। इसे सुनकर हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

जो भी व्यक्ति इस श्लोक के भाव को एवं महत्व को समझ जाता है वह श्रीमद् भागवतम् को सुनने के लिये जिज्ञासू हो जाता है। इसीलिये भागवत् में कहा है —

निगम कल्पतरोगलितं फलं,
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं,
मुहुर्हो रसिका भुवि भावुकाः ।।⁵

अर्थात् हे विज्ञ एवं विचारवान लोगो, वैदिक साहित्य रूपी कल्पवृक्ष के इस पक्व फल श्रीमद् भागवतम् को जरा चखो तो। यह श्री शुकदेव गोस्वामी के मुख से निस्सृत हुआ है, इसीलिये यह और अधिक रुचिकर हो गया है, यद्यपि इसका अमृतरस मुक्त जीवों समेत समस्तजनों के लिये पहले से अस्वाध था।

यहां वेदों की तुलना कल्पवृक्ष से की गई है। वेद समस्त ज्ञान का प्रमुख स्रोत है। यह बात श्रीमद् भागवतम् में भी कही गई है। वाचिक परम्परा में यही वैदिक ज्ञान श्रीमद् भागवतम् के रूप में भी सामने आया। वैदिक वाङ्मय का परिपक्व फल ही श्रीमद् भागवतम् है। व्यास जी को यह ज्ञान उनके गुरु नारद से श्रुति परम्परा में प्राप्त हुआ।

शुकदेव जी ने श्रीमद् भागवतम् गर्भ में अपने पिता महर्षि व्यास से सुना था। हस्तिनापुर में गंगा तट पर उन्होंने राजा परीक्षित को सात दिन तक श्रीमद् भागवत् सुनाया।

अभिमन्यूसुतम् सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ।
तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीह नः ।।
स सम्राट कस्य वा हेतोः पाण्डुनां मानवर्धनः ।
प्रायोपविष्टो गंगांयामनादृत्याधिराट्श्रियम् ।।⁶

अभिमन्यू पुत्र महाराज परीक्षित उच्चकोटि के भगवद् भक्त थे। वे एक महान सम्राट थे। एक बार राजा परीक्षित आखेट हेतु वन गये। प्यास के कारण जलाशय खोजते हुये शृंगी ऋषि के आश्रम पहुंचे। वहां शमीक ऋषि ध्यानमग्न थे। राजा ने उनसे पानी मांगा। शमीक ऋषि ध्यान में होने से सुन न सके। राजा के पास कलियुग का प्रतीक स्वर्ण मुकुट था। उसके प्रभाव में उन्हें लगा कि शमीक

ऋषि ध्यानस्थ होने का ढोंग करते हुये उनकी बात न सुनकर उनका अपमान कर रहे हैं। राजा ने एक मृत सर्प धनुष की नोक से उठाकर शमीक ऋषि के गले में डाल दिया। उनके पुत्र श्रृंगी ऋषि को जब यह पता चला तो वह काफी नाराज हुये। उन्हें लगा कि ऐसा राजा यदि जीवित रहा तो इसी प्रकार ऋषियों का अपमान करता रहेगा। श्रृंगी ऋषि ने कमंडल से अपनी अंजुलि में जल लेकर उसे मंत्रों से अभिमंत्रित किया और राजा परीक्षित को यह श्राप दिया कि – ‘जा, आज से सातवे दिन तुझे तक्ष-सर्प डसेगा।’

शमीक ऋषि को जब श्राप का पता चला तो उन्होंने अपने पुत्र श्रृंगी ऋषि से कहा अरे तुमने यह क्या अनर्थ कर दिया। जरा सी गलती के लिये तूने उस भगवत्भक्त, प्रजावत्सल, योग्य राजा को श्राप दे दिया। राजा उस समय स्वर्ण मुकुट धारण करने के कारण कलियुग के प्रभाव में था इसलिए उससे गलती हो गई। यह उस राजा का ही प्रताप है कि उसके राज्य में हम लोग निर्भीकतापूर्वक जप-तप यज्ञादि करते रहते हैं। उन्हें श्राप देकर तुमने घोर अपराध किया है।

उधर राजा राजमहल पहुंचकर जैसे ही स्वर्ण मुकुट उतारता है, कलियुग का प्रभाव समाप्त हो जाता है। उन्हें अपनी भूल का अहसास होता है। वह ईश्वर से कहते हैं हे ईश्वर मुझसे घोर अपराध हुआ है। इसके लिए मुझे इतना कठोर दण्ड दो कि मैं भविष्य में ऐसे अपराध न करूं। इससे शिक्षा लेकर भविष्य में भी कोई इस प्रकार ऋषियों का अपमान ना करे। जब परीक्षित को श्रृंगी ऋषि के श्राप का पता चलता है तो वे प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार कर ऋषि को कहते हैं – ‘ऋषि कुमार ने शाप देकर मुझ पर उपकार किया है। मेरी भी यही इच्छा थी कि मुझ जैसे पापी को मेरे इस कृत्य के लिये दण्ड मिलना ही चाहिए।’

राजा परीक्षित के पास जीवन के मात्र सात दिन शेष थे। उन्होंने उन्हें ज्ञान प्राप्ति एवं भगवत्भक्ति में व्यतीत करने का संकल्प लिया। वे अपने समर्थ पुत्र जन्मेजय का राज्याभिषेक कर राजसी आभूषणों को त्याग कर गंगा तट पर पहुंच गये। उनके त्याग एवं दान के बारे में सुनकर कई ऋषि उनके दर्शनार्थ गंगा तट पहुंचे। राजा परीक्षित के भाग्य से उसी समय श्री शुकदेव गोस्वामी भी गंगा तट पहुंच गये। राजा परीक्षित ने उनसे कहा –

‘हे ब्रह्म रूप योगेश्वर! हे महाभाग! भगवान नारायण के सम्मुख आने से जिस प्रकार दैत्य भाग जाते हैं उसी प्रकार आपके आने से पाप भी अविलम्ब भाग खड़े होते हैं। आपके दर्शन दुर्लभ हैं। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मेरी मृत्यु के समय पधार कर मुझ पापी को दर्शन देकर आपने मुझे पाप मुक्त किया है। कृपा कर बताइये कि मरणासन्न व्यक्ति के क्या कर्तव्य हैं, उसे किस कथा का श्रवण करना चाहिए।’

शुकदेव जी ने तब कहा – ‘हे प्रजावत्सल कल्याणकारी राजन् तुम्हारा प्रश्न अतिउत्तम है। इसके उत्तर में न सिर्फ तुम्हारा अपितु आने वाली पीढ़ियों का भी कल्याण होगा। मनुष्य संसार में आकर मायाजाल में फंस जाता है। वह मनुष्य योनि के वास्तविक लाभ से वंचित रहता है। दिन काम धंधों में, रात नींद व स्त्री प्रसंगों में बीत जाती है। अज्ञानी मनुष्य स्त्री, पुत्र, संबंधियों, शरीर, धन, संपत्ति आदि को ही अपना सबकुछ समझने लगता है। वह पागल की भांति उनके मोहजाल में फंसा रहता है। उनका मोह इतना अधिक होता है कि वह मृत्यु के विचार मात्र से भयातुर हो जाता है। अन्ततः वह मृत्यु को प्राप्त होता है।’

मनुष्य को मृत्यु आने पर भी भयभीत एवं व्याकुल नहीं होना चाहिए। उस समय अपने ज्ञान से वैराग्य धारण कर मोहपाश से दूर हो जाना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को वश में करके उन्हें सांसारिक विषय वासनाओं से हटाकर चंचल मन को दीपक की लौ के समान स्थिर कर लेना चाहिए। मन पर नियंत्रण के विज्ञान को समझना चाहिए। उसके पश्चात् आत्मा में स्थित परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। जहां तक कथा का प्रश्न है तो प्राणियों को अपने कल्याण के लिये श्रीमद् भागवतम् का श्रवण करना चाहिए।

इस प्रकार शुकदेव जी महाराज ने परीक्षित पर प्रसन्न होकर उन्हें गंगा तट पर श्रीमद् भागवतम् की कथा को प्रथमवार सुनाया। ऋषियों की सभा राजा परीक्षित की मृत्यूपर्यन्त सात दिन तक शुकदेव जी महाराज के श्रीमुख से मिठास भरी रस से परिपूर्ण श्रीमद् भागवतम् की कथा मंत्रमुग्ध होकर सुनती रही। इस समय श्री सूत गोस्वामी जी (उग्रश्रवा जो कि रोमहर्षणि जी के पुत्र थे) भी गंगा तट पर इस कथा का अन्य ऋषियों के साथ श्रवण कर रहे थे।

एक बार नैमिषारण्य के वन में एक पवित्र स्थान पर शौनक इत्यादि अनेकानेक ऋषिगण ईश्वर तथा उनके भक्तों के प्रसन्न करने के लिए दीर्घावधि तक चलने वाले यज्ञ को सम्पन्न करने एकत्रित हुये। इसी दौरान इन ऋषियों ने श्री सूत गोस्वामी जी के समक्ष अपनी जिज्ञासायें इन शब्दों में रखी —

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानध ।

आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ।।⁷

अर्थात् हे पूज्य सूत गोस्वामी जी आप समस्त शास्त्रों, पुराणों के साथ-साथ इतिहास में भी निपुण हैं। आपने समुचित निर्देशन में उन्हें पढ़ा है एवं उनकी व्याख्या भी की है। सभी ऋषि जानते थे कि सूत गोस्वामी जी ने शुकदेव जी जैसे महान ऋषि से भागवत कथा सुनी है। अतः ऋषि कहते हैं —

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।

अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ।।⁸

आप वेदों के मर्मज्ञ साक्षात् ईश्वर के अवतार बादरायणः (ऋषि व्यास) के ज्ञान से परिचित हैं। आप इन सब मुनियों को भी जानते हैं जो सभी प्रकार के भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान में निष्णात हैं।

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।

मन्दा सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपदुताः ।।⁹

हे ऋषिवर कलयुग में लोगों की आयु अत्यन्त न्यून है। वे झगड़ालू, आलसी, पथभ्रष्ट, अभागे होते जा रहे हैं। साथ ही सदैव चिन्तित एवं विचलित रहते हैं। जन साधारण के कल्याण के लिये हमें मार्ग बता कर अनुग्रहीत करें। हमें भगवत् कथा भी सुनायें जो आपने व्यास पुत्र शुकदेव जी से सुनी थी। हमें अत्यन्त ही जिज्ञासा है।

इस प्रकार का आग्रह सुनकर सूतजी ने कहा —

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं, यद्वासुदेवे खिललोकनाथे ।

कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं, न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ।।¹⁰

अर्थात् इस संसार में केवल इस प्रकार की जिज्ञासाओं द्वारा ही मनुष्य सकल एवं पूर्णतः ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार की जिज्ञासाओं द्वारा ही अखिल ब्रह्माण्ड के नियामक भगवान के प्रति दिव्य आघातकारी प्रेम उत्पन्न होता है और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाने का आश्वासन प्राप्त होता है। इस तरह शौनक ऋषि सहित अन्य सभी ऋषियों की जिज्ञासा से सूत गोस्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने कलयुग में उद्धार का मार्ग बताते हुये कहा –

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्,

उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः।

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्॥¹¹

यह श्रीमद् भागवत, भगवान का साहित्यवतार है, जिसे ईश्वर के अवतार वेदव्यास जी ने संकलित किया है। यह सभी लोगों के परम कल्याण के लिये है। हम इसके सचेष्ट एवं धीर अध्ययन के द्वारा ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। पारदर्शी गुरु भक्त-भागवत स्वरूप सिद्ध प्रमाणि त गुरु से भागवत की शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। श्रीमद् भागवत के अध्ययन से वे सारे लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, जो कि भगवान की साक्षात् उपस्थिति से प्राप्त होते हैं। इसके अध्ययन से वही आशीर्वाद प्राप्त होगा जो साक्षात् भगवान से आशीर्वाद मिलता है। बस आवश्यकता है तो भगवान के इस साहित्यावतार के प्रति अगाध श्रद्धा रखने की। जब इन ऋषियों ने प्रार्थना की कि श्री सूत गोस्वामी वैदिक ज्ञान का सार कह सुनाएँ, तो उन्होंने अपनी स्मृति से श्रीमद्भागवत के सभी अठारह हजार श्लोक सुना दिये, जिन्हें शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को सुनाये थे।

तदिदं ग्राह्यामास सुतसमात्मवतां वरम्।

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्र धृतम्॥¹²

ऋषि व्यास ने समस्त वैदिक वाङ्मय एवं ब्रह्माण्ड के इतिहास का सार निकाल कर इसका सृजन किया और उसे अपने पुत्र शुकदेव जी को प्रदान किया। शुकदेव जी महाराज से राजा पारीक्षित एवं अन्य ऋषियों के साथ मैंने इसे सुना। यह सुनकर ऋषि शौनक ने कहा –

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर।

कथां भगवतीं पुण्यां यदाह भगवाच्छुकः॥¹³

हे सूत गोस्वामी जी, जो बोल सकते हैं तथा सुना सकते हैं, उन सभी ऋषियों में आप सर्वाधिक भाग्यशाली तो हैं ही साथ ही सम्मानीय हैं। आपको महान तथा शक्ति सम्पन्न ऋषि शुकदेव जी ने जो श्रीमद् भागवत की कथा सुनाई वह पुण्य कथा आज हमें सुनायें। विश्व साहित्य के इतिहास में महाकाव्य का प्रारंभिक रूप मौखिक था जिसकी परम्परा सहस्रों वर्षों से समाज में विद्यमान थी, परन्तु ग्रंथों के रूप में नहीं थी।¹⁴

शौनक ऋषि ने सूत गोस्वामी से पूछा कि हम यह जानने के इच्छुक हैं कि मौखिक परम्परा के तहत विदुर ने मैत्रेय ऋषि से किस प्रकार भागवत कथा सुनी, तब सूत गोस्वामी जी ने नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषि मुनियों को बताया कि ऋषि शुकदेव जी के अनुसार विदुर ने जब महाराज धृतराष्ट्र से कहा कि आपका पुत्र दुर्योधन भगवान श्री कृष्ण से द्वेष के कारण मंगल विहीन हो चुका है। यदि आप अपने वंश का कल्याण चाहते हैं तो तुरंत दुर्योधन को त्याग दें।¹⁵ तब दुर्योधन क्रोध से आग बबूला हो गया और कहा यह कपटी जिस थाली में खा रहा है उसी में छेद कर रहा है।

इसे राजमहल से निकाला जाये।¹⁶ तब विदुर सहर्ष राजमहल त्याग कर तीर्थ यात्रा पर चले गए।¹⁷ इसी दौरान उनकी भेंट यमुना के तट पर श्री कृष्ण के महान भक्त, चचेरे भाई एवं अंतरंग मित्र उद्धव से हुई।¹⁸ उद्धव उस समय यदुवंश के विनाश एवं श्री कृष्ण के परमधाम प्रयाण से आहत थे, फिर भी विदुर जी के हृदय में श्री कृष्ण कथा सुनने की अभिलाषा को देखते हुए उद्धव ने श्री कृष्ण की 11 वर्षों तक वृंदावन में की गई लीलाओं के साथ-साथ मथुरा एवं द्वारका की लीलाओं को सुनाया। विदुर ने इन लीलाओं को सुनने के पश्चात् उद्धव से उस ज्ञान का बखान करने हेतु कहा जो उन्होंने प्रत्यक्ष श्री कृष्ण भगवान के मुख से सुना था। तब उद्धव ने उनसे कहा कि आप यह ज्ञान मैत्रेय ऋषि से सुनें। जब भगवान इस लोक को छोड़ कर जा रहे थे तब उन्होंने मैत्रेय ऋषि को प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा दी थी।¹⁹

श्री कृष्ण उद्धव को अपना सर्वश्रेष्ठ भक्त मानते थे। उन्होंने स्वयं के विषय में सर्वाधिक गुह्य ज्ञान का प्रसार करने हेतु उद्धव को ही चुना था।

उद्धव जी के परामर्श पर विदुर जी मैत्रेय ऋषि से भेंट करने हेतु हरिद्वार पहुंचे। उन्होंने मैत्रेय ऋषि से कृष्ण कथा सुनाने का निवेदन किया। मैत्रेय ऋषि ने कहा है विदुर तुमने लोक कल्याण हेतु यह प्रश्न किया है, इसलिए आपकी कीर्ति सर्वत्र फैले। मैं जानता हूं कि आप यमराज के अवतार हैं। आप भगवान के अंतरंग पार्षदों में से एक हैं। मैत्रेय ऋषि ने कहा कि अब मैं तुम्हें वह भागवत पुराण सुनाऊंगा जिसे स्वयं भगवान ने क्षणिक सुखों के लिए भौतिक जीवन में उलझे लोगों के कल्याणार्थ महान ऋषि मुनियों को सुनाया था।²⁰

मैत्रेय ऋषि ने बताया कि एक बार भगवान संकर्षण, भगवान वासुदेव का ध्यान मग्न कर बैठे हुए थे (यहां उल्लेखनीय है कि संकर्षण, श्री कृष्ण के बड़े भाई बलराम का नाम था जो शेषनाग के अवतार थे) उसी समय सनतकुमार आदि ऋषि उनके पास आए तब भगवान संकर्षण ने श्री सनतकुमार को श्रीमद्भागवत का सार सुनाया। श्री सनत कुमार ने यह ज्ञान सांख्यायन मुनि को दिया। सांख्यायन मुनि से यह ज्ञान मेरे गुरुदेव ऋषि पाराशर एवं बृहस्पति ने प्राप्त किया।²¹

एक बार एक राक्षस ने पाराशर मुनि के पिता का भक्षण कर लिया। प्रतिशोध स्वरूप उन्होंने सारे नरभक्षियों को जला कर मारने के लिए एक यज्ञ आरंभ किया। ऋषि वशिष्ठ ने अपने पुत्र ऋषि पाराशर को यह कार्य करने से रोका उनका मान रखने पाराशर मुनि ने यज्ञ बंद कर दिया। इसे देखकर राक्षसों के पिता पुलस्त्य ऋषि अत्यंत प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रसन्न होकर पाराशर मुनि को आशीर्वाद दिया कि वे पुराणों के महान वक्ता बनेंगे। तत्पश्चात् पुलस्त्य ऋषि के परामर्श पर ही श्री पाराशर ने इस पुराण शिरोमणि का ज्ञान मुझे प्रदान किया।²² अतः हे पुत्र विदुर मैं यह ज्ञान तुम्हें प्रदान करूंगा क्योंकि मेरे प्रति तुम्हारी निष्ठा सदैव रही है। इसके पश्चात् मैत्रेय ऋषि ने ब्रह्मा जी की उत्पत्ति से लेकर ब्रह्माजी के उत्कर्ष, ऋषि मुनियों की उत्पत्ति, एवं धर्म, लोभ, लालच, पुण्य, पाप सभी की उत्पत्ति के विस्तृत भागवत कथा श्री विदुर को सुनाई।²³

पद्मपुराण के भागवत-माहात्म्य के अनुसार तो श्रीकृष्ण के इस धराधाम के तीस वर्ष छोड़ने के बाद भाद्र शुक्ल नवमी को शुकदेव जी ने महाराज परीक्षित को यह कथा सुनाई थी। फलतः भागवत की रचना कलियुग आरम्भ होने के तीस वर्ष के भीतर ही हुई थी। इस प्रकार भारतीय

परम्परा के अनुसार इसे पाँच चार वर्ष पुराना होना चाहिए।

सूत जी ने पहले तो महर्षि व्यास के जन्म की कथा सुनाई। फिर उनके वेदों के सृजन एवं उसका महत्व बताया। सूत गोस्वामी जी ने बताया कि व्यासजी ने चार वेदों के संकलन का कार्य विभिन्न ऋषियों को सौंपा।²⁴ पैल ऋषि ऋग्वेद के आचार्य बने। ऋषि जैमिनी सामवेद के आचार्य बने। ऋषि वैशम्पायन यजुर्वेद के आचार्य बने। ऋषि अंगीरा को अथर्ववेद सौंपा। इसके साथ ही सूत गोस्वामी बताते हैं कि —

‘इतिहासपुराणानां पितामे रोमहर्षणः’ श्रीमद् भागवत की कथा

अर्थात् मेरे पिता रोमहर्षण को पुराण तथा इतिहास सौंपे। इस प्रकार यहां सूत गोस्वामी जी ने अपने पिता का नाम भी बताया है। सूत जी बताते हैं कि —

आम जनता को ध्यान में रखकर उनके लिये वैदिक वाङ्मय का सार निकाल कर ऋषि व्यास ने महाभारत का सृजन किया।

सूत गोस्वामी बताते हैं इतना सब सृजन करने के पश्चात् भी ऋषि व्यास का मन शान्त नहीं था। वह खुशी का अनुभव नहीं कर पा रहे थे। यहां तक कि परम ज्ञानी होने के कारण ऋषि व्यास ने आत्मा का साक्षात्कार भी कर लिया था। वे अपनी खिन्नता का, उदासी का कारण नहीं खोज पा रहे थे।

मनुष्य एवं प्रकृति का संबंध अन्योन्याश्रित है। मनुष्य प्रकृति के लिये है और प्रकृति मनुष्य के लिये। प्रकृति से धर्मात्मा ऋषि व्यास के मन की पीड़ा देखी नहीं गई। सारी प्रकृति ऋषि व्यास जी की खिन्नता को दूर करने हेतु प्रयासरत् हो गई। सूत जी बताते हैं —

तस्यैवं खिलात्मानं मन्यमानस्थ खिद्यतः।

कृष्णस्य नारदो भ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम्।²⁵

ऋषि व्यास का नाम कृष्णद्वैपायन व्यास था। वे अपनी कुटिया में उदास बैठे थे, तभी महर्षि नारद का उनकी कुटिया में आगमन हुआ। वे बोले ‘नारायण, नारायण’ लगता है चित्त कहीं भटक रहा है, ऋषिवर!

नारद जी ने साथ ही कहा —

आपने निराकार ब्रह्म विषयक एवं उससे प्राप्त होने वाले ज्ञान को भली-भांति लिपिबद्ध किया है। तो इतना सब होते हुये, आप के हताश होने का क्या कारण है? व्यास जी बोले —

हाँ मेरे पास सब कुछ है फिर भी मैं असंतुष्ट क्यों हूँ? आप ब्रह्मा की संतान होने के कारण अगाध ज्ञान से युक्त हैं।²⁶ आप सर्वव्यापी परमात्मा के समान हो। मैं पूर्ण नियम से व्रतों का पालन करता हूँ। दिव्यता में लीन भी हो सकता हूँ फिर भी मेरी खिन्नता एवं असंतोष का आखिर क्या कारण है, कृपा कर बतायें, मुझमें क्या कमी है?²⁷ तब नारद जी ने कहा —

जो वाणी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वायु मण्डल को परिशुद्ध करने वाले भगवान की महिमा का वर्णन नहीं करती, उसे साधु पुरुष कौवों के स्थान के समान मानते हैं। जो साहित्य गुमराह लोगों के अपवित्र जीवन में क्रांति लाकर उन्हें सही मार्ग पर लाने वाले दिव्य शब्दों से ओत-प्रोत है, ऐसा दिव्य साहित्य चाहे उसका ठीक से सृजन भी न हुआ हो, वह परमहंस एवं पवित्र मनुष्यों द्वारा सुना जाता

है, गाया जाता है तथा आत्मसात किया जाता है।²⁸

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं, न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

कृतः पुनः शश्वदभद्रीमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदाप्यकारणम्।²⁹

आत्म साक्षात्कार का ज्ञान समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने पर भी शोभा नहीं देता, शांति नहीं देता यदि वह ईश्वर के भाव से शून्य हो। आपके सकाम कर्म यदि भगवान की भक्ति में काम न आ सकें तो उनका क्या लाभ? यह सकाम कर्म स्वभावतः आरम्भ से ही दुःखः दायक तथा क्षणिक होते हैं। इसीलिये सकाम कर्मों को भगवान की सेवा में अर्पित करना आवश्यक है।

नारद जी अब ऋषि व्यास के असंतोष का कारण बताते हुये कहते हैं — 'तुमने भगवान के अतिरिक्त विभिन्न रूपों, नामों तथा परिणामों के रूप में जो कुछ भी वर्णन किया है, वह प्रतिक्रिया द्वारा मन को उसी प्रकार आन्दोलित करने वाला है, जिस प्रकार आश्रयविहीन नाव को चक्रवात आंदोलित करता है।'³⁰

अब नारद जी ऋषि व्यास को श्रीमद् भागवतम् के सृजन के लिये इन शब्दों में प्रेरित करते हैं —

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।

प्राख्याहि दुःखैर्महुरर्दितात्मनां सङ्क्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा।³¹

हे ऋषिवर व्यास कृपा करके सर्वशक्तिमान परमेश्वर के उन कार्यकलापों का वर्णन करो जिसे तुमने वेदों के अपार ज्ञान से जाना है। ऐसा करने से महान् विद्वान्जनों की ज्ञान-पिपासा तृप्त होगी। सामान्य लोगों के कष्टों का शमन होगा, जो कि सदैव भौतिक दुःखों से पीड़ित रहते हैं। इस तरह बहूविध समझा कर महर्षि नारद ने ऋषिवर व्यास द्वारा श्रीमद् भागवत के सृजन का महत्वपूर्ण, कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कराया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार श्रीमद् भागवत् वाचिक परम्परा द्वारा अस्तित्व में आया। वाचिक परम्परा में पहले ऋषि व्यास को ईश्वरीय श्वास के रूप में वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ। उनसे यह वैदिक ज्ञान वाचिक परम्परा में अन्य ऋषियों को प्राप्त हुआ जिसने उन्हें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद के संकलन हेतु प्रेरित किया। इसके पश्चात् महाभारत का सृजन किया। जब मन शांत नहीं हुआ तो वाचिक परम्परा में ऋषि श्रेष्ठ नारद की प्रेरणा से व्यास जी ने श्रीमद् भागवत् का सृजन किया। इसे सर्वप्रथम अपने गर्भस्थ शिशु शुकदेव जी को सुनाया। शुकदेव जी से वाचिक परम्परा में इसका ज्ञान गंगा नदी के तट पर राजा परीक्षित सहित श्री सूत गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ। श्री सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य वन में वाचिक परम्परा में श्रीमद् भागवतम् का ज्ञान शौनक आदि ऋषियों को प्राप्त हुआ। इस तरह श्रीमद् भागवतम् वाचिक परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। आज भी समस्त भारत में वाचिक परम्परा में इसका ज्ञान समस्त भारतीय प्राप्त कर रहे हैं।

इतिहास विभाग,

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

shribk2000@gmail.com

सन्दर्भ :

1. उपाध्याय, बलदेव, 1998, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ 14
2. सिंह, बी.एन., 1986 भारतीय दर्शन, स्टूडेंट्स फ्रेंड्स एण्ड कम्पनी, वाराणसी, पृ. 51
3. त्रिपाठी, राधावल्लभ, 2001, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ 80
4. श्री मद भागवतम् 1/1/2
5. वही 1/1/3
6. वही 1/4/9-10
7. वही 1/1/6
8. वही 1/1/7
9. वही 1/1/10
10. वही 1/3/39
11. वही 1/3/40
12. वही 1/3/41
13. वही 1/4/2
14. पाण्डे, सत्यनारायण, 1980 संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, पृष्ठ 106
15. श्री मद भागवतम् 3/1/13
16. वही 3/1/15
17. वही 3/1/16
18. वही 3/1/24
19. वही 3/4/26
20. वही 3/5/22
21. वही 3/8/8
22. वही 3/8/9
23. उपाध्याय, बलदेव, 2001, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, पृष्ठ 89
24. पाण्डे, सत्यनारायण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 93
25. श्री मद भागवतम् 1/4/32
26. वही 1/5/5
27. वही 1/5/7
28. वही 1/5/11
29. वही 1/5/12
30. वही 1/5/14
31. वही 1/5/40

वर्धा के खोजा समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का मानवशास्त्रीय विश्लेषण

वीरेन्द्र प्रताप यादव

सारांश :

भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहां विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे के साथ निवास करती हैं। भारत में विभिन्न धार्मिक समूह एवं समुदाय पारस्परिक सह-अस्तित्व में देखने को मिलते हैं और यह लक्षण देश को एक विशिष्ट राष्ट्र बनाता है। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 19.3 प्रतिशत अल्पसंख्यक आबादी निवास करती है। देश के प्रमुख अल्पसंख्यक समुदाय मुस्लिम (14.2 प्रतिशत), ईसाई (2.3 प्रतिशत), सिख (1.7 प्रतिशत), बौद्ध (0.7 प्रतिशत), जैन (0.4 प्रतिशत) और पारसी (0.006 प्रतिशत) हैं। मुस्लिम अल्पसंख्यक सूची के अंतर्गत शामिल खोजा समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर बहुत कम समाजशास्त्रीय/मानवशास्त्रीय अध्ययन हुए हैं। प्रस्तुत शोध आलेख वर्धा के खोजा समुदाय पर आधारित है। शोध आलेख में वर्धा जिले के खोजा समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। शोध आलेख महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले से क्षेत्रकार्य द्वारा एकत्रित किए गए प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है। आंकड़े एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार, प्रश्नावली, समूह चर्चा एवं फोकस ग्रुप डिस्कशन (एफ. जी. डी.) आदि तकनीकों का प्रयोग किया गया है।

बीज शब्द : खोजा, छठी, जमातखाना, बैयत, मुखी साहेब, कमाड़िया साहेब, मुहर्रम

प्रस्तावना:

महाराष्ट्र का भौगोलिक क्षेत्रफल 3,07,713 वर्ग किलोमीटर है और यह भारत का तीसरा सबसे बड़ा राज्य है। इस राज्य का आकार ही दुनिया के कई देशों से बड़ा है। 2011 जनगणना के अनुसार महाराष्ट्र राज्य की आबादी 11.24 करोड़ है। वर्धा जिला महाराष्ट्र के पूर्व में 20°44'30" अक्षांश एवं 78°36'20" देशांतर पर स्थित है। जिले का क्षेत्रफल 6,310 वर्ग किलोमीटर एवं 2011 जनगणना के अनुसार जनसंख्या 13,00,774 है। 2011 जनगणना के अनुसार वर्धा की कुल जनसंख्या का 76.90 प्रतिशत हिंदू, 9.77 प्रतिशत मुसलमान, 0.30 प्रतिशत ईसाई, 0.14 प्रतिशत सिख, 10.82 प्रतिशत बौद्ध, 1.86 प्रतिशत जैन एवं 0.13 प्रतिशत अन्य समुदाय हैं।

खोजा समुदाय पर बहुत सीमित समाजशास्त्रीय/मानवशास्त्रीय अध्ययन हुए हैं, जिसके कारण खोजा समुदाय पर हमें बहुत कम जानकारी मिलती है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (2024)

के अनुसार खोजा भारतीय मुसलमानों की एक जाति है, जो 14वीं शताब्दी में फारसी पीर सदर अल-दीन के प्रभाव में हिन्दू धर्म से मुसलमान हो गए थे। खोजा की एक इस्माइली परिषद होती है, तथा निजारी इस्माइली के रूप में, खोजा आगा खान के अनुयायी हैं। बड़े पैमाने खोजा का बॉम्बे में प्रवसन हुआ था। उन्नीसवीं सदी के आरंभ से मध्य तक, कई सौ खोजा परिवार बंबई चले गए, जिससे उनकी संख्या 150 परिवारों से बढ़कर 600 हो गई (पेरी, 1847, 113)। खोजा के अधिकांश पुरुष किसी न किसी रूप में व्यापार या बिक्री के पेशे में शामिल थे। धीरे-धीरे, मुख्य रूप से अफ्रीका, बल्कि एशिया के अन्य हिस्सों में व्यापार के अवसरों को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने बॉम्बे को अपना आधार बनाया (डॉबन, 1972, 151)। उन्नीसवीं सदी के अंत तक, बॉम्बे में खोजा समुदाय की संख्या लगभग 8,500 थी, चूंकि इनके अधिकांश सदस्य व्यापक आर्थिक गतिविधियों में लगे हुए थे, अतः इनका जीवन समृद्ध था (एथनोवेन, 1922, 217)।

वर्धा में खोजा समुदाय:

महाराष्ट्र राज्य के पूर्व में स्थित नागपुर महानगर से सटे वर्धा में खोजा समुदाय के पंद्रह परिवार रहते हैं। वर्धा का खोजा समुदाय आगाखानी (मुस्लिम), जोकि खुद को शिया मानते हैं, के अंतर्गत आता है। यहाँ खोजा की कुल 45-50 की जनसंख्या स्थाई रूप से निवास करती है। सभी परिवार वर्धा के शहरी क्षेत्र में निवास करते हैं। परिवारों का मुख्य पेशा व्यापार है। वर्धा का खोजा समुदाय मुख्यतः होटल, हार्डवेयर, भंगार (कबाड़) एवं जूते के व्यापार से जुड़ा है। सभी परिवार गुजरात मूल के हैं। उनका मानना है कि 1915 के आस-पास तीन परिवार गुजरात के सौराष्ट्र (कठियावाड़) से वर्धा आए। वर्धा में इनका मुख्य पेशा चमड़े के चप्पल एवं जूतों का व्यापार था। यही कालांतर में लीरानी, सत्यानी एवं अजानी कहे जाने लगे। साथ ही उनका यह भी मानना है कि गुरुनानक के समय में ईरान से पीर सद्गुरु नूर, मुल्तान के रास्ते भारत आए और सौराष्ट्र को अपना अंतिम पड़ाव बनाया। वर्धा का खोजा समुदाय खुद को सिख समाज के करीब मानता है। मान्यता है कि सौराष्ट्र के उच्च हिन्दू जाति के कुछ लोग पीर सद्गुरु नूर से प्रभावित होकर खोजा हो गए थे।

1856 में गुजरात में भयंकर अकाल आया था, जिसके कारण काम-धंधा एवं व्यापार ठप्प हो गया था। इसलिए वर्धा के वर्तमान खोजा के पूर्वज गुजरात के नवसारी से देश के विभिन्न क्षेत्रों में पलायन कर गए। चूंकि विदर्भ के यवतमाल, वर्धा एवं गढ़चिरौली (नागभीड़, आरमोरी, वरसा) आदिवासी बहुल क्षेत्र था, व्यापार की नई संभावना को देखते हुए वे यहाँ आ गए। उन्होंने आदिवासियों से वन उत्पाद (महुआ एवं विभिन्न फल), विशेष रूप से कच्चा चमड़ा, वस्तु विनिमय द्वारा लेकर, उसका उत्पाद बनाकर बाहर बेचना शुरू कर दिया। बदले में वे आदिवासियों को कपड़े, लौह उपकरण एवं नमक देते थे। माना जाता है कि गुजरात में खोजा पूर्वज हिंदू वैश्य समाज की लोहाना एवं भाटिया जातियों से थे। इनका मुख्य पेशा व्यापार था। इन्हें चमड़े के कारोबार में अच्छा मुनाफा दिखा, लेकिन हिंदू धर्म में इस काम को अच्छा नहीं माना जाता था, इसलिए उन्होंने खोजा संप्रदाय को स्वीकार कर लिया। साथ ही नवसारी समुद्र के करीब था और ईरान से व्यापार एवं दूसरे कारणों से संपर्क बना रहता था। इसी संपर्क से इस्लाम इनके क्षेत्र में पहुंचा था। माना जाता है कि पीर सद्गुरु नूर जोकि लगभग 700-800 वर्ष पहले यहाँ आए थे, उनके प्रभाव से ही लोहाना एवं भाटिया जातियाँ खोजा हो गईं।

परिवार:

वर्धा के खोजा समुदाय में मुख्यतः विस्तृत परिवार एवं कुछ मामलों में संयुक्त परिवार देखने को मिलता है। आज से दो-तीन दशक पहले ज्यादातर परिवार संयुक्त परिवार होते थे। अब अधिकांश मामलों में विस्तृत परिवार देखने को मिल रहा है। साथ ही एकल परिवार भी तेजी से अब स्थापित होते दिख रहे हैं।

नवजात का नामकरण संस्कार:

जब स्त्री के प्रथम गर्भ का सातवाँ महीना आता है, 'गोद भराई' (God Bharayi) का अनुष्ठान होता है। उस दिन गर्भवती स्त्री हरे रंग की साड़ी पहनती है। 'गोद भराई' के अनुष्ठान में रिश्तेदार आमंत्रित किए जाते हैं। रिश्तेदार गर्भवती स्त्री की हरी साड़ी के पल्लू में, उसकी गोद में मिठाई और फल उपहार स्वरूप रखते हैं। जो-जो फल उपहार स्वरूप उसकी गोद में डाले जाते हैं, उन फलों को वह संतान पैदा होकर, जब तक दो माह का न हो जाए, वह उन्हें नहीं खा सकती। इसलिए गर्भवती स्त्री से पहले ही पूछ लिया जाता है कि उसे कौन से फल नापसंद हैं, उन्हीं फलों को उसे उपहार में दिया जाता है।

संतान की पैदाइश के 8-9वें दिन 'झूला झुलाना' (Jhula Jhulaana) का अनुष्ठान किया जाता है। इस दिन रिश्तेदारों के बच्चों को घर पर आमंत्रित किया जाता है। संतान को पालने (झूले) में लिटाया जाता है। पालने के चारों तरफ नारियल में गुड़ डालकर रखा जाता है। बच्चे पालने को आकर झुलाते हैं और नारियल-गुड़ उठाकर ले जाते हैं।

नवजात शिशु के जन्म के समय ही, अस्पताल से घर आने के पश्चात उसका खतना किया जाता है। खतना शिशु की आयु तीन साल का होने से पहले करना जरूरी है।

शिशु (बालक/बालिका) के जन्म के छठे दिन 'छठी' (Chhathi) (नामकरण) मनाया जाता है। इस दिन मित्र एवं रिश्तेदार घर आते हैं। बच्चे को पहली बार नया कपड़ा पहनाया जाता है। बच्चे को नए कपड़े 'गादड़ी' (Gaadadi) में रखा जाता है। घर पर ही मीठे पकवान बनाए जाते हैं। देसी घी के दीपक पर उल्टा कच्चा दीपक रखकर काजल बनाया जाता है। पारंपरिक तरीके में बच्चे की बुआ बच्चे का नाम रखती थी, किन्तु अब बच्चे के माँ-बाप उसका नाम रखते हैं। जब आगा खान मुंबई में निवासरत थे, तब वे बच्चों का नाम खुद रखते थे। नाम रखने में एक बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि जिस अक्षर से पिता का नाम शुरू होता है, उसी अक्षर से संतान का नाम रखा जाता है। बच्चे के लिए नई कलम एवं कॉपी रखी जाती है। माना जाता है कि 'छठी माँ' बच्चे की किस्मत लिखती हैं। भोजन कर मेहमान बच्चे को उपहार देकर चले जाते हैं। उपहार में कपड़े और गहने मुख्य होते हैं।

बच्चा जब 10-15 दिन का हो जाता है, माता-पिता उसे जमातखाना ले जाते हैं। जमातखाने के 'मुखी साहेब' (Mukhi Saheb) पानी में कुरान शरीफ की आयात पढ़कर बच्चे को मजहब में लेते हैं। इस अनुष्ठान को 'बैयत' (Baiyat) कहा जाता है। मुखी साहेब (जमातखाना के अध्यक्ष) की अनुपस्थिति में यह अनुष्ठान 'कमाड़िया साहेब' (Kamadiya Saheb) (जमातखाना के

उपाध्यक्ष) करते हैं। बैयत अनुष्ठान में बच्चे के साथ उसके माता-पिता की उपस्थिती अनिवार्य होती है।

व्यवसाय:

वर्धा के खोजा समुदाय का मुख्य पेशा व्यापार है। पंद्रह परिवारों में सिर्फ दो पुरुष सरकारी नौकरी में हैं। इधर नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियां इंजीनियर, डॉक्टर एवं एम.बी.ए. करके विदेशों (कनाडा, अमेरिका, लंदन, बेल्जियम, दुबई) में कार्यरत हैं। चूंकि पारंपरिक तौर पर व्यापार खोजा का मुख्य पेशा है, पति और पत्नी दोनों ही व्यापार में अपना योगदान देते हैं। व्यापार संबंधी घरेलू काम पत्नी एवं बाहरी काम पति संभालता है। जैसे संबंधी कार्य पति ही संभालता है। रसोई महिला संभालती है। सभी घरों में हाउसमेड काम करती है, जिसे पत्नी नियंत्रित करती है। घर पर क्या खाना बनेगा? यह भी पत्नी ही तय करती है। बेटी घर की साफ-सफाई एवं रसोई संबंधी कामों में मदद करती है। बेटा घर के बाहर के काम में मदद करता है। जैसे का इनवेस्टमेंट, जमीन की खरीद, नया व्यापार, कौनसी कार खरीदनी है? आदि पति तय करता है। लड़के पिता के साथ व्यापार देखते हैं। लड़कियां माँ के साथ घर संभालती हैं। लेकिन लड़की और लड़के दोनों को अनिवार्यतः उच्च शिक्षा दी जाती है। खोजा अपने धर्मगुरु आगा खान की बहुत इज्जत करते हैं और उनका कहना है कि बेटियों को पढ़ाना और उनके द्वारा नौकरी करना जरूरी है। पारिवारिक निर्णय पति और पत्नी मिलकर लेते हैं, किन्तु आपसी सहमति नहीं होने पर पति का निर्णय ही माना जाता है।

दत्तक संतान ग्रहण:

वर्धा के खोजा समाज में दो ऐसे मामले हैं, जिसमें निःसंतान दंपति द्वारा बच्चा गोद लिया गया है। बच्चा कागजी कार्यवाही द्वारा गोद लिया गया है। यदि किसी दंपति के संतान नहीं है तो पति के सगे भाई अथवा बहन की ही संतान को गोद लेने का प्रावधान है। किसी दंपति के बच्चा नहीं पैदा होने की स्थिति में, पति के सगे भाई अथवा बहन से अपेक्षा की जाती है कि वह उनके लिए बच्चा पैदा करे। बच्चा गर्भ में आते ही निःसंतान दंपति का माना जाता/जाती है, न कि अपने जैविक मता-पिता का/की। बच्चा कानूनी रूप से गोद लिया जाता/जाती है। विवाह, दत्तक संतान ग्रहण, शिक्षा, सामाजिक मध्यस्थता के लिए सामुदायिक काउंसिल जाते हैं। काउंसिल के चार स्तर हैं – लोकल काउंसिल, रीजनल काउंसिल, नेशनल काउंसिल एवं इंटरनेशनल फोरम। वर्धा जोकि लोकल काउंसिल है, वह नागपुर रीजनल काउंसिल के अंतर्गत आता है।

नातेदारी:

खोजा समुदाय में दोनों ही 'रक्त संबंधी' एवं 'विवाह संबंधी' नातेदारों को सम्मान दिया जाता है। किन्तु परिवार पितृवंशीय एवं पितृसत्तात्मक होता है। वंश एवं संपत्ति दोनों ही पिता से पुत्र को प्राप्त होती है। परिवार अधिकांश मामलों में विस्तृत एवं कुछ मामलों में संयुक्त प्रकार के पाए गए हैं। विवाह पश्चात पत्नी अपने पति के घर में सास-ससुर के साथ रहती है। नातेदारी शब्दावली में गुजरती भाषा का असर देखने को मिलती है। शादी-विवाह एवं दूसरे कार्यक्रमों में दोनों ओर के

नातेदारों को बुलाया जाता है। कई मामलों में पत्नी अपने मायके के रिश्तेदारों से भी राय-मशवरा लेती है। मजलिश में दोनों ओर के रिश्तेदार इकट्ठा होते हैं। बच्चों की शादी तय करने में दोनों ओर के रिश्तेदारों की बराबर भूमिका होती है। वर्धा के खोजा के अधिकांश रिश्तेदार मुंबई में रहते हैं। साल में कुछ न कुछ कार्यक्रम जैसे कि शादी, बच्चे का जन्म, नई दुकान का उद्घाटन आदि ऐसे पड़ जाते हैं कि मुंबई से वर्धा एक-दूसरे का आना जाना रहता ही है। रिश्तेदारों के वाट्सएप ग्रुप बने हुये हैं, जिसमें सभी एक दूसरे से रोजाना संपर्क में रहते हैं।

विवाह एवं तलाक

परिवार अनिवार्यतः एक पति-एक पत्नी हैं। विवाह में दोनों पक्षों के माता-पिता की रजामंदी जरूरी होती है। माता-पिता ही बच्चों की शादी तय करते हैं। चूंकि लगभग सभी परिवार व्यापार से जुड़े हैं, साथ ही खोजा समुदाय की जनसंख्या सीमित है, अतः विवाह अमूमन आराम से तय हो जाता है। विवाह तय करने में दोनों 'रक्त संबंधी' एवं 'विवाह संबंधी' नातेदारों की सलाह पर विशेष ध्यान दिया जाता है। रीजनल काउंसिल की मैरिज कमिटी जमातखाने अथवा रिलीजियस एजुकेशन सेंटर में निकाह पढ़वाने का काम करती है।

दो-तीन दशक पहले यवतमाल जिले में मजलिश होती थी, जिसमें शादी की उम्र के लड़के-लड़कियां अपने माता-पिता के साथ जाते थे। मजलिश तीन दिन चलती थी। एक मेले जैसा माहौल होता था। रीजनल काउंसिल की मैरिज कमिटी के समक्ष विवाह योग्य बेटे/बेटी के माता-पिता अपने बच्चे के विवरण के साथ ही उन्हें कैसा वर/वधू चाहिए, उसका विवरण देते थे। मैरिज कमिटी ऐसे परिवारों को मजलिश में मिलाती थी। रजामंदी होने पर मैरिज कमिटी ही निकाह पढ़ाने, मेहर का अनुबंध तय करना तथा विवाह का प्रमाणपत्र देने का काम करती थी। वर एवं वधु के माता-पिता लिखित प्रमाणपत्र देते थे कि विवाह उनकी रजामंदी से हुआ है। कई मामलों में मजलिश में मैरिज कमिटी के माध्यम से सगाई करा दी जाती थी, विवाह वे बाद में अपनी सुविधानुसार करते थे। किन्तु अब यह व्यवस्था समय के साथ कमजोर हो गयी है।

खोजा का प्रयास रहता है कि विवाह तोड़ने से बचा जा सके। यदि फिर भी ऐसी स्थिति आ जाती है तो दोनों तरफ के परिजन, रिश्तेदार, जमातखाने के मुखी साहेब एवं मैरिज कमिटी, दोनों पति और पत्नी को समझाती है कि विवाह को न तोड़ा जाए। फिर भी समझौता नहीं होने की स्थिति में मैरिज कमिटी ही विवाह को तोड़ने का अंतिम निर्णय देती है।

दहेज उस तरह का नहीं है जैसा मुख्यतः उत्तर भारत में देखने को मिलता है। वर पक्ष की तरफ सी किसी भी तरह की मांग नहीं रखी जाती है। वधु पक्ष अपनी स्वेच्छा से जो भी उपहार (मुखतः सोने के गहने एवं कपड़े प्रचलन में हैं) वर को देता है, उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया जाता है।

समुदाय से बाहर विवाह अब चलन में आने लगा है। इसके लिए दोनों पक्षों के माता-पिता की रजामंदी जोकि अमूमन देखने को मिलती है, के बाद रीजनल कमिटी की मैरिज कमिटी जमातखाने अथवा रिलीजियस एजुकेशन सेंटर में निकाह पढ़वाने का काम करती है।

मनोरंजन एवं मन बहलाव:

घर के अंदर टेलीविजन, दावत, त्योहार, ओटीटी प्लैटफॉर्म (नेटफिलक्स आदि) का प्रयोग मनोरंजन के लिए किया जाता है। घर के बाहर पर्यटन, फिल्म देखने जाना, रिश्तेदारों और दोस्तों के घर जाना, धार्मिक जगहों पर जाना मनोरंजन के मुख्य साधन हैं। औरतें विशेष रूप से जमातखाने में शाम की नमाज के बाद देर तक आपस में गप करती हैं। फिल्म देखने, संगीत और खेलकूद में औरतों की सक्रिय भागीदारी रहती है।

आर्थिक संगठन:

अधिकांश परिवार पारंपरिक रूप से व्यापार (होटल, हार्डवेयर, भंगार (कबाड़) एवं जूते के) से जुड़े हैं। नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियां मेडिकल, एम.बी.ए. एवं इंजीनियरिंग की पढ़ाई करके देश के महानगरों के साथ ही विदेशों (अमेरिका, कनाडा, दुबई, लंदन, बेल्जियम आदि) में नौकरी कर रहे हैं। केवल दो ही पुरुष वर्धा में सरकारी नौकरी में सेवरत हैं। होटल, हार्डवेयर, भंगार (कबाड़) एवं जूते का व्यापार वर्धा के खोजा समुदाय का मुख्य पेशा है। समुदाय का ईकोनोमिक बोर्ड नया व्यापार शुरू करने, व्यापार घाटे में हो तो उसे ठीक करने में सहयोग देता है। समुदाय का कॉर्पोरेटिव बैंक (इस्माइली) व्यापार संबंधी मामलों में आर्थिक मदद प्रदान करता है। इसके अलावा घर की आर्थिक स्थिति खराब होने पर सोशल वेलफेयर बोर्ड जरूरतमंद परिवार की छोटी से छोटी जरूरत को पूरा करता है। एजुकेशन बोर्ड स्कूली शिक्षा से लेकर विदेश में पढ़ाई करने में सहयोग देता है।

सामुदायिक नेता की भूमिका:

जमातखाने के मुखी साहेब, मुखियानी साहिबा (मुखी साहेब की पत्नी), कमाड़िया साहेब, एवं कमाड़ियानी साहिबा (कमाड़िया साहेब की पत्नी) समुदाय के आपसी विवाद का निपटारा, बच्चे के जन्म, विवाह, गृह प्रवेश, नए व्यापार/दुकान के उदघाटन, मृत्यु आदि में सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

पर्व:

वर्धा में निवास करने वाले खोजा समुदाय के मुख्य पर्व रमजान ईद (ईद-उल-फितर), बकरीद (ईद-उल-अजहा), सालगरा (मौला आगा खान का जन्मदिन), इमामत दिवस (यह दिवस इस्माइलियों के वर्तमान इमाम आगा खान चतुर्थ के इमाम बनने की सालगिरह के रूप में प्रतिवर्ष 11 जुलाई को मनाया जाता है), मीलद उन-नबी, ईद अल-गदीर, यौम-ए-अली हैं। नवरोज (पारसी नव वर्ष) एक मुख्य त्योहार है, जिसका खोजा समुदाय में भी महत्व है। आदमी और औरत दोनों जमातखाने में तीन समय की नमाज अदा करते हैं।

चाँद रात में जमातखाने में मजलिश होती है। मजलिश में पारंपरिक मुखी के स्थान पर समुदाय में से ही किसी व्यक्ति को मुखी चुन लिया जाता है। पीरों के लिखे 'गीनान' (छपदंद) (इस्लाम की गुजराती भाषा में काव्य में लिखी टीका) को एक साथ लय में गाया जाता है। इमाम की शान में 'कसीदे' (छपदंद) पढ़े जाते हैं। पीरों की इमाम के साथ विमर्श के दौरान घटाने वाली घटनाओं का जिक्र किया जाता है।

मस्जिद में कोई भी जा सकता है, जो दो शर्तें पूरी करता है— पहली शर्त, जिसका खुदा पर यकीन हो। दूसरी शर्त, जो पैगंबर पर यकीन करता हो। जमातखाने में जाने की तीन शर्तें हैं— पहली शर्त, जिसका खुदा पर यकीन हो। दूसरी शर्त, जो पैगंबर पर यकीन करता हो। और तीसरी शर्त, जो इमाम में यकीन रखता हो। चूंकि खोजा मस्जिद में ही जमातखाना होता है और सुन्नी इमाम पर यकीन नहीं रखते, या जो कोई भी खुदा, पैगंबर के साथ इमाम पर यकीन नहीं रखता, वह खोजा मस्जिद नहीं आ सकता। जबकि खोजा अन्य (सुन्नी) मस्जिद में जा सकते हैं।

मुहर्रम:

मुहर्रम को लेकर खोजा में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं दिखी। लेकिन इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि मुहर्रम के दौरान कोई नया काम, नया व्यापार नहीं शुरू किया जाता है। इस दौरान घर के लिए कोई नया समान, यहाँ तक कि नए कपड़े भी खरीदने से बचा जाता है। लोकल कमिटी से परिपत्र आता है कि मुहर्रम के दौरान कोई भी जश्न एवं नया काम न शुरू करें। यदि इस काल में इमाम का जन्मदिन भी पड़ रहा है, तो उसे बहुत सादगी से मनाया जाए। मुहर्रम न मनाने के पीछे की मुख्य धारणा है कि खोजा इमाम का कहना है कि जब मैं आपके लिए हमेशा हाजिर हूँ, तो गम किस लिए!

मृत्यु संस्कार:

सर्वप्रथम मय्यत को गुस्ल दी जाती है। तदुपरांत उसे कफन पहना कर नमाज—ए—मय्यत पढ़ा जाता है। इसके बाद मय्यत को दफन किया जाता है। मृत्यु के दसवें दिन रिश्तेदारों को भोज दिया जाता है। चूंकि अब लोगों के पास न तो समय है और न ही सुविधा है कि वे बार—बार आएँ अथवा दस दिन तक रुके रहें। इसलिए अब मृत्यु के दूसरे दिन ही भोज दे दिया जाना शुरू कर दिया गया है। अंततः जियारत—ए—मय्यत का नियम है।

निष्कर्ष:

अल्पसंख्यक समुदाय के अंदर भी अल्पसंख्यक 'खोजा' समुदाय अपने पारंपरिक जीवन में सामाजिक—सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित हो रहा है। समुदाय के अंदर मजबूत सामाजिक—सांस्कृतिक एवं आर्थिक गठबंधन के बावजूद परिवर्तन साफतौर पर देखे जा सकते हैं। कोई भी समाज कभी भी एक सा नहीं रहता है, समय के साथ हर समाज में परिवर्तन अनिवार्य रूप से होता है। खोजा समुदाय ने सामाजिक—सांस्कृतिक परिवर्तनों से द्वंद करने की जगह उन्हें खुले मन से स्वीकार किया है। जिसका असर उनके संस्कारों, अनुष्ठानों एवं जीवन शैली में साफ दिखाई पड़ता है। खोजा समुदाय के अंदर 'हम' की भावना बहुत मजबूत है। समुदाय ने अपनी सामाजिक संरचना का निर्माण इस तरह किया है कि इसका कोई भी सदस्य कभी भी खुद को अकेला नहीं पाता है। विषम आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति में पूरा समुदाय सहयोग के लिए खड़ा रहता है। बाकी मुस्लिम समुदाय के इतर खोजा ने अपने आप को शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति के मामले में तुलनात्मक रूप से बहुत ज्यादा समृद्ध किया है। चाहे उच्च शिक्षा का मामला हो या व्यवसाय का, खोजा की

सामुदायिक कमिटी हमेशा सहयोग के लिए तत्पर रहती है। खोजा समुदाय की नई पीढ़ी पारंपरिक व्यवसाय (व्यापार) से इतर विदेशों में नौकरी करने में ज्यादा रुचि लेती दिख रही है।

मानवविज्ञान विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
virupy@gmail.com

सन्दर्भ :

1. Ali, S. Mujtaba. (1936) The Origin of the Khojas and their Religious Life Today. Würzburg: Buchdruckerei Richard Mayr.
2. Census of India, 2011
3. Dobbin, Christine (1972) Urban leadership in Western India. Politics and Communities in Bombay City 1840-1885. Oxford: Oxford University Press.
4. Engineer, Ashgar Ali. (1989) The Muslim Community of Gujarat: An Exploratory Study of Bohras, Khojas, and Memons. Delhi.
5. Ethnoven, R. E. (1922) The Tribes and Castes of Bombay Vol. II. Bombay: Government Central Press.
6. <https://www.britannica.com/topic/Khoja>, retrieved on 11 December 2024, 09:40 PM
7. Perry, E. (1853) Cases Illustrative of Oriental Life and the Application of English Law to India. Law Bookseller and Publisher: London

हिंदी कविता में आदिवासियत : स्वप्न और संघर्ष

संजय नाईनवाड

सारांश :

हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श के अंतर्गत आने वाले आदिवासी विमर्श की शुरुआत 20 वीं सदी के अंतिम दशक से होती है। 1991 में तत्कालीन सरकार द्वारा उदारीकरण और मुक्त अर्थ-व्यवस्था की नीति का अवलंब किया गया। इस नीति के चलते आदिवासी इलाकों में बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण करके राष्ट्रीय कंपनियों के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उद्योग व्यवसायी प्रतिष्ठानों की स्थापना की। इसके चलते आदिवासी समुदाय व पर्यावरण के लिए गंभीर संकट पैदा हो गए हैं। बहरहाल आदिवासी रचनाकार इन्हीं संकटों को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन कर रहे हैं।

आदिवासी साहित्य वह है जिसमें आदिवासियों का जीवन व समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ है। आदिवासी दर्शन के लिए 'आदिवासियत' इस शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। आदिवासी साहित्य के अध्येताओं ने इसके पंद्रह तत्व निर्धारित किए हैं। इन तत्वों के आधार पर किसी रचना के आदिवासी रचना होने या न होने का निर्धारण किया जाता है। यहाँ इन्हीं तत्वों को ध्यान में रखकर 'हिंदी कविता में आदिवासियत : स्वप्न और संघर्ष' यह आलेख लिखा गया है।

बीज शब्द : आदिवासियत, प्रकृति, ग्लोबलाइजेशन, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, रचाव-बसाव, भाषायी एवं सांस्कृतिक एकता, पथलगढ़ी, हसदेव वन, संघर्ष, विस्थापन, जैव-विविधता, नियमगिरि, भारतीय ज्ञान-परंपरा, मिथक, नई शिक्षा नीति, मानवीय मूल्य।

हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श के अंतर्गत आदिवासी विमर्श समाविष्ट किया जाता है। हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श 1991 के बाद तेजी से उभर आया नया विमर्श है। 1991 में तत्कालीन भारत सरकार द्वारा उदारीकरण व मुक्त अर्थ-व्यवस्था की नीति अपनाने के चलते आदिवासी समुदायों के सामने जल, जंगल, जमीन, संस्कृति व अपने अस्तित्व को बचाए रखने का बड़ा संकट खड़ा हो गया है। 1991 के बाद से देश के आदिवासी इलाकों में हजारों सालों से संचित व सुरक्षित प्राकृतिक संपदा को राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा खुले आम लूटा जाने लगा है। इस प्रक्रिया में आदिवासी उनकी भूमि से विस्थापित हो रहे हैं। इस विस्थापन से उनके सामने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक व भाषिक स्तर पर गंभीर संकट खड़े हो गए हैं। आज इसी पृष्ठभूमि में आदिवासी साहित्य सृजित होने लगा है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर विचारकों में तीन तरह के मत दिखायी देते हैं। उनमें — (1) आदिवासी विषय पर लिखा साहित्य (2) आदिवासियों द्वारा लिखा साहित्य और (3) आदिवासियत के तत्वों का निर्वहन करने वाला साहित्य।

उपरोक्त तीसरे मत को रखने वाले वे लेखक हैं जो आदिवासियत के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं। “ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14–15 जून 2014 को रांची (झारखंड) में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में इस अवधारणा को ठोस रूप में प्रस्तुत किया जिसे ‘आदिवासी साहित्य का राँची घोषणापत्र’ के तौर पर जाना जा रहा है और जो अब आदिवासी साहित्य विमर्श का केंद्रीय बिंदु बन गया है।”¹ आदिवासी दर्शन के तहत उन्होंने बुनियादी पंद्रह तत्वों को समाविष्ट किया है। जिसके आधार पर आदिवासी साहित्य की कसौटी तय की गयी है। इसी आधार पर किसी रचना के आदिवासी रचना होने न होने का निर्धारण किया जाता है।

आदिवासी कविता के क्षेत्र में ग्रेस कुजूर, रामदयाल मुंडा, सरिता सिंह बड़ाईक, मोतीरावेण कंगाली, हरिराम मीणा, शंकरलाल मीणा, महादेव टोप्पो, सुषमा असुर, निर्मला पुत्तुल, ग्लैडसन डुंगडुंग, ओली मिंज, जसिंता केरकेट्टा, ज्योति तिग्गा, अनुज लुगुन जैसे रचनाकार सक्रिय रहे हैं। इनमें से अधिकतर रचनाकार 2014 के पूर्व से लिखते आ रहे हैं। इनकी कविताओं के केंद्र में आदिवासियत व आदिवासी जीवन से जुड़े मुद्दे हैं।

आदिवासियत या आदिवासी दर्शन की विशेषता कि इसमें प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध की गरीमा को महत्व दिया गया है। वैसे साहित्य में प्रकृति का चित्रण रीतिकाल, छायावाद, नई कविता आदि में भी देखने को मिलता है परंतु यहाँ चित्रित प्रकृति नायक-नायिका का प्रेम, वासना, शृंगार आदि तक सीमित है। इस प्रकृति वर्णन को पढ़ते समय पाठक के मन में शृंगार रस की उत्पत्ति होकर काम भावना उदीप्त हो जाती है। परंतु आदिवासी कविता में प्रकृति का यह संकीर्ण रूप नहीं है। आदिवासी कविता में प्रकृति का फलक व्यापक है। यहाँ प्रकृति के सारे उपादान आदिवासियों के अस्तित्व का आधार हैं। आदिवासियों के गोत्र तक वनस्पती, पशु-पक्षी आदि से जुड़े हुए होते हैं इसलिए गोत्र से जुड़ी हर चीज उनके लिए पवित्र है। इन चीजों को वे नुकसान नहीं पहुँचाते। आदिवासियों के देवता भी प्रकृति में वास करते हैं। जैसे इकिर बोंगा (नदी देवता) सींगबोंगा (सूर्य देवता) मरांग बुरू (पर्वत देवता) करम देवता (करम वृक्ष) आदि। आदिवासियों में मृतकों के नाम पर पेड़ भी लगाए जाते हैं। आदिवासी मानते हैं कि इन पेड़ों पर उनके पूर्वज निवास करते हैं। आदिवासी यह भी मानते हैं कि पेड़ों को नुकसान पहुँचाना यानी उनके पूर्वजों को नुकसान पहुँचाना है।

आदिवासियों के लिए प्रकृति का हर उपादान उपकारक है। चूँकि इनका जीवन प्रकृति व उसका आसपास ही है। इसलिए प्रकृति उनके लिए पूजनीय है। दूसरी बात कि मूलतः आदिवासियों की प्रवृत्ति प्रकृति से लाभ कमाने की नहीं है। वे प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितना उनके जीवन जीने के लिए आवश्यक है। प्रकृति किस कदर आदिवासियों के लिए अहम है इसे उड़ीसा के कालाहांडी की पर्वतमाला नियमगिरि के डोंगरियाँ कौंध आदिवासियों के उदाहरण से समझा जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कंपनी वेदांता 2013 में नियमगिरि पर्वतमाला में बॉक्साइट की खदाने खुलवाने के लिए उड़ीसा सरकार से भूमि अधिग्रहण की कोशिशें करने लगी थी। मामला कोर्ट में चला गया।

जब कोर्ट ने ग्रामसभाओं की राय लेने का आदेश दिया तब डोंगरियाँ कौंध आदिवासियों की 112 गाँवों की “ग्रामसभाओं ने एक सिरे से खनन के प्रस्ताव को यह कहकर खारिज किया कि नियमगिरि हमारे भगवान और आजीविका का साधन हैं। हम किसी भी कीमत पर नियमगिरि क्षेत्र में खनन नहीं होने देंगे।”² आदिवासी और प्रकृति एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। प्रकृति के बिना आदिवासियों की कल्पना नहीं की जा सकती। इस संदर्भ में जगदीश सिंह सरदार की ‘आदिवासी’ इस कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं —

“अस्तित्व में अवस्थित प्राकृतिक पंच तत्वों से
हमारी सृजन हुई है इसी कारण गर्व से
हमें प्रकृति से बेइंतहा प्रेम है
हम आदिवासी प्रकृति के उपासक हैं
हम आदिवासी तो प्रकृति के पूजक हैं
प्रकृति ही जीवन की जीवन रेखा है
प्रकृति के बिना संसार में जीवन असंभव है
प्रकृति है तो मानव जीवन सहित अन्य जीवन का अस्तित्व है।”³

आज आदिवासियों के समक्ष अपनी भाषा और संस्कृति को बचाने का संकट खड़ा हो गया है। चूँकि ये चीजें आदिवासी समुदाय की पहचान और आदिवासी दर्शन के महत्वपूर्ण अंग हैं। परंतु मौजूदा दौर में बाहरी लोगों की आदिवासी क्षेत्रों में घुसपैठ होने से आदिवासी भाषा व संस्कृति संकटग्रस्त है। भाषा को लेकर 2013 में कराए गए ‘पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया’ में कहा गया है कि भारत में आदिवासियों द्वारा 480 भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत के लिए भाषायी दृष्टि से यह गौरव की बात है। परंतु दूसरी ओर भारतीय भाषाओं की दृष्टि से यूनेस्को की 2009 की रिपोर्ट चिंता का विषय है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में 196 भाषाएँ खत्म हो जाने की कगार पर हैं। इन भाषाओं में कुडुख, मुंडारी, खड़िया, असुरी, भूमिज, बिरहोरी जैसी आदिवासी भाषाएँ भी शामिल हैं। किसी समाज से उसकी भाषा खत्म हो जाना यानी उस भाषा के साथ जुड़ी सामाजिक अस्मिता, उस भाषायी समाज की मौखिक एवं लिखित साहित्य परंपरा, कलाएँ, लोक-कलाएँ, गीत, संगीत, उस समाज के जीवन अनुभव का भी खत्म हो जाना है। अतः आदिवासी रचनाकार भाषाओं को बचाने की बात करते हैं। जसिंता केरकेट्टा ‘मातृभाषा की मौत’ नामक कविता में इसी चिंता को व्यक्त करते हुए लिखती हैं —

“मातृभाषा खुद नहीं मरी थी/उसे मारा गया था
पर माँ यह कभी न जान सकी/रोटियों के सपने/
दिखाने वाली संभावनाओं के आगे/भींच लिए थे अपने दाँत/
और उन निवालों के सपनों के नीचे/दब गई थी मातृभाषा”⁴

आदिवासी दर्शन की विशेषता है कि वह भाषाओं को बचाने के साथ-साथ संस्कृतियों को भी बचाने की बात करता है। वह चाहता है कि देश में सभी संस्कृतियों को फलने-फूलने के समान अवसर मिलने चाहिए। इस देश का इतिहास भी है कि यहाँ विभिन्न संस्कृतियाँ फली-फूली हैं। इन तमाम संस्कृतियों के मेल से ही भारतीय संस्कृति विकसित हुई है। भारत का लोकतंत्र

इसकी शानदार मिसाल है। परंतु आज के ग्लोबलाइजेशन के दौर में एक भाषा, एक संस्कृति जैसी विचारधारा विकसित हो रही है। यह विचारधारा भारत जैसे विविधता वाले देश के लिए घातक साबित हो सकती है। चूँकि भारत की पहचान ही है — विविधता में एकता। अतः आदिवासी दर्शन भी भाषिक व सांस्कृतिक विविधता की वकालत करता है। सुषमा असुर 'हम जरूर जिएँगे ही, पठार की तरह निडर' इस कविता में असुर समुदाय के भाषा और संस्कृतिविहीन हो जाने की पीड़ा व्यक्त करती हुई लिखती हैं —

“पठारी क्षेत्र तुमने (असुरों को) मजदूर बनाया /
पर स्कूल जाने के लिए पैसा नहीं दिया /
हमें आगे बढ़ने के लिए रास्ता नहीं बतलाया /
अब हमारे पास भाषा नहीं है /
अब हमारे पास संस्कृति नहीं है / हम तुम्हें कैसे पुकारें /
हम तुम्हें किस विधि से याद करें?”⁵

आज आदिवासी समुदाय गैर आदिवासी समुदायों द्वारा हो रहे धार्मिक व सांस्कृतिक हमलों से त्रस्त हैं। इस संदर्भ में हेराल्ड एस. तोपनो लिखते हैं, “उच्च जातियाँ आदिवासियों की प्रथाओं और संस्कृति को तुच्छ कहकर उनकी आलोचना करते रहती हैं। वे आदिवासियों पर अपनी संस्कृति को थोपते हैं। उनकी जीवन पद्धति और संस्कृति में हस्तक्षेप करते हैं, जिससे आदिवासियों की अपनी संस्कृति बुरी तरह विकृत हो रही है।”⁶ आज आदिवासी इलाकों में आदिवासियों का धर्मांतरण आम बात हो गई है। आदिवासी इलाकों में अब दिकू काबिज हुए हैं और आदिवासी अल्पसंख्यक बनते जा रहे हैं। आज बहिरागतों के दबाव के चलते आदिवासी समाज बिखर गया है। निर्मला पुतुल की ‘संथाल परगना’ कविता की निम्न पंक्तियाँ आदिवासियों की अपनी भूमि, संस्कृति, समुदाय व भाषा से कट जाने की पीड़ा को वाणी देती है —

“संथाल परगना
अब नहीं रह गया संथाल परगना
बहुत कम बचे रह गये हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में
यहाँ के लोग उतना भी बच नहीं रह गया
‘वह’ संथाल परगना में जितने कि
उनकी संस्कृति के किस्से।”⁷

1991 में सरकार द्वारा उदारीकरण व मुक्त अर्थ-व्यवस्था की नीति अपनाएँ जाने के चलते बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आदिवासी क्षेत्रों में उद्यम-व्यवसाय खोलने की व प्राकृतिक संपदा को लूटने की खुली छूट मिल गयी। इन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने देश में औद्योगिकीकरण, बाजारवाद व धनलोलुपता को बढ़ावा दिया है। जिसके चलते आदिवासी बहुल राज्यों में — भूमि अधिग्रहण, वनों की कटाई, बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ, खदानों का खुलना और शहरीकरण आम बात हो गयी। नतीजा, हजारों सालों से प्रकृति के सानिध्य में जीवन जीते हुए वनों का संवर्धन और उसकी सुरक्षा करता

आया आदिवासी उक्त नीति के चलते विस्थापित, भूमिहीन और बेरोजगार हो रहा है। औद्योगिकीकरण, बाजारवाद व धन लोलुपता का विरोध, यह आदिवासियत का एक तत्व है। रामदयाल मुंडा की कविता 'विकास का दर्द' औद्योगिकीकरण, बाजारवाद व धन लोलुपता का विरोध करती है। सभ्य समाज के लिए विकास का अर्थ और आदिवासियों के लिए विकास का अर्थ, दोनों में अंतर है। जिसे सभ्य समाज विकास कहता है, उसे आदिवासी अपना अस्तित्व नष्ट किए जाने के अर्थ में लेता है। शहरों में 24 घंटे बिजली का मिलना, पक्की सड़कों का बनना, बांधों का बनाया जाना, कारखानों का खुलना, शहरों का विस्तार होना, जंगलों को काटकर कालोनियाँ एवं अपार्टमेंट्स का बनाया जाना, क्या यही विकास है? आदिवासी दृष्टि से सोचें तो यह विकास नहीं है। चूँकि इस विकास को हासिल करने के लिए कई राज्यों के आदिवासी बहुल इलाकों में लाखों एकड़ जमीन कोयला खदानों, बांध परियोजनाओं, कारखानों, शहरों व कालोनियों को बसाने हेतु स्वाहा कर दी गई। नतीजा करोड़ों आदिवासी अपनी भूमि से कट गए, जैव-विविधता बाधित हुई, पर्यावरण का संतुलन बिगड़ गया। इसलिए रामदयाल मुंडा ऐसे विकास के मॉडल का विरोध करते हुए लिखते हैं –

“बन गया हूँ गीदड़/रहा दौड़/शहर की ओर/
मरने से पहले/या कि एक पेड़/विशाल शाल का/
गिरा जा रहा चीरा/बीच मशीन आरा/
कहते हैं विकास के लिए...हैं।”⁸

पीछले 10 सालों से छत्तीसगढ़ के आदिवासी हसदेव वन बचाओ आंदोलन चला रहे हैं। सरगुजा, कोरबा और सूरजपुर जिलों में लगभग 170,000 हेक्टेयर भूमि पर फैला यह वन जैव-विविधता से संपन्न है। प्रकृति व पर्यावरण की दृष्टि से इस वन को मध्य भारत का फेफड़ा कहा जाता है। इसी वन पर स्थानीय आदिवासियों की आजीविका का लगभग 70 प्रतिशत भार है। यहाँ पर भरपूर औषधीय वनस्पतियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के जंगली जीव, पशु-पक्षियों की भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के करोड़ों वृक्ष आबाद हैं। यह देश का सबसे बड़ा वन है जो पर्यावरण को संतुलित रखता है, शुद्ध जल, वायु प्रदान करता है। इसी जंगल से हसदेव जैसी नदी और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। आज अडानी समूह राजस्थान विद्युत निगम के लिए इस जंगल में कोयले के लिए खनन कार्य कर रहा है। यहाँ पिछले 10 सालों से विशालकाय लाखों पेड़ों को काटकर खदानें खोलने का सिलसिला जारी है। यही हाल रहा तो तेजी से हसदेव वन तबाह हो जाएगा। करोड़ों पेड़ कट जाएँगे तो वहाँ की जैव-विविधता व पर्यावरण का क्या होगा, इसकी कल्पना से ही सिहरन पैदा हो जाती है। आज आदिवासी रचनाकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के षडयंत्र खूब समझ रहे हैं। इसलिए निर्मला पुतुल जैसी कवयित्री 'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' इस कविता में लिखती हैं –

“अगर हमारे विकास का मतलब/हमारी बस्तियों को उजाड़कर/
कल कारखाने बनाना है/तालाबों को भोथकर राजमार्ग/
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स/कॉलोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें/हमारे ही शहर की सीमा के बाहर/

हाशिए पर धकेलना है/तो तुम्हारे कथित विकास की मुख्यधारा में/

शामिल होने के लिए हमें/सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।⁹

आज का मानव बुद्धिमान है। विज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो पृथ्वी पर इस मानव की विकास यात्रा लगभग 25 लाख वर्षों पूर्व की है। यह बुद्धिमान मानव (होमो सैपियंस) होमो नामक शाखा से विकसित हुआ है। इसी शाखा की मानव प्रजातियों में आस्ट्रालोपीथीकस, रुडोल्फेंसिस, इरेक्टस, निएंडरथलेंसिस, सोलोऐंसिस, सेपियंस जैसी प्रजातियाँ शामिल हैं। इन सब प्रजातियों में आज केवल सेपियंस प्रजाति ही अस्तित्व में है बाकी सब विलुप्त हो गयी हैं। होमो शाखा की इन तमाम मानव प्रजातियों का न कोई धर्म था, न कोई जाति थी, न कोई वर्ण था। उसका धर्म केवल एक ही था कि जीवन संघर्ष में किसी तरह खुद को बचाना, अपने आपको सुरक्षित रखना, यही सचाई है। फिर मौजूदा धर्म, नस्ल, जाति, वर्ण कहाँ से प्रकट हुए? आज इस पर चिंतन किया जाना जरूरी है।

असल में वैदिककाल में ऋग्वेद की रचना किए जाने तक वर्ण-व्यवस्था के बारे में कोई साक्ष्य नहीं मिलते। किंतु ऋग्वेदकाल के अंतिम दौर में या उसके बाद वर्ण-व्यवस्था वजूद में आने की संभावना है। ऋग्वेद का 'पुरुषसूक्त' समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित करता है। डॉ. आंबेडकर के विचारानुसार ऋग्वेद का पुरुषसूक्त प्रक्षिप्त है। वे लिखते हैं, "ऋग्वेद की भाषा व पुरुषसूक्त की भाषा का अंतर ध्यान में लें तो साबित हो जाता है कि पुरुषसूक्त हाल ही के काल में ऋग्वेद में घुसेड़ दिया गया है। और ऐसी सचाई होने के चलते आर्य समाज में शुरुआत में चार वर्ण अस्तित्व में थे, इस थ्योरी को पुरुषसूक्त का विवेचन सबूत रूप में मान्य नहीं किया जा सकता"¹⁰ आगे उत्तर वैदिककाल में ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद व संहिताओं की रचना वर्ण-व्यवस्था को मजबूत बनाने की दिशा में हुई। इस पर 'मनुस्मृति' ने कलश चढ़ाया। इसके बाद लिखे गए संस्कृत ग्रंथों ने भी इसी व्यवस्था का अनुसरण किया और वर्ण-व्यवस्था को बरकरार रखने में सफलता प्राप्त की। वर्ण-व्यवस्था गैर बराबरी को जन्म देती है। इसमें मनुष्य की पहचान वह जिस जाति में जन्मा है, उसी जाति के आधार पर होती है। असल में मनुष्य की पहचान उसके कर्मों के आधार पर होनी चाहिए न कि जाति के आधार पर। इसलिए आदिवासी दर्शन रंग, नस्ल एवं जाति के आधार पर मनुष्य को बाँटने वाली विचारधारा का विरोध करता है। यह दर्शन मानता है कि मनुष्य को सबसे पहले मनुष्य बनने की आवश्यकता है। मानव होकर भी यदि मानव, मानव नहीं बन पाया तो उसके मानव होने की कोई सार्थकता नहीं है।

उपरोक्त संदर्भ में ओली मिंज की कविता 'शायद मैं आदमी हूँ' पर विचार किया जाना जरूरी है, जिसमें कवि, मानव के मानव बनने की बात कर रहा है। कवि, इस कविता में वर्ण-व्यवस्था स्थापित हो जाने के पूर्व की वस्तुस्थिति को रखना चाहता है। कवि के अनुसार जब मानव की उत्पत्ति हुई थी, तब न कोई जाति थी, न कोई धर्म था, न कोई संप्रदाय, न किसी तरह का भेदभाव। धर्म, जाति, वर्ण, ऊँच-नीच जैसी चीजें झूठ हैं। मनुष्य के लिए मानवता ही सर्वोपरि है। 'शायद मैं आदमी हूँ' इस कविता की पंक्तियाँ इसी सचाई को उजागर करती हैं —

"शायद मैं आदमी हूँ/लेकिन जन्मकुंडली से ब्राह्मण हूँ/

क्षत्रिय हूँ/वैश्य हूँ/शूद्र हूँ/इनमें से जो सबसे पुराना/
 वहीं मेरा दावा/शायद मैं आदमी हूँ।¹¹

मिथकों को डी-कोड करना आदिवासी दर्शन की विशेषता है। आदिवासी मानते हैं कि वैदिक साहित्य में आदिवासियों की छवि खराब करने के लिए उन्हें विकृत रूप में चित्रित किया गया है। इसके मूल में पूर्वाग्रह और घृणा रही है। वैदिक साहित्य में आदिवासियों को असुर, राक्षस व दानव आदि के रूप में चित्रित किया गया। इस तरह के चित्रण से आदिवासी असहमति दर्शाते हैं। आदिवासियों की मान्यता है कि इरादतन आदिवासी नायकों को खलनायक साबित करने के लिए इस तरह का झूठ रचा गया है। इस झूठ से पर्दा उठाने के लिए आदिवासी साहित्यकारों द्वारा नरकासुर, महिषासुर और रावण आदि पात्रों की नए सिरे से व्याख्या की जा रही है।

आदिवासी साहित्यकारों को मिथकों को डी-कोड करने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? इसकी पड़ताल करने के दौरान पता चलता है कि भारत में आर्य सभ्यता व द्रविड़ सभ्यता दो भिन्न-भिन्न सभ्यताएँ थीं। वैचारिक मतभेद और भूमि के चलते दोनों सभ्यताओं के बीच लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। अक्सर विजित के पास पराजित के साथ किस तरह का व्यवहार किया जाए, इसकी पूरी छूट व आजादी होती है। इसी आजादी का अनुचित लाभ उठाते हुए लड़ाइयों में पराजित होने पर आदिवासियों की छवि खराब करने के लिए उन्हें 'असुर' या 'दानव' कहा जाता था। असल में आदिवासी समुदाय के नायक — राजा थे, वनों के रक्षक थे, अपने भूप्रदेश व अपने समुदाय की रक्षा करने वाले लोग थे। जब-जब अपने इलाकों पर आक्रमण होता तब-तब वे आक्रमण का जवाब प्रतिआक्रमण से देते थे। इसलिए आदिवासी अपने राजाओं को प्रतापी और शूरवीर मानते हैं। झारखंड, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के आदिवासी बहुल इलाकों में असुर आदिवासी महिषासुर को अपना पूर्वज मानते हुए उसकी पूजा करते हैं। उनका मानना है कि दुर्गा ने महिषासुर की हत्या छल का सहारा लेकर की थी। इसलिए भारत में एक ओर नवरात्र के दौरान एक समुदाय दुर्गा की पूजा-आराधना करता हुआ महिषासुर मर्दन को हर्ष के साथ मनाता है तो दूसरी ओर आदिवासी समुदाय नवरात्रों में शोक मनाता है। देश का गोंड आदिवासी समुदाय रावण को अपना पूर्वज मानता है। आदिवासियों के अनुसार रावण महाप्रतापी, न्यायप्रिय, प्रकांड विद्वान राजा थे। आदिवासी दशहरा पर्व का नहीं बल्कि दशहरा पर्व में प्रतिवर्ष होने वाले रावण दहन की घटना का विरोध करते हैं। वे माँग करते हैं कि दशहरा पर्व पर रावण दहन पर पाबंदी लगायी जाए। आदिवासी साहित्यकार मिथकों को डी-कोड करने के साथ-साथ अपने महापुरुषों की खराब की गयी छवि को सुधारने का प्रयास करते हुए नए सिरे से इतिहास लेखन की बात उठाते हैं। महादेव टोप्पो अपनी कविता 'रचने होंगे स्वयं ग्रंथ' में इसी बात को रखते हुए लिखते हैं —

"इतिहास तुम्हारा/इतिहास के पन्नों पर/
 गढ़ा नहीं शब्दों ने/ना ही हो सका दर्ज ग्रंथों में
 तुम्हारी विजय-गाथाओं/और संघर्षों के गवाह/
 पेड़ हैं, नदियाँ हैं, चट्टानें हैं/इससे पहले कि
 वे पुनः तुम्हारा अपने ग्रंथों में/अन्य जानवर के रूप में करें वर्णन/

तुम्हें अपने आदमी होने की/तलाशनी होगी परिभाषा/
और रचने होंगे स्वयं अपने ग्रंथ ।¹²

सहजीविता व सहअस्तित्व, प्रेम व सद्भाव, सामुदायिकता व सहयोगिता यह भी आदिवासी दर्शन का एक तत्व है। आज भारत में 550 से भी अधिक जनजातियाँ व उसकी कई उप जनजातियाँ निवास करती हैं। वे सभी सहजीविता व सहअस्तित्व, प्रेम व सद्भाव, सामुदायिकता व सहयोगिता को आवश्यक मानते हैं। आदिवासी दर्शन में व्यक्तिवाद का भी कोई महत्व नहीं है। उनके लिए समुदाय महत्वपूर्ण है। आदिवासी साहित्यकारों की रचनाओं में इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है। अनुज लुगुन की कविता 'हमारी अर्थी शाही नहीं हो सकती' में सह अस्तित्व की भावना के साथ ही आदिवासी दर्शन का अन्य एक तत्व संपूर्ण सृष्टि के प्रति सम्मान और प्रेम भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है –

“हमने चाहा कि फसलों की नस्ल बची रहे/
खेतों के आसमान के साथ/हमने चाहा कि
जंगल बचा रहे अपने कुल-गोत्र के साथ/
पेड़ की जगह पेड़ ही देखें/नदी की जगह नदी/
समुद्र की जगह समुद्र और/पहाड़ की जगह पहाड़।”
गीत साझा करते हुए हम सहजीवी होते हैं।/
जुगनू, तितली, फूल, पेड़, नदी, जंगलधूसभी सहजीवी जानते हैं”¹³

आदिवासी दर्शन प्रकृति को संसाधन नहीं मानता बल्कि उसे जीवन का आधार मानता है। इसलिए वह निसर्ग के उपादानों का कभी दोहन नहीं करता। वह अपनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए उसे बचाए रखना चाहता है। वह मानता है कि इस धरती पर मानव सबसे अंत में आया है। अतः उसकी भूमिका प्रकृति के संरक्षक की है। आदिवासी प्रकृति के रचाव और बसाव में ही विश्वास करता है, यह भी आदिवासियत का एक तत्व है। आज विकास के नए मानकों ने आधुनिक मनुष्य को जंगल उजाड़ने का जो हुनर दिया है उसमें आदिवासियों के खेत-खलिहान, मसना-सरना, पहाड़, नदियाँ, जंगल, जीव, सभी विकास की भेंट चढ़ते जा रहे हैं इसलिए महादेव टोप्पो आदिवासियत को बचाने का संकल्प लेते हुए 'चौथे महायुद्ध के बाद' इस कविता में लिखते हैं –

“अब यदि छिड़ेगा कोई महायुद्ध/मैं धन-दौलत कुछ नहीं बचाऊँगा/
बचाऊँगा अपना और पुरखों का जंगलीपन/क्योंकि तब मनुष्य का/
संपूर्ण अस्तित्व हो जाएगा खत्म/तो यह आदिवासीपन ही/
जंगलीपन ही बचाएगा/बनाएगा/ सिरजेगा/
चौथे महायुद्ध के बाद जन्मे मनुष्य को”¹⁴

आदिवासी रचनाकारों को पहचान का मुद्दा भी सता रहा है। मुख्यधारा उन्हें आदिवासी के रूप में मान्यता नहीं देना चाहती। ऐसी मान्यता के तहत आदिवासियों को आदिवासी कहने पर वे इस धरती के ज्ञात इतिहास के सबसे प्राचीन निवासी सिद्ध हो जाएँगे और उनकी आदि सभ्यता, आदि संस्कृति, आदि धर्म, इतिहास व भाषाओं को भी मान्यता मिल जाएगी। अतः आदिवासियों की 'आदिवासी' पहचान खत्म कर देने के लिए उन्हें इतर नाम दिए जा रहे हैं। महादेव टोप्पो 'मैं पूछता हूँ' कविता में लोकतंत्र और उसकी मुख्य धारा से सवाल करते हैं –

“संविधान की भाषा में हम/अनुसूचित जाति या/
अनुसूचित जनजाति हैं/मनु की भाषा में शूद्र/
कम्युनिस्टों की भाषा में शोषित/भाजपाइयों की भाषा में पिछड़े हिंद/
मैं पूछता हूँ तुम सबसे/आखिर इस/देश में इस प्रजातंत्र में/
हम क्या हैं, हम क्या हैं? मैं पूछता हूँ।”¹⁵

आदिवासी दर्शन की विशेषता है कि उसमें उनके पुरखा-पूर्वजों के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल व मनुष्य की भलाई के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया उसके प्रति उसमें आभार की भावना का होना।

नई शिक्षा नीति, 2020 में भारतीय ज्ञान-परंपरा, भारतीय भाषाएँ, संस्कृति, कला-कौशल आदि को बढ़ावा देने हेतु विशेष प्रावधान किए हैं। नई शिक्षा नीति के साथ आदिवासी दर्शन का उक्त तत्व मेल खाता है। आदिवासियों के पास इससे जुड़ी समृद्ध विरासत है। वनों में रहने के कारण उनके पास पेड़-पौधों व उनके औषधीय गुणों का अद्भुत ज्ञान है। उनके पास जल संचयन, अनाज भंडारण, बीजों व पेड़-पौधों का ज्ञान है। उनके पास निसर्ग के क्रियाकलापों का अनुभव आधारित ज्ञान है। उनके द्वारा गुफाओं में, विशालकाय चट्टानों पर उकेरी गई कला-कृतियाँ, शैलचित्रों में संचित ज्ञान, पत्थलगढ़ी के पत्थरों पर लिखी चीजें भारतीय ज्ञान-परंपरा को समृद्ध कर सकती हैं। अतः नई शिक्षा नीति के आलोक में इन चीजों पर शोध की आवश्यकता है।

आदिवासी देशभक्त वीर पराक्रमियों ने विदेशी आक्रांताओं के साथ लड़कर माँ भारती की रक्षा भी की है। देश की स्वाधीनता का पहला स्वतंत्रता संग्राम के रूप में 1857 की क्रांति को जाना जाता है। परंतु इतिहास की पड़ताल करेंगे तो हमें पता चलता है 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के लगभग 70-80 वर्षों पहले आदिवासी इलाकों में आदिवासियों द्वारा देश की स्वाधीनता के लिए कई लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं। इनकी एक लंबी परंपरा रही है, परंतु वह इतिहास में दर्ज नहीं है। ग्लैडसन डुंगडुंग ने ‘बिरसा आबा अब तो आओ’ कविता आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी बिरसा मुंडा, जिन्होंने महज 25 वर्ष की आयु में ही अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे, के प्रति सम्मान का भाव व्यक्त करते हुए लिखी है। साथ ही इस कविता में वे आज देश को बिरसा जैसे शूरवीर की विरासत को आगे बढ़ाना क्यों जरूरी है, इस बात को भी रखते हैं –

“डोंबारी बुरु में
चलाए तुमने अंग्रेजों पर तीर
तुम्हारे वंशजों पर चलाकर गोली
बन गये वे शूरवीर
अंग्रेजों को देश से तुमने मार भगाया।”¹⁶

निष्कर्ष

सारतः कहा जा सकता है कि आदिवासियत के उक्त सभी तत्व भारत की भाषायी विविधता, संस्कृतिक विभिन्नता, पर्यावरण की सुरक्षा व संवर्धन, देश की एकता और स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को लेकर चलते हैं। यह तत्व मानवीय मूल्यों की भी बात रखते हैं। आदिवासी दर्शन के कुछेक

तत्व भारतीय ज्ञान परंपरा को निसंदेह विस्तार देने में भी सहायक हैं, इन पर भविष्य में शोध किए जाने आवश्यक हैं। आदिवासियत और उसके तत्वों को लेकर यहाँ एक बात स्पष्ट करना भी उचित लगता है कि आदिवासी साहित्य के अध्येताओं द्वारा जिन तत्वों का निर्धारण किया है वे सभी सदा सर्वकाल प्रासंगिक रहेंगे ही इसके बारे में निश्चित कुछ कहा नहीं जा सकता। चूँकि आज आदिवासी समुदाय कई प्रकार के परिवर्तनों से गुजर रहा है। इन परिवर्तनों के कारण उक्त तत्वों में से कुछ तत्व परिवर्तित भी हो सकते हैं। या यह भी हो सकता है कि स्वयं आदिवासी समुदायों से ही कुछेक इन तत्वों के साथ संतुलन ना रख पायें। वास्तव में मानव का नैतिक दायित्व है कि रचनात्मक और सकारात्मक चीजों को लेकर आगे बढ़ें और अपनी ओर से भलाई के लिए योगदान दें। आदिवासी साहित्य इन चीजों को लेकर आगे बढ़ रहा है। आदिवासी साहित्य का संदेश वसुधैव कुटुम्बकम्, जियो और जीने दो और मानव कल्याण की कामना का रहा है। गीता का सार भी यही है, बुद्ध और महावीर का संदेश भी यही था। आदिवासियों का अभिवादन 'जय जोहार' (सबका कल्याण करने वाली प्रकृति की जय हो) भी यही संदेश देता है।

हिंदी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,

सागर, मध्य प्रदेश – 470003

sknainwad79@gmail.com

सन्दर्भ :

1. टेटे वंदना (सं) आदिवासी दर्शन और साहित्य (2015) विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 12
2. कुमार विनोद, विकास की अवधारणा (2016) अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पृ. 52
3. <https://yuvaniya.in/2024/08/16/tribes-poetry/> दि. 10/11/2024 को सुबह 10:00 बजे देखा गया।
4. <https://www.hindwi.org/kavita/matribhasha-ki-maut-jacinta-kerketa-kavita>, दि.10/11/2024 को दोपहर 03:30 बजे देखा गया।
5. <https://www.forwardpress.in/2017/05/ham-jarur-jienge-hi-pthar-ki-tarah-nidar>, दि.12/11/2024 को सुबह 08:30 बजे देखा गया।
6. तोपनो हेराल्ड एस., उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष (2015) विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 30
7. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द (2005) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ. 26
8. गुप्ता रमणिका (सं.) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी (2008) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 42
9. पुतुल निर्मला, बेघर सपने (2014) आधार प्रकाशन, पंचकुला, पृ. 40
10. अंबेडकर भीमराव (डॉ.) हु वेअर द शुद्राज (शूद्र पूर्वी कोण होते – अनुवाद : चांगदेव खैरमोडे) (2017) सुगावा प्रकाशन, पुणे, पृ. 218
11. https://www.aadiwasijivansanghrsh.com/2024/03/blog-post_18.html, दि.15/11/2024 को सुबह 09:30 बजे देखा गया।
12. गुप्ता रमणिका (सं.) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी (2008) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 48
13. <http://kavitakosh.org/kk/> हमारी-अर्थी-शाही-हो-नहीं-सकती-/-अनुज-लुगुन, दि.15/11/2024 को दोपहर 03:30 बजे देखा गया।
14. गुप्ता रमणिका (सं.) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी (2008) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 48
15. वहीं, 49
16. <https://www.aadiwasijivansanghrsh.com/2024/08/he-ulgulan-ke-devata-birsa-aaba-ab-to.html?m=1>, दि. 20/11/2024 को सायं 07:30 बजे देखा गया।

बगवाल – सामरिक अभ्यास से धार्मिक परम्परा तक: देवीधूरा के विशेष सन्दर्भ में

ऋचा जोशी

सारांश :

‘बगवाल’, जिसका सम्बन्ध इतिहास में पाषाणयुद्ध के पूर्वाभ्यास से था, वर्तमान में मात्र धार्मिक परम्परा बन कर रह गयी है। परम्पराएं समय की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अस्तित्व में आती हैं। समय बीतने पर बहुत सी परम्पराएं या तो अप्रासंगिक हो जाती हैं या किसी बदलाव की अपेक्षा रखती हैं। धार्मिक परम्पराओं के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि लोग उनके मूल कारण को भूल जाते हैं और आंख बंद करके उसके कर्मकांडीय पक्ष का अनुसरण करते रहते हैं। वस्तुतः बगवाल अर्थात् पाषाण युद्ध, पर्वतीय योद्धाओं की एक विशिष्ट सामरिक अभ्यास हेतु प्रारंभ की गयी परम्परा थी जो पर्वतीय क्षेत्रों की सुरक्षा का अभिन्न अंग हुआ करती थी। वर्तमान में यह दैवीय अनुकम्पा प्राप्त करने हेतु किया जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान मात्र बनकर रह गयी है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से बगवाल के वास्तविक इतिहास को दर्शाने का प्रयास किया जाएगा तथा वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का तार्किक विश्लेषण किया जाएगा।

बीज शब्द : बगवाल, द्यौका, जमान, अठवार, खाम, अश्मवृष्टि, पाषाणयोधी, ढह

प्राक्कथन

प्राचीन काल से ही पर्वतीय क्षेत्रों के निवासियों द्वारा अपने क्षेत्र की रक्षा हेतु पथरों को हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया जाता रहा है। पाषाण, पर्वतीय इलाकों की सुरक्षा हेतु अभिन्न प्राकृतिक औजार रहे हैं। पर्वतीय जनों द्वारा बाह्य आक्रमण के समय दूसरी ओर से आते हुए शत्रु के सैनिकों पर पाषाण वर्षा कर स्वयं की रक्षा के बहुत से कथानक इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के राजा अपनी जनता की सुरक्षा हेतु समय-समय पर युद्धाभ्यास करवाते थे ताकि सेना के भीतर संयुक्त परिचालन कौशल विकसित हो सके। बगवाल भी इसी प्रकार के सामरिक अभ्यास की प्रक्रिया रही है जिसका अर्थ है—पाषाण वर्षा। पाषाण युद्ध के पूर्वाभ्यास की प्रक्रिया बगवाल लगभग समस्त पहाड़ी क्षेत्रों यथा हिमाचल, गढ़वाल, कुमाऊं तथा नेपाल में प्रचलित थी। नई तकनीक व आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के विकास के साथ युद्ध में पाषाणों की प्रासंगिकता कम हो जाने तथा विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों द्वारा इस अभ्यास पर रोक लगाने के परिणामस्वरूप अनेक स्थानों से

बगवाल खेलने की प्रथा समाप्त हो गयी। वर्तमान में यह कुछ ही स्थानों पर शेष है। इस परम्परा का ऐतिहासिक पक्ष विस्मृत किया जा चुका है तथा इससे जुड़ी जनश्रुतियों, लोककथाओं तथा किंवदंतियों पर आधारित इसके धार्मिक पक्ष मात्र का अनुकरण किया जा रहा है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में बगवाल परम्परा की ऐतिहासिकता का अध्ययन करना तथा इस परम्परा से सम्बंधित प्रचलित विभिन्न जनश्रुतियों, लोककथाओं, लोकोक्तियों तथा किंवदंतियों का ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करना है। साथ ही वर्तमान में बगवाल की प्रासंगिकता का तार्किक विश्लेषण करना एवं समय के अनुसार परम्पराओं में बदलाव की आवश्यकता का विवेचन करना भी इस शोध पत्र के उद्देश्य में सम्मिलित है।

बगवाल की ऐतिहासिकता

बगवाल का अर्थ है 'पाषाण वर्षा' अथवा 'पाषाण युद्ध का पूर्वाभ्यास'। पाषाण वर्षा पर्वतीय योद्धों की एक विशिष्ट सामरिक प्रक्रिया रही है। अत्यंत प्राचीन काल से ही हमें उनके विशिष्ट युद्ध कौशल का उल्लेख मिलने लगता है। महाभारत में इन्हें 'पाषाणयोधी', 'अश्मयुद्ध विशारदा' कहा गया है¹। पत्थरों की वर्षा को महाभारत में 'अश्मवृष्टि' कहा गया है²। महाभारत के इस युद्ध में इन पाषाणयोधी पर्वतीय वीरों ने कौरवों की ओर से लड़ते हुए सात्यकी (पांडवों के पक्ष में लड़ने वाला एक यादव योद्धा) के छक्के छुड़ा दिए थे। कालीदास ने उल्लेख किया है कि राजा रघु जब अपनी दिग्विजय यात्रा हेतु हिमालय के राजा को जीतने आये थे तो उनके सैनिकों को यहां के पाषाणयोधी पर्वतीय सैनिकों का सामना करना पड़ा था। जिस प्रकार वर्षाकाल की समाप्ति पर यहां के राजपूत शासकों के द्वारा अपनी विजय यात्राओं के पूर्व युद्धाभ्यास किया जाता था उसी प्रकार इन पर्वतीय क्षेत्रों के छोटे-छोटे ठक्कुरी शासकों अथवा मांडलिकों के द्वारा भी वर्षाकाल की समाप्ति पर युद्धाभ्यास किया जाता था जिसे बगवाल कहते थे। इसमें प्रमुख अभ्यास पाषाण युद्ध के रूप में किया जाता था³।

मध्यकाल व उत्तरमध्यकाल में जब कृषक अपने कृषि-कार्यों से मुक्त हो जाते थे तो मौसमी रोजगार के तहत उस खाली समय में राजा द्वारा जनता से कुछ हृष्ट-पुष्ट लोगों को अपने ही आलों व धड़ों से चयनित कर युद्धाभ्यास करवाया जाता था। आपातकाल के समय कभी-कभी इन्हें जनसुरक्षा हेतु युद्ध में जाना पड़ता था। कत्यूरियों, मल्लों, बमों, पालों व चंदों के समय में जलसेना भी थी। जिस प्रकार स्थानीय राजाओं द्वारा क्षेत्र में पैदल सेनाओं का संचालन समय समय पर किया जाता था ठीक इसी प्रकार जल सेना का भी युद्धाभ्यास होता था। जो गांव नदी के किनारे होते थे वह तो ढह नामक युद्धाभ्यास में जाते थे और जो उंचे स्थानों व पहाड़ियों पर होते थे वह बगवाल में प्रतिभाग करते थे⁴।

बगवाल: क्षेत्र एवं विस्तार

पत्थरों के युद्ध वाली बगवाल कुमाऊं, गढ़वाल और नेपाल में अनेक स्थानों पर होती थी। 1886 में एटकिंसन ने लिखा था बगवाल की प्रथा पूरे कुमाऊं और नेपाल में देखने को मिलती है⁵।

क्षत्रियों के सुदृढ़ गढ़ कांगड़ा(हिमाचल प्रदेश) में भी इसके प्रचलित होने के उदाहरण मिलते हैं। कांगड़ा के समीपस्थ गाँव नगरकोटा बगवां में यहाँ के प्रसिद्ध शारदा मंदिर के प्रांगण में वैशाख तथा आश्विन की संक्रांतियों के अवसर पर यह परम्परा प्रचलित थी। गढ़वाल में चमोली के थराली के निकट 'देवदायु कोथिड'(देव-दानव कौतुक) अर्थात् देवों व दानवों के बीच घटित युद्ध सम्बन्धी उत्सव में पाषाण युद्ध का आयोजन हुआ करता था। पहले गढ़वाल की पिंडर घाटी के मींग गधरे में भी पाषाण युद्ध आयोजित किया जाता था⁸।

उत्तराखंड के कुमाऊँ अंचल में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है 'नौ नौर्त, दस दशै, बीस बग्वाल, ये कुमूं फुली भडाल, हिट कुमय्या माल' अर्थात् शारदीय नवरात्र और विजयादशमी के बाद भय्यादूज के दिन बीस स्थानों पर बग्वाल खेलकर कुमाऊँवासी माल यानी मैदानी क्षेत्र के प्रवास पर चले जाते हैं⁹। कुमाऊँ के सभी जिलों में बग्वाल से सम्बंधित स्थलों के नामकरण(यथा अल्मोड़ा जिले के अंतर्गत बग्वाली पोखर) इस बात के प्रमाण हैं कि बग्वाल की परम्परा बहुत विस्तृत थी⁸। के.डी. रुवाली के अनुसार पाली परगने में स्याल्दे, बग्वाली पोखर, कैनाली आदि स्थानों पर शीतला देवी के मेलों के अवसर पर बग्वाल का आयोजन हुआ करता था। अल्मोड़ा जिले के सोमनाथ के मेले में भी इसका भयंकर रूप देखने को मिलता था⁹। रानीखेत का फल्दाकोट, मध्यकाल में कुमाऊँ का एक सशक्त पहाड़ी राज्य था। फल्दाकोट पर कत्यूरियों की ही एक शाखा के खाती क्षत्रियों का वर्चस्व हुआ करता था। कीर्तिचंद के समय फल्दाकोट का राज्य भी चंद शासकों के नियंत्रण में आ गया¹⁰। फल्दाकोट के अंतर्गत सिलिंगी गांव में विषुवत संक्रांति के दिन बग्वाल का आयोजन अभी भी होता है किन्तु उसमें पत्थरों की मार नहीं की जाती¹¹। वर्तमान में यहां पर पाषाण वर्षा के प्रतीक के रूप में पुष्प वर्षा की जाती है तथा मेले (फल्दाकोटी मेला) का आयोजन किया जाता है। अल्मोड़ा के ताकुला विकासखंड के विजयपुर पाटिया गाँव में गोवर्धन पूजा के दिन वर्तमान में भी पाषाण युद्ध होता है¹²। पाटिया गाँव में बग्वाल की प्रथा सदियों से चली आ रही है। इस युद्ध में चार गाँव के लोग हिस्सा लेते हैं और पंचघटिया नदी के दोनों किनारों पर खड़े होकर एक दूसरे के ऊपर जमकर पत्थर बरसाते हैं। जिस दल का सदस्य पहले नदी में उतरकर पानी पी लेता है, उस दल की विजय हो जाती है¹³।

एटकिंसन का कहना है कि पहले हरेले के दिन चमदेवल(पट्टी-गुमदेश), रामगाड़(पट्टी-रामगाड़), नारायणी मंदिर(शालौटी-चखाता) में भी बग्वाल का आयोजन हुआ करता था¹⁴। चम्पावत जिले की विसुंग पट्टी में भय्यादूज के दिन और गुमदेश पट्टी के चमदेवल गांव में चैत्र की नवरात्रियों की दशमी को वर्तमान में भी बग्वाल होती है। यहां पहले पत्थरों से मारामारी हुआ करती थी जो बाद में बंद कर दी गयी¹⁵। वर्तमान में गुमदेश के चमदेवल में चैत्र की नवरात्रियों में चौतोल मेले का आयोजन किया जाता है। एक समय ऐसा था जब सबसे बड़ी बग्वाल नैनीताल के नैनादेवी मंदिर में होती थी¹⁶। कहा जाता है कि यमद्वितीया के दिन गंगोल पट्टी के तल्ला-मल्लाकोट के पुराने किले में स्थित नंदादेवी के मंदिर के टीले पर भी बग्वाल होती थी¹⁷। अंग्रेजों द्वारा विभिन्न पहाड़ी स्थलों पर होने वाली बग्वाल पर रोक लगाये जाने के कारण धीरे-धीरे इसका आयोजन एक-आध जगहों तक सीमित रह गया। तत्कालीन कमिश्नर ट्रेल की इस दिशा में अहम् भूमिका रही थी¹⁸।

देवीधूरा की बग्वाल

कुमाऊं अंचल के चम्पावत जिला मुख्यालय से लगभग 50 किमी. दूर स्थित देवीधूरा में श्रावण शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी(रक्षाबंधन) के दिन बाराही देवी के मंदिर प्रांगण में आज भी पाषाण युद्ध होता है¹⁹। इतिहासकार देवीधूरा की बग्वाल यानी पाषाण युद्ध की परम्परा को आठवीं—नवीं सदी का मानते हैं²⁰। चंद शासकों के सैनिकों की ऐसी टुकड़ियां होती थीं जो अपने गोफनों(ख्योंतारों) से दूर-दूर तक मार करने में सिद्ध हस्त होती थीं। बग्वाली के अवसर पर इसका प्रदर्शन हुआ करता था²¹। बग्वाल से जुड़ा एक ऐतिहासिक मिथक महर और फर्त्यालों के आपसी संघर्ष से भी जुड़ा है। पत्थरों की मार में जो धड़ा जीतता था, वह वर्ष भर के लिए राजस्व का हकदार होता था²²। इतिहासकारों का मानना है कि चंदराजा भी इन जातियों को आपस में लड़ाते रहते थे, जिससे कि उनके ऊपर इनका दबाव कम रहे साथ ही संभावित युद्धों के लिए सेना का युद्धाभ्यास भी जारी रहे²³।

जनश्रुतियां

लोगों का कहना है कि बग्वाल का बीज नरबलि की प्राचीन प्रथा में है। सभी देवी मंदिरों में प्राचीन काल में नरबलि आवश्यक रूप से होती थी। देवीधूरा में भी यह प्रचलित विश्वास है कि प्राचीन काल में यहाँ आस-पास के गांवों से बारी-बारी से एक-एक व्यक्ति की बलि दी जाती थी। कहते हैं कि एक बार एक बुढ़िया के इकलौते लड़के की बारी आई। इस पर वह काफी रोने लगी। उसने राजा के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाया। कुछ लोग कहते हैं कि उसने देवी से अपने बालक की रक्षा की कातर याचना भी की। इस पर राजा या देवी ने आदेश दिया कि आगे से पड़ोस के गांवों के लोग आपस में पत्थरों की वर्षा करेंगे ताकि एक मनुष्य के शरीर में जितना रक्त होता है उतना बग्वाल खेलने वाले द्यौकों के शरीर से भूमि पर गिर जाए। इस प्रकार इसे नरबलि के विकल्प के रूप में स्थापित किया गया²⁴।

नरबलि से सम्बद्ध देवीधूरा की बग्वाल की यह श्रुति परम्परा कितनी तथ्यपरक है इस सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक लेखा जोखा न होने से यद्यपि इस विषय पर निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है किन्तु पुरातन एवं मध्यकालीन ऐतिहासिक तथ्य इस बात के प्रमाण अवश्य देते हैं कि पाषाण युद्ध इन हिमालयी क्षेत्रों के क्षत्रियगणों की एक परम्परागत सामरिक युद्धाभ्यास पद्धति का अभिन्न अंग हुआ करता था तथा इस सामरिक अभ्यास को एक उत्सव के रूप में वर्षाकाल के अंत में मनाया जाता था²⁵।

कहा जाता है कि बग्वाल को एक हिंसक वारदात मानकर कुमाऊं कमिश्नर ट्रेल द्वारा देवीधूरा में बग्वाल पर प्रतिबन्ध लगाने पर ट्रेल की नेत्र ज्योति चली गयी थी। चंद राजाओं के राजगुरु रहे सिमल्टिया पाण्डेय के द्वारा ट्रेल को समझाया गया कि नेत्र ज्योति दैवीय प्रकोप से गयी है। ट्रेल ने बग्वाल पर प्रतिबन्ध हटा दिया और उस वर्ष बग्वाल विलम्ब से खेली गयी। कहा जाता है कि इसके पश्चात ट्रेल की नेत्रज्योति लौट आई²⁶।

धार्मिक विधि विधान एवं पूजा पद्धति

देवीधूरा का यह प्रमुख पर्व रक्षा बंधन पर पड़ने वाली पूर्णिमा को संपन्न होता है। इस अवसर पर आयोजित मेला 'आषाढ़ी कौतिक' कहलाता है किन्तु इस पर्व का प्रारंभ श्रावण मास की

शुक्ल पक्ष की एकादशी से होता है। एकादशी को देवी का सांगीपूजन होता है। देवी की साजसज्जा, शृंगार, षोडशोपचार इत्यादि अनुष्ठान होते हैं²⁷। देवी की सभी सहचरियों सहित 64 जोगिनियों, 64 भैरवों, 52 वीरों-मसानों, बेतालों, रणचंडी, देवसेना- परिवार के परिजनों, परिकरों आदि की पूजा तथा आह्वान किया जाता है। इसी दिन चारों खामों के लोग डोले को अपने कंधे से छुआकर पुरानी परम्परा का निर्वाह करते हैं²⁸। द्वादशी, त्रयोदशी एवं चतुर्दशी को संपन्न होने वाले पूजादि नैतिक धार्मिक कर्मकांड वीराचार पूजन कहलाते हैं। चतुर्दशी के दिन मंदिर में पशुबलि का विधान है। जिसमें अठवार(अष्टबलि) का विशेष महत्व है²⁹। पहले अठवार यानि अष्टबलि के अंतर्गत सात पशुओं(6 बकरियां, 1 भैंसा(कटरा)) तथा 1 नारियल की बलि दी जाती थी³⁰। वर्ष 2018 में उत्तराखंड हाईकोर्ट द्वारा सभी धर्मों के लिए मंदिरों या इबादतगाहों के भीतर या इनके बाहर, चौराहों अथवा सार्वजनिक स्थानों पर पशुओं की बलि एवं कुर्बानी पर रोक लगा दी गयी³¹। इसके पश्चात भैंसे की बलि बंद कर दी गयी। वर्तमान में अष्टबलि के अंतर्गत लोग या तो 7 बकरे तथा 1 नारियल अथवा 8 नारियलों की बलि देते हैं। अष्टबलि वे लोग देते हैं जिनकी कोई मन्नत देवी की कृपा से पूर्ण होनी होती है। यह बलि देवी नहीं अपितु देवी का गण कलुआ बेताल लेता है³²।

पूर्णिमा को होने वाली बगवाल में भाग लेने आस पास के ग्रामों में निवास करने वाले सभी जातियों के लोग अपने-अपने दलों के मुखिया के नेतृत्व में एकत्रित होते हैं। ये लोग चार मुखियाओं के अंतर्गत चार धड़ों में बंटे होते हैं। इन चार धड़ों या दलबन्दियों को खाम कहा जाता है। देवी के मंदिर की उपासना, रक्षा तथा उसके सभी अनुष्ठानों में अपने-अपने दायित्वों को निभाते रहने के कारण इनको चार खाम द्यौका कहा जाता है³³।

चार खाम, चारों दिशाओं के स्तम्भ यानि रक्षक माने जाते हैं। इनमें पूर्व में चम्याल, पश्चिम में लमगडिया, उत्तर में गहड़वाल तथा दक्षिण में वालिक खाम सम्मिलित हैं³⁴। पूर्णिमा के दिन द्यौकों के झुण्ड के झुण्ड अपनी-अपनी टोली नायकों की अगुवाई में देवीधूरा की ओर पैदल चल पड़ते हैं। चारों दिशाओं से चारों खामों के द्यौका लोग अपने-अपने परम्परागत निश्चित स्थानों पर डेरा डालकर बगवाल की घोषणा की प्रतीक्षा करने लगते हैं। देवी के मंदिर का वह प्रांगण जहां पर बगवाल होती है 'दूबाचौड़ खोलीखांड' कहलाता है³⁵। पाषाण युद्ध यानी बगवाल के दिन वालिक और चम्याल खाम एक ओर तथा लमगडिया एवं गहड़वाल खाम के युद्धा दूसरी ओर दूबाचौड़ मैदान में रहते हैं। जिसमें वास्तविक तौर पर युद्ध वालिक खाम का चम्याल खाम से तथा लमगडिया खाम का गहड़वाल खाम से होता है³⁶। पुजारी द्वारा शंखनाद के रूप में युद्धारम्भ का संकेत मिलते ही कुछ क्षणों तक कोरी बगवाल (बिना फर्रों की आड़ के) प्रारम्भ होती है और इसके तुरंत बाद फर्रों की आड़ लेकर ऐसी भयंकर पाषाण वर्षा प्रारम्भ होती है कि उस समय कोई बाहरी व्यक्ति उस रणक्षेत्र में कदम रखने का दुःसाहस नहीं कर सकता है। तेजी से दौड़ते हुए किसी का सिर, किसी का मुंह और किसी के अन्य अंग लहुलुहान हो जाते हैं³⁷।

बगवाल जब अपने चरम पर होती है तो दोनों ओर से बगवाली 'फर्रों' की आड़ लेकर खोलीखांड प्रांगण के केंद्र की ओर बढ़ते हैं। जो केंद्र पर पहुँच जाता है, उसे विजयी मान लिया जाता है। दोनों पक्षों की खामों के लोग प्रतिपक्षी खाम वालों के फर्रों व लाठियां छीनने का प्रयास करते हैं। जिस पक्ष की लाठियां व फर्रें छीने जाते हैं, उसे हारा हुआ माना जाता है। बगवाल के

निमित्त निर्धारित समय समाप्त हो जाने पर मंदिर के पुजारी बग्वालियों के बीच जाकर देवी का तांबे का छत्र सिर पर ओढ़कर, एक हाथ से चंवर गाय की पूछ हिलाते हुए बग्वाल की समाप्ति का संकेत करता है।

खोलीखांड दुबाचौड़ का मैदान और बग्वाली वीर

(स्रोत : <https://www-amarujala-com>)

प्रतिवर्ष बग्वाल के अगले दिन यानी प्रतिपदा को देवी का डोला 'मचवाल' में पहुंचा कर उससे परिक्रमा करवाई जाती है। देवी की यह रथ यात्रा अथवा डोले की शोभायात्रा 'जमान' उठना कहलाता है। मचवाल देवी का मायका माना जाता है। जमान डोला द्वारा मचवाल की परिक्रमा पूर्ण होने पर पुनः उसकी मंदिर में वापसी हो जाती है। द्वितीया की तिथि को मंदिर की शुद्धि कर दी जाती है। इस प्रकार 'देअसाड़ी' या देवीधूरा की बग्वाल के अवसर पर होने वाले समस्त धार्मिक कर्मकांड सम्पूर्ण हो जाते हैं³⁸।

न्यायालय का आदेश और उसके पश्चात की स्थिति

सन 2013 में उत्तराखंड, उच्च न्यायालय ने आदेश दिया था कि बग्वाल को पत्थरों की बजाय फलों और फूलों के साथ मनाया जाय³⁹। इसके पश्चात बग्वालियों को चोटिल होने से बचाने के लिए सरकार ने मुहिम चलाई जिसमें पत्थरों के स्थान पर नाशपाती के फलों से बग्वाल खेलने का प्रचार किया गया और इसके लिए सरकारी कोष से कई कुन्तल नाशपाती के फलों की व्यवस्था की गयी। चूंकि फल एक बार फेंके जाने के बाद फूट गए और दूसरी बार प्रयोग में नहीं आ पाए इसलिए बग्वालियों ने फिर पत्थरों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया⁴⁰। मंदिर समिति के एक सदस्य ने कहा हम शुरुआत तो फलों से करते हैं और भक्तों को पत्थरों का इस्तेमाल न करने का निर्देश देते हैं लेकिन वे इस मामले में अपनी दृढ़ आस्था के कारण निर्देश नहीं मानते⁴¹। वर्ष 2013 में आये न्यायालय के आदेश के पश्चात भी पत्थरों से खेली जाने वाली बग्वाल परम्परा का समापन नहीं हुआ है। प्रत्येक वर्ष रक्षाबंधन के अवसर पर खेली जाने वाली बग्वाल में पत्थरों के इस्तेमाल के कारण न केवल रणबाकुरे अपितु दर्शक भी बड़ी संख्या में घायल होते हैं।

वर्ष	बग्वाल का समय	चोटिल योद्धा	चोटिल दर्शक
2014	14 मिनट	150	30
2015	10 मिनट	124	25
2016	07 मिनट	59	11
2017	08 मिनट	11	323
2018	08 मिनट	112	129
2019	09 मिनट	98	24

स्रोत : अमर उजाला, 13 अगस्त 2022, पृ.-04

वर्ष 2020 में भी जब कोरोना संक्रमण ने सम्पूर्ण विश्व को भयभीत किया हुआ था, देवीधूरा में बग्वाल की परम्परा को टूटने नहीं दिया गया। यद्यपि अंतिम समय तक बग्वाल मेले को लेकर असमंजस बना रहा। कोविड19 के चलते जिला प्रशासन और मंदिर समिति की बैठक में बग्वाल

आयोजित न करने पर सहमती भी बनी तथापि 3 अगस्त 2020 को रक्षाबंधन के दिन खोलीखांड दूबाचौड़ मैदान की परिक्रमा के दौरान दोनों पक्षों के बग्वाली वीरों ने एक दुसरे पर फल और फूलों के साथ आंशिक पत्थर फेंक कर बग्वाल की परम्परा को कायम रखा⁴²। वर्ष 2020 की बग्वाल देवीधूरा में 04 मिनट तक खेली गयी⁴³। 22 अगस्त 2021 में कोविड गाइडलाइन के अनुरूप बग्वाल नाशपाती के फलों से प्रारम्भ हुई। शुरुआत में तो द्योकों ने एक दूसरे पर फल ही बरसाए, उसके बाद चारों खामों से पत्थर और ईटें एक दूसरे पर बरसने लगी। पत्थर और ईटें लगने से 75 लोग घायल हुए। अत्यधिक चोटिल होने पर करीब दो दर्जन से अधिक लोगों के सिर और माथे पर टांके लगने की नौबत आई। कई लोगों के पैरों और हाथों की हड्डियों में भी चोट आई⁴⁴। 12 अगस्त 2022 को करीब 9 मिनट 20 सेकेंड तक बग्वाल खेली गयी। यह मुख्य रूप से नाशपाती, सेब और अन्य फल फूलों से हुई लेकिन अंतिम क्षणों में कई जोशीले योद्धाओं ने पत्थरों की बारिश भी की। इसमें 201 बग्वाली वीर और 29 दर्शक चोटिल हुए। 03 लोगों को हायर सेंटर रेफर किया गया⁴⁵। इसी प्रकार 30 अगस्त 2023 को 11 मिनट चली बग्वाल में कुल 204 लोग तथा 19 अगस्त 2024 को पुनः 11 मिनट चली बग्वाल में 212 लोग घायल हुए⁴⁶।

बग्वाल का दिन	बग्वाल का समय	घायलों की संख्या
3 अगस्त 2020	5 मिनट	03
22 अगस्त 2021	8 मिनट	75
12 अगस्त 2022	9 मिनट	230
30 अगस्त 2023	11 मिनट	204
19 अगस्त 2024	11 मिनट	212

निष्कर्ष :

धार्मिक परम्पराएं समय की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अस्तित्व में आती हैं। बग्वाल भी युद्धाभ्यास हेतु अस्तित्व में आई प्रतीत होती है। इतिहास में हमें न केवल कुमाऊं बल्कि गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश व नेपाल में भी बग्वाल खेले जाने के उदाहरण मिलते हैं। विचारणीय तथ्य है कि ये सभी पर्वतीय क्षेत्र हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में स्थापित अपने राज्यों की रक्षा हेतु शासकों के लिए तत्कालीन समय में पाषाण महत्वपूर्ण हथियार रहे होंगे जो आसानी से और पर्याप्त मात्रा में पर्वतीय क्षेत्रों में मौजूद रहे होंगे। अतः मैदानी इलाकों से आ रहे आक्रान्ताओं से स्वयं के क्षेत्र तथा क्षेत्रवासियों की रक्षा हेतु पाषाणों को बलपूर्वक फेंक कर युद्ध करने का अभ्यास किया जाता होगा। यदि किसी कार्य को धार्मिक आस्था से जोड़ दिया जाता है तो व्यक्ति उसे और भी बेहतर तरीके से संपन्न करने का प्रयास करता है। धर्म तथा आस्था से जुड़े मानदंडों को बिना विचलन या द्वंद्व के जीवन भर सम्पूर्ण मनोयोग से दोहराता है। अतः इस युद्धाभ्यास की परम्परा को भी धर्म तथा आस्था से जोड़ दिया गया जिसे हम वर्तमान समय तक देख सकते हैं।

धार्मिक परम्पराओं के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि लोग उनके मूल कारणों को भूल जाते हैं और आंख बंद करके कर्मकांडीय पक्ष का अनुपालन करते रहते हैं। विचारणीय है कि कर्म के

सिद्धांत को किसी न किसी रूप में सभी संगठित धर्म स्वीकार करते हैं। कर्म सिद्धांत का सरल सा अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके नैतिक या अनैतिक कर्मों के अनुपात में अच्छा या बुरा फल मिलना निश्चित है। अतः ईश्वर को पशुबलि अथवा मानव रक्त समर्पित करने के वजाय नैतिक कर्मों के माध्यम से अधिक प्रसन्न किया जा सकता है तथा पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से अपने दायित्वों का निर्वहन कर उसका आशीष प्राप्त किया जा सकता है। समय बीतने पर कुछ परम्पराओं में बदलाव अपेक्षित होता है। यदि हम बुद्धि या तर्क के स्तर पर नैतिक-अनैतिक का फैसला करते हैं तो हमारी बुद्धि बहुत बड़े लालच व भय के समक्ष कमजोर पड़ जाती है। इस भय से उबरने के लिए जागरूकता फैलाने की आवश्यकता होती है जिसके लिए प्रशासन तथा समाज के जिम्मेदार नागरिकों को गम्भीर पहल करने की आवश्यकता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
govindsgophd@gmail.com

सन्दर्भ:

1. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.456।
2. चौधरी, दीप चन्द्र(स.), हैमवती (लेख : चंद्र सिंह चौहान-कुमाऊं में ओड़ा भेंट व बग्वाल पर्व), उत्तराखंड शोध संस्थान, देहरादून, 2020, पृ.-36।
3. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.456।
4. चौधरी, दीप चन्द्र, हैमवती (लेख : चंद्र सिंह चौहान-कुमाऊं में ओड़ा भेंट व बग्वाल पर्व), उत्तराखंड शोध संस्थान, देहरादून, 2020, पृ.-36,38।
5. जोशी, हीराबल्लभ, बाराही मंदिर देवीधूरा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.86।
6. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.456-457,460,462।
7. जोशी, नवीन, देवभूमि के कण-कण में देवत्व, हिमानी वाड.मय सृजन पीठ, खेडा, हल्द्वानी, 2016, पृ.166।
8. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.188।
9. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.460,461।
10. पुनर्प्राप्त, 'ीजजचे:ध्धंसिजतमम.बवउ, अभिगमन तिथि, 07-12-2024।
11. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.188।
12. चौहान, चंद्र सिंह(क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी, कुमाऊं मंडल, अल्मोड़ा), जाखन देवी, अल्मोड़ा, साक्षात्कार, 29-11- 2024।
13. पुनर्प्राप्त, 'ीपदकप.दमू18.बवउ, अभिगमन तिथि, 07-12-2024।
14. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.460,461।
15. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002 पृ.188।
16. जोशी, हीराबल्लभ, बाराही मंदिर देवीधूरा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.86।
17. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.460,461।
18. उनियाल, हेमा, मानसखंड (कुमाऊं-इतिहास, धर्म,संस्कृति,वास्तुशिल्प एवं पर्यटन), उत्तरा बुक्स,दिल्ली, 2014, पृ.492।
19. भट्ट, त्रिलोक चंद्र, उत्तरांचल के देवालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ.104।
20. नेगी, विद्याधर, कुमाऊं का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मल्लिका बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ.133।

21. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड ज्ञानकोष, भाग-2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृ.456।
22. उनियाल, हेमा, मानसखंड (कुमाऊं-इतिहास, धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन), उत्तरा बुक्स, दिल्ली, 2014, पृ.492।
23. जोशी, हीराबल्लभ, बाराही मंदिर देवीधूरा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.89।
24. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.185-186।
25. शर्मा, डी.डी., उत्तराखंड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2008, पृ.132।
26. जोशी, हीराबल्लभ, बाराही मंदिर देवीधूरा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.87।
27. जोशी, कीर्तिबल्लभ(पीठाचार्य, देवीधूरा मंदिर), देवीधूरा, चम्पावत, साक्षात्कार, 28-11- 2024।
28. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.176।
29. जोशी, कीर्तिबल्लभ(पीठाचार्य, देवीधूरा मंदिर), देवीधूरा, चम्पावत, साक्षात्कार, 28-11- 2024।
30. बिष्ट, शेर सिंह(कर्मचारी, देवीधूरा मंदिर कमेटी), देवीधूरा, चम्पावत, साक्षात्कार, 20-11- 2024।
31. पुनर्प्राप्त, 'ीजजचे:ध्दू'उतनरंसं.बवउ, अभिगमन तिथि, 16-11-2024।
32. जोशी, कीर्तिबल्लभ(पीठाचार्य, देवीधूरा मंदिर), देवीधूरा, चम्पावत, साक्षात्कार, 28-11- 2024।
33. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.180,182।
34. जोशी, कीर्तिबल्लभ(पीठाचार्य, देवीधूरा मंदिर), देवीधूरा, चम्पावत, साक्षात्कार, 28-11- 2024।
35. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.181,183।
36. उनियाल, हेमा, मानसखंड (कुमाऊं-इतिहास, धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन), उत्तरा बुक्स, दिल्ली, 2014, पृ.491।
37. बलूनी, दिनेश चन्द्र, उत्तराखंड का सीमान्त जनपद चम्पावत, विनसर पब्लिकेशन, देहरादून, 2013, पृ.52।
38. सिंह, राम, राग-भाग काली कुमाऊं, पहाड़ प्रकाशन, तल्ला डांडा, नैनीताल, 2002, पृ.184-185,191-193।
39. पुनर्प्राप्त, 'ीजजचे:ध्दू'अईींतंजजपउमे.पदकपंजपउमे.बवउ, अभिगमन तिथि, 14-11- 2024।
40. पंत, पद्मादत्त, उत्तराखंड का कुमूँ, हिमाल प्रेस, पिथौरागढ़, 2015, पृ.38-39।
41. पुनर्प्राप्त, 'ीजजचे:ध्दू'अईींतंजजपउमे.पदकपंजपउमे.बवउ, अभिगमन तिथि, 14-11-2024।
42. समाचार पत्र, दैनिक जागरण, हल्द्वानी(नैनीताल), 04 अगस्त 2020, पृ.02।
43. समाचार पत्र, हिन्दुस्तान, हल्द्वानी(नैनीताल), 04 अगस्त 2020, पृ.01।
44. समाचार पत्र, हिन्दुस्तान, हल्द्वानी(नैनीताल), 23 अगस्त 2021, पृ.04।
45. समाचार पत्र, अमर उजाला, हल्द्वानी(नैनीताल), 13 अगस्त 2022, पृ.04।
46. समाचार पत्र, अमर उजाला, हल्द्वानी(नैनीताल), 20 अगस्त 2024, पृ.02।

जजिया कर और हिन्दू प्रतिरोध : एक मूल्यांकन

शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय

सारांश :

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद कर जजिया था। इस्लामी जगत से भारत की भूमि पर आया यह कर भारतीयों के लिए नया था जो सल्तनत की प्रजा में धर्म के आधार पर विभेद पैदा करता था और हिन्दू होने की हीनता का बोध कराता था। भारत के बहुसंख्य हिन्दू प्रजा के लिए यह केन्द्रीय इस्लामी सरकार द्वारा संपत्ति पर लगाये जाने वाला केवल प्रतिगामी कर भर नहीं था, बल्कि उनकी धार्मिक मान्यताओं पर प्रहार करने वाला और उनकी अपनी ही मातृभूमि पर उनके दावे को संकुचित एवं सीमित करने वाला राजकीय नीति भी था। जजिया को लेकर हिन्दू प्रजा ने फरियाद मांगी तथा न सुनने पर प्रतिकार के लिए सड़क पर भी उतरी। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न कालों में जजिया के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इसे लागू करने एवं वसूलने के तरीके के अलावा इसके प्रभाव का भी मूल्यांकन किया गया है। जजिया के लेकर शासक, अधिकारियों एवं उलेमाओं के दृष्टिकोण पर भी चर्चा प्रस्तुत शोध पत्र में है। साथ ही हिन्दुओं पर पड़ने वाले प्रभाव और उसे लेकर उनकी फरियाद एवं प्रतिकार पर भी प्रकाश डाला गया है। जजिया को लेकर इतिहासकारों के दृष्टिकोण को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : जजिया, हिन्दू, दिरहम, उलेमा, काफीर, खलिफा, शरीयत, हनफी।

प्रारंभिक इतिहास

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद कर 'जजिया' रहा है। इस्लामी शासकों द्वारा यह कर उनके सल्तनत के केवल हिन्दू प्रजा से वसूला जाता था और भारत की बहुसंख्य आबादी हिन्दू थी। किसी धर्म विशेष के होने एवं इसे वसूलने के तरीके (यह कर उन शासकों द्वारा इसे वसूला जाता था, जिनका मूल भारत की भूमि नहीं था) हिन्दुओं के लिए आपत्तिपूर्ण मानवजनित अभिशाप के समान था।

जजिया शब्द 'जजा' से उत्पन्न है जिसका अर्थ है अच्छाई या बुराई की क्षतिपूर्ति।¹ जजिया कर को लेकर कई मत-मतांतर हैं। कुछ इतिहासकार इसे हिन्दू-मुस्लिम साझी संस्कृति में विभेद पैदा करने वाला मानते हैं तो कुछ शासकों की राजनीतिक-प्रशासनिक मजबूरी एवं सल्तनत के आर्थिक हालात को जजिया की वसूली से जोड़कर देखते हैं। लेकिन इतना तो तय है कि जजिया ने मध्यकालीन साझी भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया और इतिहासकारों को अन्वेषण एवं शोध

की नई दृष्टि दी। हिन्दुओं एवं मुसलमानों में भेदभाव प्रदर्शित करने वाला यह कर इस्लामी आक्रमण एवं शासन के साथ भारत आया।

इस्लाम के प्रारंभिक इतिहास में पैगम्बर मोहम्मद जब मदीना में अपने राज्य का गठन कर रहे थे तब उन्होंने अपने अनुयायियों (मुसलमानों) को धार्मिक कर्तव्य के रूप में सरकारी खजाने के लिए धन देने का आदेश दिया था। यह आदेश गैर-मुसलमानों पर लागू नहीं था। किन्तु श्रद्धा के साथ अ-मुसलमानों ने पैगम्बर को धन दिया, जिसे 'जजिया' कहा गया। जजिया राज्य के प्रति अपने सभी आर्थिक आभारों से मुक्त होने का तब साधन था। इस प्रकार इस्लाम की स्थापना के शुरुआती दौर में ही जजिया ने मुसलमानों एवं गैर-मुसलमानों के बीच एक विभाजक रेखा खींच दी थी।

गैर-मुसलमानों को दो व्यापक वर्ग में बांटा गया—एक, अहले किताब अथवा जिनके पास कोई दैवीय पुस्तक हो तथा दो, काफिर या विधर्मी। मदीना के यहूदी और इसाई निवासियों को पैगम्बर ने अहले किताब के तौर पर मान्यता दी। जजिया के बदले इन्हें पैगम्बर ने सुरक्षा और आंशिक धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की।²

इसके बाद भी मुसलमानों एवं अ-मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं था। प्रारंभ में यदि ऐसा होता तो इस्लाम अपनी धरती से आगे नहीं बढ़ पाता और भ्रातृत्व भाव की पैगम्बर की धारणा स्वतः खण्डित हो जाती। गैर-मुसलमानों पर अतिरिक्त कर के रूप में जजिया का उल्लेख प्रारंभ में नहीं मिलता।

इस्लाम के संस्थापक की मृत्यु की अनुवर्ती शताब्दी में मुसलमान अपने चारों ओर के क्षेत्रों को जीतने और वहाँ के लोगों के सामूहिक धर्मांतरण में व्यस्त थे। ऐसे में जिन नये क्षेत्रों में इस्लाम पहुँचा, वहाँ यहूदियों एवं ईसाइयों का भी अस्तित्व था। ऐसे लोगों को 'जिम्मी' कहा जाता था।³

परवर्ती काल में जजिया कर के संस्थापन का संबंध उमर द्वितीय से किया जाने लगा जिसने इस्लामी राज्य में गैर-मुस्लिमों के प्रश्न को जजिया कर लगाकर संतोषजनक रूप से हल करने का प्रयास किया। जजिया की अदायगी अ-मुसलमानों को जो अधिकतर ईसाई और यहूदी थे, अपने-अपने घरों में अपने धार्मिक अनुष्ठान करने की स्वतंत्रता की गारंटी थी।⁴ यह परंपरा बाद में रुढ़ हो गई एवं जजिया अतिरिक्त कर बन गया। वास्तव में जजिया इसाई और यहूदियों के प्रत्येक घरों (मुंड) से वसूला जाने वाला कर था। यह वर्ग विजयोपरांत इस्लामी साम्राज्य का अंग बना था।⁵

जजिया कर का सिद्धांत कुरान की एक आयत पर आधारित है, जिसमें कहा गया है जो लोग खुदा में विश्वास नहीं करते, खुदा एवं पैगम्बर द्वारा वर्णित बातों को नहीं मानते, सत्य धर्म (इस्लाम) स्वीकार नहीं करते और जो धर्मग्रंथ रखते हैं, उनसे अंतिम दिन जब तक कि वे अधीन होकर खुद जजिया न दें, लड़ो।⁶ कुरान लिखता है कि —उनसे लड़ो जो अल्लाह या कयामत के दिन में विश्वास नहीं करते, जो अल्लाह, उनके धर्मदूत द्वारा वर्जित चीजों को वर्जित नहीं मानते, जो पुस्तक के लोगों के बीच पायी सच्ची शिक्षाओं का पालन नहीं करते, जब तक कि वे अपने हाथ से जजिया नहीं देते और पूरी तरह से दमित नहीं हो जाते।⁷

इसी आधार पर इस्लामी धर्मशास्त्र में जजिया की विवेचना जिहाद के रूप में की गई है। इस्लामी परंपरा के अनुसार ऐसे धर्म के अनुयायी जिसमें मूर्ति पूजा स्वीकृत है, उन्हें धर्मयुद्ध द्वारा या तो इस्लाम स्वीकार कराना चाहिए या उन्हें मार डाला जाना चाहिए। ऐसे धर्म के अनुयायी जो इस्लामी राज्य में रहते हैं और जिनका धर्म पुस्तक पर आधारित है उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करने पर जजिया देकर अपनी तथा अपने परिवार की सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।⁹ प्रत्येक मुसलमान के लिए प्रारंभ में सैनिक कार्य अनिवार्य था। गैर-मुसलमानों को इसके एवज में जजिया देना पड़ता था। जो गैर-मुसलमान सेना में भर्ती होते थे, वे जजिया से मुक्त थे।

जजिया कितना एवं किससे वसूलना चाहिए, इस पर इस्लामी धर्मशास्त्रियों ने वृहद् विवेचन किया है। पैगम्बर मोहम्मद के समय गैर-मुसलमानों के हर पुरुष सदस्य पर, जो कर देने के लायक थे, प्रतिवर्ष एक दीनार जजिया कर वसूला जाता था। दीनार एक स्वर्ण सिक्का था, जिसका मूल्य 10 सिलिंग के बराबर होता था और वजन एक मिस्कल या 96 जौ के दानों के बराबर होता था। बच्चे (14 वर्ष से कम के आयु के), वृद्ध, स्त्रियाँ, अंधे, अपंग, पागल, भिखारी और साधु-संन्यासी, यदि उनके पास पर्याप्त स्वतंत्र आय न हो, तो वे इस कर से मुक्त थे। लेकिन धनी महंतों को यह कर देना पड़ता था। यह कर संपत्ति के आधार पर लोगों को तीन श्रेणियों में बाँटकर अलग-अलग लिया जाता था। यह एक ऐसा कर था, जिसने एक ही राज्य में रहने वाले नागरिकों में स्वयं शासन द्वारा भेद करता था।⁹ जजिया से प्राप्त आय सैनिकों की तनखाह में खर्च की जाती थी। पैगम्बर मोहम्मद द्वारा लगाया गया यह कर नया नहीं था। फारस में 'गैजिट' और रोमन साम्राज्य में 'टिब्यूटम कैपिटिस' नाम से इस प्रकार के कर प्रचलन में थे।

उमैया काल (662-748ई०) तक इस्लामी साम्राज्य, अरब, इराक, सीरिया, फारस तथा उत्तरी अफ्रीका तक पहुँच चुका था। इसी काल में यह भारत की पश्चिमी भूमि पर भी पहुँचा। भारत पहुँचने के प्रारंभिक दौर तक जजिया गैर-मुसलमानों पर नाम मात्र का कर था। भारत के बाहर यह कर संविदात्मक अदायगी के रूप में था जहाँ इसे अल्पसंख्यक अ-मुसलमान अपने मुसलमान शासकों को इसलिए देते थे कि उन्हें अपने धार्मिक अनुष्ठान अपने ढंग से करने की अनुमति मिले। साथ ही विभिन्न मतों के बीच गृहयुद्ध की स्थिति न हो और इस्लाम की श्रेष्ठता स्थापित हो जाये। ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में यहूदियों और गैर-मुसलमानों की संख्या कम रही होगी और इस कारण उन्होंने जजिया के संविदात्मक रूप को स्वीकार कर लिया होगा। साथ ही इसके एवज में उन्हें सुरक्षा की गारंटी एवं धार्मिक स्वतंत्रता भी राज्य द्वारा मिली होगी।

भारत में जजिया कर

भारत में जजिया कर 712 ई० में सिंध क्षेत्र में लगा, जब मोहम्मद बिन कासिम ने खलीफा अल मानून के सहायक इराकी गवर्नर अल हज्जाल के आदेश पर राजा दाहिर को हराकर सिंध को जीता। पराजित हिन्दुओं को यह कर देना पड़ा जो उनकी संपत्ति के अनुसार था। भारत में मुसलमानी शासन के विस्तार के साथ अधिकाधिक हिन्दू इस कर के दायरे में आये।¹⁰ जजिया कर के लिए अफगानिस्तान एवं सिंध में बौद्धों एवं हिन्दुओं का उत्पीड़न और धर्मांतरण किया गया। जजिया

कर के लिए गैर-मुसलमानों को आय के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया— उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग। इनसे क्रमशः 40, 20 एवं 10 टंके जजिया के रूप में वसूल किये जाते थे।¹¹ सिंध पर अरबों का शासन अस्थायी रहा। कासिम की मृत्यु (हत्या) के बाद भारतीय क्षेत्रों से जजिया वसूलने का उल्लेख नहीं मिलता।

दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई०) में इस्लामी मान्यता के आधार पर ही वित्त व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया। यह व्यवस्था चार कानून/मान्यताओं पर आधारित थी— हनबली, मलिकी, शफी तथा हनफी।¹² विधि व्यवहार में खलीफा उमर से यह शुरू हुई थी और अब्बासी खलीफाओं (749–900 ई०) तक चलती रही। दिल्ली के सुल्तानों की कर नीति सूफी विधिवेत्ताओं की हनफी परंपरा पर आधारित थी। हनफी¹³ परंपरा खलीफा इमाम अबु हनफी के सिद्धांत पर आधारित था। भारत में प्रारंभिक तुर्क सुल्तानों ने यह प्रणाली गजनवियों से ग्रहण की थी।¹⁴ अरब की परंपरा की तरह सल्तनत काल में भी जजिया गैर-मुसलमानों से लिया जाने वाला कर था। पर इस काल में जजिया के दो अर्थ थे। जो कर खिराज नहीं था, उसे जजिया कहा जाता था। शरीयत के अनुसार गैर-मुसलमानों से प्रति व्यक्ति वार्षिक रूप से लिया जाने वाला कर जजिया था।¹⁵

दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों के लिए यह संभव नहीं था कि वे मूर्तिपूजक हिन्दुओं को अपने राज्य में रहने ही न दें, या उनके सहयोग के बिना शासन करें। ऐसी स्थिति में सुल्तानों ने सामान्य हिन्दू मूर्तिपूजकों को जजिया के एवज में जिंदा रहने का अधिकार दिया। नये क्षेत्र को जीतने के बाद इस्लामी शासकों का यह कर्तव्य था कि वे उन विधर्मियों (जिम्मियों) को अपने संरक्षण में लें, जो राज्य द्वारा लगाये गए कर चुकाने को तैयार हों। जिम्मियों के जीवन, माल और सम्मान की रक्षा का दायित्व मुस्लिम शासकों पर था और बदले में वे उनसे जजिया वसूलते थे। जजिया एक दंड कर था जो गैर-मुसलमानों को उनकी गैर-इस्लामी धार्मिक विश्वास के कारण देना पड़ता था। अपने राज्य की प्रतिरक्षा सेवा करने का प्रत्येक मुसलमान का जो कर्तव्य था, गैर-मुसलमान के लिए जजिया उसी का समान मूल्य वाला रूप था, परन्तु भारत में ऐसा कभी नहीं हो सकता था। यदि ऐसा होता तो जजिया उन हिन्दू शासकों से नहीं वसूल किया जाता जो मुसलमान शासकों से मेल रखते थे और सदैव अपनी सेना के साथ इन शासकों की सहायता करते थे। जजिया हीनता का पट्टा था जो मुसलमान शासक अपनी गैर-मुसलमान प्रजा के गले में लटका देते थे। भारत में इस्लाम के लिए जजिया की कोई उपयोगिता नहीं थी।

दिल्ली सल्तनत के शासकों में फिरोज शाह तुगलक (1355–1388 ई०) ने जजिया का दायरा बढ़ाया। उसने उन ब्राह्मणों से जो पुरोहित या संत न थे, जजिया लेने का फरमान जारी किया। ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया तथा दिल्लीवासी एवं अन्य हिन्दू जातियों ने उनकी ओर से जजिया देने का आश्वासन दिया। सुल्तान फिरोज शाह ने धनी ब्राह्मणों से केवल 10 टंका ही जजिया वसूलने का आदेश दिया था। यह आदेश व्यवहार में केवल दिल्ली तक ही सीमित था।¹⁶

जजिया अप्रिय कर था। फिरोज शाह इस्लाम के विशय में अत्यधिक कट्टर था, इस कारण उसने इसे ब्राह्मणों पर भी लागू किया और कठोरता से वसूलवाया। वास्तव में जजिया की कठोरता

एवं व्यापकता, फिरोज शाह की राजस्व नीति में दोष को दिखाती है। फिरोज शाह को यह बात शरीयत के विरुद्ध जान पड़ती थी कि ब्राह्मण जो कुफ़्र के आधार स्तम्भ थे, वे इस कर से मुक्त कैसे थे? इसलिए सल्तनत के इतिहास में उसने ब्राह्मणों पर भी इसे लागू किया।¹⁷ नकद एवं धार्मिक उद्देश्य को जजिया से जोड़ना भारत के लिए बोज़ था।¹⁸ फिरोज शाह ने आदेश दिया था कि राजस्व की मांग एवं जजिया की वसूली उत्पाद के नियम के तहत की जाए।¹⁹ परन्तु दिल्ली में यह कर प्रत्येक व्यक्ति पर निर्धारित नकद अदायगी की राशि थी।²⁰

इसकी संभावना है कि किसानों के लिए जजिया राजस्व के साथ लगाया जाता था और राजस्व की मात्रा के साथ इसकी वसूली होती थी। जो राजसत्ता को इस्लामी सत्ता मानते थे, उनकी धारणा थी कि सुल्तान जरूरी रूप से इस्लाम का संरक्षण करे, शरीयत को लागू करे एवं गैर—मुसलमानों को दंड दे। वे ब्राह्मणों पर जजिया लगाने के लिए फिरोज शाह की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह ब्राह्मणों को सुल्तान की सत्ता एवं शरीयत के लिए खतरा मानता था। कश्मीर का मुस्लिम शासक जैनुअल आबेदिन (1420—70ई०) ने अपनी गैर—मुस्लिम प्रजा पर जजिया नहीं लगाया। वह हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता देता था।²¹ 14वीं सदी का मोरक्को यात्री इब्न बतूता लिखता है कि दक्षिण भारत के शासक जजिया वसूलते थे। संभवतः बीजापुर के सुल्तानों के लिए बतूता ने ऐसा कहा होगा।

मुगल काल में जजिया कर

बाबर एवं हुमायूँ के शासन काल में भी दिल्ली सल्तनत से चला आ रहा जजिया कर वसूला जाता था। मुगल काल की कर—व्यवस्था इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार नहीं थी। इस कारण बादशाहों ने खलीफा से अपनी शासन की मान्यता की जरूरत नहीं समझी। जकात धार्मिक कर के रूप में नहीं, बल्कि आयात शुल्क के रूप में लिया जाता था। खम्स या लूट का माल सीधा बादशाह अधिकृत कर लेता था। सैनिकों को कुछ भी नहीं मिलता था।²² जहाँ तक जजिया का प्रश्न है तो 1526—1707 ई० के मध्य लगभग 170 वर्षों में 116 वर्ष तक जजिया वसूल नहीं किया गया। अकबर से औरंगजेब के काल के 141 वर्षों में से मात्र 25 वर्ष ही जजिया लिया गया। यह सिद्धांत में था, व्यवहार में जजिया लिया जाता था।

अकबर के समसामयिकों के मन में जजिया के प्रति जो धारणा थी उसकी चर्चा प्रसिद्ध सूफी मुल्ला अहमद ने अपने शिष्य को लिखे एक पत्र में किया था — “जजिया लगाने का मुख्य उद्देश्य उनका (हिन्दुओं) अपमान और निरादर.....और मुसलमानों के आदर एवं गौरव की स्थापना है।”²³ अकबर बुद्धिमान शासक था, इस कारण उसने बहुसंख्य प्रजा का निरादर एवं अपमान नहीं किया। अकबर ने 15 मार्च 1564 में जजिया को समाप्त कर दिया।²⁴ पहले के शासक इस कर को अन्य धर्मों के लोगों से वसूल किया करते थे, किन्तु अकबर धर्मों के बीच भेदभाव प्रदर्शित नहीं करता था और उसे अतिरिक्त राजस्व की आवश्यकता भी नहीं थी इसलिए उसने इस कर को समाप्त कर दिया।²⁵ बदायूँनी ने जजिया कर की समाप्ति की तिथि 1579 ई० बताया है। वैसे अकबर ने 1581 में पुनः जजिया कर लेने का आदेश दिया जिसे तुरंत वापस ले लिया गया था। अकबर के आदेश का

पालन जजिया मामले में कितना होता था इसका एक उदाहरण इस प्रकार है— “अकबर के वकील मुनीम खां ने एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये (अगस्त-सितम्बर-1566) जिसमें आगरा के आस-पास के इलाके से जजिया वसूल करने का आदेश था।”²⁶ बदायूनी के अनुसार 1595 में अकबर ने पुनः जजिया कर लगाया, पर इसे मूर्त रूप नहीं दिया जा सका था।

अकबर के बाद जहाँगीर एवं शाहजहाँ और यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी 1679 से पहले जजिया नहीं लगाया। मारवाड़ विजय के बाद 1679 में सर्वप्रथम औरंगजेब ने वहाँ इसकी वसूली का आदेश दिया। इसके बाद साम्राज्य के अन्य हिस्से से इसकी वसूली शुरू हो गयी।²⁷ औरंगजेब ने इस प्रकार से जजिया की वसूली की जैसा पहले कभी नहीं की गयी थी। केवल शाही राज्य में ही सब हिन्दू उसे जजिया नहीं देते थे, वरन् सामंतों के राज्यों से भी उसकी वसूली की जाने लगी। मुगल सेनाओं एवं सार्वजनिक सेवाओं के सब हिन्दू उसे विनम्रतापूर्वक जजिया देते थे। यह कर सदैव व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर देना पड़ता था। किसी व्यक्ति को अपने गुमाश्ते द्वारा उसे जमा कराने की अनुमति नहीं थी। औरंगजेब के अफसर मुल्ला अहमद के उस व्यक्ति को चरितार्थ कर रहे थे कि उसका उद्देश्य हिन्दुओं के ऊपर लज्जा एवं अपमान को लादना था।

औरंगजेब द्वारा जजिया लगाये जाने का उसका स्पष्ट लक्ष्य विधर्मियों (हिन्दुओं) पर नियंत्रण रखना एवं विश्वासियों (मुस्लिमों) की भूमि से विधर्मी भूमि का अंतर रखना था। क्योंकि धर्मांध बादशाह का उद्देश्य इस्लामी कानून का प्रचार और काफिर व्यवहार को उखाड़ फेंकना था। उसने दीवानी उच्चाधिकारियों को आदेश जारी किया कि —‘बुधवार, 2 अप्रैल 1670, रबी पहली, 1090 से कुरान के आदेश—जब तक वे दीनता से जजिया दें’—का पालन करते हुए और धर्म वैधानिक परंपरानुसार राजधानी और सूबों के काफिरों व जिम्मियों से जजिया इकट्ठा किया जाए।²⁸ यह कर लगाकर उसने दया की प्रार्थना तथा विधर्मी की भूमि में अंतर रखा।²⁹

इस अप्रिय कर की सरलतापूर्वक वसूली नहीं की जा सकती थी। मालवा, जयपुर, बुरहानपुर और गुजराज में कर वसूलने वाले एवं कर देने वालों में संघर्ष हुए। कर वसूलने वालों की सहायता के लिए सैनिक तक को भेजना पड़ता था।

औरंगजेब के आदेश के जारी होने पर चारों ओर से आकर अत्यधिक संख्या में हिन्दू बादशाह के महत्व के नदी किनारे वाले झरोखे के नीचे एकत्र हो गए और उससे राजाज्ञा वापस लेने की प्रार्थना की, परंतु उसने उनकी एक न सुनी।³⁰ जजिया को वापस लेने की उनकी विनम्र प्रार्थना तथा दयनीय चीखों का उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।³¹ बड़ी संख्या में लोगों ने औरंगजेब के सामने दिल्ली की जामा मस्जिद में शुक्रवार की नमाज में जाते समय प्रदर्शन किया, जिससे वह मस्जिद तक नहीं पहुँच पाया। कई दिन प्रदर्शन हुए, परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला।^{32,33}

जजिया मामले में उलेमा की भूमिका महत्वपूर्ण थी। उन्होंने बादशाह को समझाया कि धर्मतत्त्वज्ञों, विद्वज्जनों और परंपरावादियों के विश्वास के लिए खुदा के साए में शरीयत के अनुसार जजिया की उगाही आवश्यक और अनिवार्य है।³⁴ समकालीन यूरोपीय यात्री और भारत में नियुक्त व्यापारी कंपनियों के प्रतिनिधि इस कार्रवाई की थोड़ी भिन्न व्याख्या देते हैं। सूरत में अंगरेजी

कारखाने के अध्यक्ष थामस रो ने 1679 में लिखा कि औरंगजेब के खाली खजाने को भरने के लिए ही नहीं, बल्कि आबादी के गरीब हिस्सों को मुसलमान हो जाने के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से भी जजिया बड़ी सख्ती से वसूल किया जाता था।³⁵ लगभग पच्चीस वर्ष बाद मेनक्सी ने उन्हीं कारणों पर जोर देते हुए लिखा, “जसवंत सिंह की मृत्यु से औरंगजेब के सामने हिन्दुओं पर और अधिक अत्याचार करने का रास्ता खुल गया, क्योंकि अब उनकी रक्षा के लिए कोई साहसी और शक्तिशाली हिन्दू राजा नहीं रहा था। उसने हिन्दुओं पर व्यक्ति कर (मथौट) लगा दिया जिसे देने के लिए हर कोई बाध्य था...कम या अधिक....। औरंगजेब ने ऐसा दो कारणों से किया, पहला, क्योंकि अभियानों पर व्यय के कारण उसका खजाना खाली होता जा रहा था, दूसरा, हिन्दुओं को मुसलमान बनने को बाध्य करने के लिए।”³⁶

मनूची के अनुसार व्यापारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हुए जजिया कर भुगतान चुकाने का प्रमाण—पत्र साथ रखना होता था। खोने या चोरी होने की स्थिति में उसे दूसरे सूबे में जजिया देना पड़ता था।³⁷ एक दस्तावेज के अनुसार बादशाहपुर के पार में मुवाजा गाँव में 280 लोगों में से 185 जजिया कर का भुगतान करते थे।³⁸ खराब फसल की स्थिति में जजिया से छूट मिलती थी। 1688–89 में हैदराबाद सूबे में सूखे के कारण एक साल के लिए जजिया माफ कर दिया गया था। अन्य करों की वसूली को भी बंद करने का आदेश दिया गया था।³⁹ उसी प्रकार 1704 में अकाल एवं युद्ध से उत्पन्न संकट के कारण पूरे दशक में जजिया दक्षिण में माफ कर दी गयी थी।⁴⁰ जजिया पर छूट दिये जाने के आदेश के बावजूद असद खान ने दक्षिण के चार सूबों में जजिया की वसूली में सख्ती पर अमीन ए जजिया शरीफ खान को फटकार दी थी।⁴¹ महाराजा जयसिंह को जजिया के बदले मांडल विदनूर एवं मांडलगढ परगने देने पड़े थे।⁴²

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हनफी परंपरा को कठोरता से लागू किया और उसी के तहत जजिया की वसूली की गई। जजिया की वसूली के लिए दिरहम नामक एक विशेष सिक्का चलाया गया। एक दिरहम 550 ग्राम चाँदी के मूल्य के बराबर होता था। जजिया कर की वसूली के लिए तीन श्रेणियाँ निर्धारित की गईं। प्रथम श्रेणी में वे हिन्दू आते थे, जिनकी संपत्ति 200 दिरहम से कम थी। इन्हें 12 दिरहम जजिया देना पड़ता था। दूसरी श्रेणी में 200–10,000 दिरहम की संपत्ति वाले हिन्दू आते थे, जिन्हें 24 दिरहम जजिया कर देना पड़ता था। 10,000 दिरहम से ऊपर की संपत्ति वाले हिन्दुओं को 48 दिरहम कर देना पड़ता था। 48 दिरहम 40/3 रुपये के, 24 दिरहम 20/3 रुपये के तथा 12 दिरहम 10/3 रुपये के बराबर था।

16वीं सदी के अंत में 10/3 रुपये में यानी 12 दिरहम में, जो जजिया का न्यूनतम दर था, 9 मन गेहूँ का आटा प्राप्त हो सकता था। 43,44,45 जजिया के रूप में भाहरी मजदूरों को 12 माह में से एक माह का वेतन देना पड़ता था।⁴³ इससे जजिया के भार का अनुमान लगाया जा सकता था। जजिया से प्राप्त आय के लिए औरंगजेब ने ‘खजाना—ए—जजिया’ नामक खजाना कायम किया था। यह राशि कट्टरपंथी उलेमाओं के सामने खजाने में डाली जाती थी।⁴⁴

गरीब लोग (श्रेणी एक, 52 रुपये से कम की संपत्ति वाले) 10/3 रुपये की राशि को चार

किस्तों में, मध्यम वर्ग (श्रेणी दो, 52 से 2500 रुपये वाले) 20/3 रुपये की राशि को दो किस्तों में तथा धनी लोग (श्रेणी तीन, 2500 रुपये से ऊपर की संपत्ति वाले) 40/3 रुपये की राशि को एक मुश्त देते थे। अल्प वयस्क, स्त्रियाँ, दास, अंधे, पागल, बेरोजगार, अपाहिज और भिखारियों को कर से छूट थी। क्योंकि उनके पास आय के साधन नहीं नहीं थे। यदि कोई मनष्य 6 माह से अधिक बीमार हो और बिस्तर पर से उठने में अक्षम हो तो उसे जजिया से छूट थी।⁴⁵

जजिया वसूली की विस्तृत व्यवस्था थी। मांग का एक रजिस्टर रखा जाता था। परगना के कर संग्राहक को स्थानीय अधिकारियों से सहायता का अधिकार था। कोतवालों, कानूनगो और रक्षक सेनानायकों को आदेश था कि जब जजिया वसूलने वाले अमीन उनसे सहायता मांगे तो वे शीघ्रतापूर्वक उनकी सहायता के लिए जायें। समय-समय पर परगने की वसूली रजिस्टर प्रादेशिक संग्राहक के पास जाती थी। इसमें किसी भी प्रकार की लापरवाही के लिए वह कार्रवाई कर सकता था। जान बूझकर अपवचना पर दोषी को दो वर्ष का कर एक साथ देना पड़ता था। जजिया का बकाया नहीं छोड़ा जाता था।⁴⁶

इतिहासकारों के दृष्टिकोण

औरंगजेब द्वारा जजिया लगाने और उसकी वसूली को लेकर कई मत-मतांतर हैं। विदेशी मनूची जो औरंगजेब के काल में भारत आया था लिखता है कि बहुत से हिन्दू जो जजिया नहीं दे पाते थे कर वसूल करने वालों के अपमान से बचने के लिए मुसलमान बन जाते थे। यदुनाथ सरकार ने इस आधार पर उल्लेख किया है कि औरंगजेब ने जजिया लगाकर इस्लाम धर्म का प्रचार किया।⁴⁷ औरंगजेब ने राजनीतिक फलक से समुचित समय देखकर जजिया लगाया। राजा रघुनाथ, जयसिंह, जसवंत सिंह जैसे शक्तिशाली हिन्दू राजाओं की मौत के बाद जजिया लगाया। कुछ दरबारियों के निवेदन को भी उसने स्वीकार नहीं किया न इसके दुष्परिणाम का ख्याल किया।⁴⁸ इससे सिद्ध होता है कि औरंगजेब ने एक सोची समझी चाल के तहत जजिया लगाया।

जजिया का उद्देश्य मुसलमान बनाना नहीं हो सकता, क्योंकि जो हिन्दू, मुसलमान बन भी जाते थे, उन्हें जकात देना पड़ता था। उससे धन और धर्म दोनों जाता था। हिन्दू धर्म के प्रति काफी रुढ़ होते थे। इस कारण जजिया लगाने को राजनीतिक वातावरण के रूप में देखा जाना चाहिए।⁴⁹ डा० जहीरुद्दीन फारुकी का मत है कि औरंगजेब ने बहुत सारे कर समाप्त कर दिये थे। इससे जो वित्तीय हानि हुई उसे पूरा करने के लिए उसने जजिया लगाया। इस तरह यह एक प्रकार का आर्थिक कर था, धार्मिक नहीं। डा० आई. एच. कुरैशी का मत है कि जजिया आर्थिक लाभ के लिए नहीं था वरन् यह औरंगजेब का आर्थिक मानदंड, एक सिद्धांत तथा अपने साम्राज्य को इस्लामी राज्य प्रदान करने का एक प्रतीक मात्र था।⁵⁰ 1720 में जब जजिया को समाप्त किया गया तब उससे प्राप्त वार्षिक आय 4 करोड़ रुपये थी।⁵¹ यह राशि इतनी कम थी कि इससे आर्थिक संकट दूर नहीं किया जा सकता था।

सतीश चंद के अनुसार जजिया धर्मांतरण से परिपूर्ण कार्य न था। धर्मांतरण के जो मामले सामने आये हैं उनमें धर्म बदलने वाले व्यक्ति साधारण जमींदार वर्ग से संबंधित थे या छोटे-मोटे

राजकीय अधिकारी अथवा उनके आश्रित व्यक्ति थे। ऐसे लोगों का उद्देश्य इतना भर होता था कि उनकी नौकरी पक्की हो जाए या उन्हें जमींदार बना दिया जाये या धर्मांतरण के बाद उन्हें अल्प संख्या में उपलब्ध सरकारी पदों को पाने के लिए मुसलमानों के साथ प्रतियोगिता करने में प्राथमिकता मिल सके। सतीश चंद्र आगे लिखते हैं कि जजिया शरीयत की कड़ाई से पालन करने की भावना का परिणाम नहीं था। यह तो तत्कालीन गहराते राजनीतिक संकट के फलस्वरूप उठाया गया कदम था। इस संकट के दो तत्व थे— राजपूतों की गैर-वफादारी एवं मराठों की बढ़ती शक्ति। इस संकट के लिए औरंगजेब को मुस्लिम जनमत की जरूरत थी। 1679 के काल में इस्लाम को जीविका बनाने वालों में भारी बेरोजगारी थी। 1687 में औरंगजेब ने दक्कन के चार सूबों के लिए अब्दुल नशीम को जजिया का अमीन नियुक्त किया था। दक्कन समस्या (गोलकुंडा, बीजापुर एवं मराठा) के समय मुगल सरकार गहरी राजनीतिक संकट में थी और वह मुसलमानों खासकर कट्टरपंथियों का सहयोग प्राप्त करना चाहता था। इसके लिए वह चमत्कारिक कदम उठाना चाहता था।⁵²

1678 के बाद उलेमाओं और मौलवियों को प्रदत्त मदद—ए—माश सरकारी कोश पर बोझ था। इन्हें दी जानेवाली सहायता को रोका भी नहीं जा सकता था और इस वर्ग का समर्थन भी जरूरी था। इसलिए खजाना—ए—जजिया नामक एक कोश कायम किया गया, ताकि जजिया के खजाने में जमा होने वाली रकम इस समूह के सामने जमा करके इसका समर्थन प्राप्त किया जा सके। कट्टरपंथी मुल्ला—मौलवियों के लिए जजिया अतिरिक्त रोजगार का एक साधन मात्र नहीं था, अपितु इसके जरिये उन्हें इस्लाम में विश्वास न करनेवालों को सताने और नीचा दिखाने का बहाना मिल गया। यह जोर—जबरदस्ती से रुपया ऐंठने एवं भ्रष्टाचार फैलाने का माध्यम भी बन गया।

प्रकारांतर में भीमसेन ने अपनी कृति 'तारीख ए दिलकश' में लिखा, जिसका अनुवाद यदुनाथ सरकार ने किया कि काजियों ने लाखों कमाये। इस कर को उगाहने के लिए जो स्थानीय अधिकारी नियुक्त थे, वे भी इस मामले में कम नहीं थे। वसूली के लिए फौज भी लगायी गयी। यानि औरंगजेब काजियों एवं स्थानीय अधिकारियों का जुल्म रोकने में असफल रहा। इसके बावजूद भी औरंगजेब जजिया वसूली को सही मानता था। इसलिए उसने जुल्म एवं अत्याचार पर ध्यान नहीं दिया। चारों ओर, यहाँ तक कि हिन्दू अमीरों की ओर से भी जजिया के खिलाफ आवाज उठ रही थी। ज्यादातर खिलाफत शहरियों खासकर मैला ढोने वाले बंजारों और दुकानदारों की ओर से था। सतीश चंद्र स्वीकारते हैं कि 1704 में दक्कन से जजिया का उठाया जाना औरंगजेब की धार्मिक नीति की असफलता थी। शायद इसके माध्यम से बादशाह मराठों से समझौता चाहता था।

अठारहवीं भाताब्दी के लेखक शिवदास लखनवी के अनुसार साम्राज्य के सब सूबों में जजिया की वसूली की राशि चार करोड़ रुपये थी। यद्यपि यह संख्या 1720 में सैयद बंधुओं की पराजय के बाद राजा जयसिंह के अनुरोध पर जजिया की (पुनः) समाप्ति के संदर्भ में दी गई थी, फिर भी इसे बीजापुर और गोलकुंडा को साम्राज्य में मिलाने के बाद कुल मिलाकर सारे साम्राज्य पर लागू माना जा सकता है।⁵³ 1708—9 के आसपास साम्राज्य की वसूली 26 करोड़ रुपये से कुछ अधिक थी।⁵⁴ इन आंकड़ों से जजिया से होने वाली आय, कुल आय की 15 प्रतिशत ठहरती थी। 1681 में अमीन—ए—जजिया मीर अब्दुल करीम ने सूचित किया कि उसने पिछले साल के दौरान बुरहानपुर

शहर से जजिया के 26,000 रुपये वसूल किए थे और यह कि उसने तीन महीनों में बुरहानपुर के आधे निवासियों द्वारा 1,08,000 रुपये देय निश्चित कर दिये थे। बुरहानपुर शहर और परगने से संबंधित एक दस्तावेज के अनुसार कुल निर्धारित 2,950 रुपये में से शहर का हिस्सा 2,140 रुपये 10 आना या मोटे रूप में 72 प्रतिशत था। यह परिणाम निकालना गलत नहीं होगा कि शहरों से होने वाली आय काफी ज्यादा थी। इससे पता चलता है कि जजिया का विरोध प्रायः शहरों में क्यों होता रहा? इसमें प्रायः व्यापारियों की ही क्यों मुख्य भूमिका रही? ईसाई व्यापारियों—अंगरेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और भारत के साथ व्यापार करने वाली दूसरी यूरोपीय कंपनियों द्वारा आयातित सारे माल पर जजिया के स्थान पर डेढ़ प्रतिशत का एक अतिरिक्त कर वसूल किया जाता था।⁵⁵

शाहजादा अकबर लिखता है, “बादशाह के राज्य में वजीरों के पास कोई शक्ति नहीं थी, अमीरों पर कोई विश्वास नहीं था, सैनिक अत्यधिक गरीब हैं, लेखक बेरोजगार हैं और व्यापारियों के पास साधन नहीं हैं, किसान दबे कुचले हैं और हिन्दू फिरके पर दो विपत्तियाँ टूट पड़ी हैं, (पहली) शहरों में जजिया का आहरण और (दूसरी) देश में शत्रु (अर्थात् मराठे) का उत्पीड़न। जब लोगों पर सब ओर से कष्ट ही कष्ट आ पड़े हों तो वे शासकों को धन्यवाद कैसे दें और कैसे उनके लिए प्रार्थना करें।”⁵⁶

औरंगजेब के जजिया लगाने के पीछे आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक शक्तियों का सम्मिलित प्रभाव था। वह इस्लाम के नियमों का पालन करना चाहता था। इससे उसे कट्टरपंथी, रूढ़िवादी मुसलमानों से राजनीतिक कार्यों में सहायता प्राप्त होती थी तथा इससे स्वयं उसे मानसिक शांति एवं संतोष मिलता था। इस्लामी सिद्धांत पर जजिया वसूल कर वह राजनीतिक लाभ प्राप्त करना चाहता था। जजिया से आर्थिक लाभ भी प्राप्त हुए एवं मदद—ए—माश देने में सहायता मिली। परंतु जैसा कि श्रीराम शर्मा ने लिखा है— “औरंगजेब संसार के अन्य देशों के सम—सामयिक शासकों से खराब नहीं था। बल्कि वह उन लोगों से थोड़ा अच्छा था। उसके शासन काल में हिन्दुओं पर लगे जजिया कर का भार उन धर्म शुल्कों से अधिक नहीं था जो सन् 1867 ई० तक आयरलैंड में रोमन कैथोलिक लोग प्रोटेस्टेंट धर्म के संभरण के लिए दिया करते थे। औरंगजेब तो अकबर के मार्गदर्शन को समझ नहीं सका था और अपनी हठी स्वभाव के कारण अतीत से संबंध तोड़ के बैठा था।”⁵⁷

निष्कर्ष

जजिया कर इस्लामी मान्यताओं पर आधारित थी। इस्लाम के प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि एवं शासन व्यवस्था की स्थापना के साथ इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहा। हिन्दुओं के सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समझे बिना भारत की भूमि पर इसे धार्मिक उत्पीड़न और राजनीतिक अस्त्र के तौर पर शासकों ने प्रयोग में लाया। धर्मांध शासकों के लिए यह कर हिन्दू प्रजा को सजा देने और उलेमा एवं मुस्लिम उमरा को खुश रखने का एक जरिया था, ताकि वह यह संदेश प्रसारित हो सके कि भासना इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार चल रहा है और सुल्तान या बादशाह, अल्लाह या पैगम्बर के संदेश को ही प्रजा पर लागू कर रहा है। जजिया भारतीय राजनीतिक—सांस्कृतिक परम्परा के उस भावना के विपरीत था, जिसमें प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण निहित था और प्रजा, राजा

की संतान तुल्य थी। धर्म के आधार पर विभेद पैदा करने वाले जजिया को हटाने के लिए बहुसंख्य हिन्दू प्रजा ने फरियाद की। जब उनकी नहीं सुनी गयी, तो उन्होंने प्रतिकार और प्रतिरोध किया।

औरंगजेब के ढहते साम्राज्य में जजिया कील बन कर चुभी। जजिया को केवल आर्थिक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता है। प्रजा के बीच जजिया को धार्मिक श्रेष्ठता का आधार बना कर शासकों ने मूर्खता की। इस कारण वे हिन्दू-प्रजा के दिल नहीं जीत सके और न ही हिन्दू-प्रजा उन्हें पूरे मन से कभी अपना पायी। जजिया कर 'गंगा-जमुनी तहजीब' के गढ़े सिद्धांत की राह में रोड़ा बन कर खड़ा हो जाता है। जजिया के कारण जहां मध्यकाल में हिन्दू धार्मिक हीनता के शिकार बनाये गये, वहीं कथित आधुनिक काल में प्रजातीय हीनता के शिकार बने। दोनों ही कालों यह दोनों आधार निरर्थक भले लगते हों परन्तु राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ करने के प्रेरक शस्त्र के रूप में व्यवहृत थे, जिनके सहारे भारत में इस्लामी और मिशनरी संस्कृति स्थापित की गयी।

इतिहास विभाग

संत कोलम्बा कॉलेज, हजारीबाग, झारखंड

shatru.vbu@gmail.com

सन्दर्भ :

1. मेहता, जे0 एल0. (2001). मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, भाग-3. जवाहर पब्लिशर्स, नयी दिल्ली. पृ0 61।
2. वही।
3. शर्मा, श्रीराम. (1970). मुगल सरकार और शासन. सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद. पृ0 167।
4. वही. पृ0 168।
5. भट्टाचार्य, सच्चिदानन्द. (1989). भारतीय इतिहास कोश. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ. पृ0 159।
6. श्रीवास्तव, हरिशंकर. (1989). मुगल शासन प्रणाली. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ0 153-154।
7. मेहता, जे0 एल0. पृ0 61 में दि कुरान, सुरा 9 (भारत), वर्स 20 द्वारा हासिम अमीर अली, चार्ल्स ई0 टटल कंपनी, जापान से उद्धृत। साहू, किशोरी प्रसाद. (2008). इस्लाम : उद्भव और विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, तृतीय संस्करण. पृ0 92।
8. श्रीवास्तव, हरिशंकर. पृ0 153-154।
9. ह्यूज, टी0 पी0. (1885). डिक्शनी ऑफ इस्लाम. लंदन. पृ0 248। शरण, परमात्मा. (1980). स्टडी ऑफ मेडिवल इंडियन हिस्ट्री. दिल्ली. पृ0 113। त्रिपाठी, आर0 पी0. (1980). सम एस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन. इलाहाबाद. पृ0 341-42।
10. भट्टाचार्य, सच्चिदानन्द. पृ0 160।
11. अहमद, डॉ0 लईक. (2002). मध्यकालीन धर्म एवं संस्कृति. शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद. पृ0 190।
12. वर्मा, हरिश्चन्द्र. (1985). मध्यकालीन भारत (750-1540 ई0), भाग-एक. हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली. द्वितीय संस्करण. पृ0 374।
13. मद्दाह, मो0 मुस्तफा खान. (1956). उर्दू हिन्दी शब्द कोश. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ. पृ0 711।
14. वर्मा, हरिश्चन्द्र. पृ0 374।
15. अग्निहोत्री वी0 के0. (2005). भारतीय इतिहास. एलाइड प्रकाशन, दिल्ली. पृ0 608।
16. अहमद, डॉ0 लईक. पृ0 190।

17. श्रीवास्तव, ए० एल०. (1980). मध्यकालीन भारतीय इतिहास. शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, दिल्ली. पृ० 162।
18. मजुमदार, रायचौधरी व दत्त. (1975). भारत का वृहद् इतिहास, भाग दो. मैकमिलन इंडिया लि०. पृ० 115।
19. इंदिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनिवर्सिटी विश्वविद्यालय. (2002). भारतीय इतिहास : आठवीं से 15वीं सदी तक. ई० एच० आई०-06. पृ० 56।
20. वही।
21. मेहता. जे० एल०. पृ० 333।
22. श्रीवास्तव, हरि शंकर. पृ० 294।
23. शर्मा, श्रीराम. पृ० 169।
24. मेहता, जे० एल०. (2001). मध्यकालीन भारतीय इतिहास, भाग—दो. जवाहर पब्लिशर्स, नयी दिल्ली. पृ० 288।
25. वही. पृ० 289।
26. इंदिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनिवर्सिटी विश्वविद्यालय. (2002). भारतीय इतिहास : 16वीं से 18वीं सदी तक. ई० एच० आई०-07. पृ० 46।
27. अहमद, लइक. पृ० 248।
28. इलियट, एच० एम० एंड जॉन डाउसन (सं०). (1869). हिस्ट्री ऑफ इंडिया : ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स : दि मोहम्मद पीरियड. ट्रबनर एंड कंपनी, लंदन. खान, मुहम्मद हाशिम खफी. (1956). मुंतखाब—उल—लुबाब. सुशील गुप्ता (इंडिया) लि०, कलकत्ता, वॉल्यूम दो. पृ० 296 से हबीब इरफान (सं). (1990). मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ० 77 पर उद्धृत।
29. सरकार, यदुनाथ. (1916). हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग तीन : फर्स्ट हॉफ दि रेन (1658–1681). एम० सी० सरकार एंड सन्स, कलकत्ता. पृ० 272।
30. खान, खाफी. पृ० 296।
31. वही।
32. सरकार, यदुनाथ. (1921). हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग पांच : दि क्लोजिंग ईयर (1689–1707). एम० सी० सरकार एंड सन्स, कलकत्ता. पृ० 3, 270। कुरैशी, इश्तिहा हुसैन. (1973). दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि मुगल इम्पायर. एन० वी० पब्लिकेशन, पटना. पृ० 143–45।
33. खॉं, खाफी द्वारा लिखित मुंतखाब—उल—लुबाब का फारसी से अंग्रेजी में औरंगजेब से संबंधित भाग का अनुवाद. हक, एस० एम० (अनु०). (1975). हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब. कराची. पृ० 258।
34. हबीब, इरफान. (सं०). पृ० 77।
35. वही. पृ० 78।
36. इरवीन, विलियम. (संपा० : यदुनाथ सरकार). (1922). लेटर मुगल्स, भाग एक. एम० सी० सरकार एंड सन्स कलकत्ता. पृ० 338।
37. हबीब, इरफान, (सं०). पूर्वोक्त. पृ० 77।
38. हबीब, इरफान. (1963). एग्रेयिन सिस्टम इन मुगल इंडिया (1556–1707). एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. पृ० 119–20।
39. हबीब, इरफान. (सं०). पृ० 89।
40. हबीब, इरफान. (1963). पृ० 246।
41. हबीब, इरफान. (सं०). पृ० 88।
42. चन्द्र, सतीश. (2001). मध्यकालीन भारत, भाग दो. जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली. पृ० 318।
43. हबीब, इरफान. (1963). पृ० 246–247।
44. वर्मा, हरिश्चन्द्र. (1993). मध्यकालीन भारत : 1540–1761, भाग दो, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली. द्वितीय संशोधित संस्करण. पृ० 658।
45. शर्मा, श्रीराम. पृ० 197।

46. वही. पृ० 198। हबीब, इरफान. (2008). मेडिवल इंडिया : दी स्टडी ऑफ ए सिविलाइजेशन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली. पृ० 121।
47. श्रीवास्तव, हरिशंकर. पृ० 155।
48. शर्मा, श्रीराम. पृ० 198–99।
49. ओमप्रकाश. (1988). भारत का इतिहास (1540–1950). नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना, पृ० 73
50. इरवीन, विलियम. (1922). लैटर मुगल्स (1719–1739), भाग दो. एम० सी० सरकार एंड सन्स. पृ० 103
51. वही. भाग–एक. पृ० 334।
52. वही।
53. हबीब, इरफान (सं०). पृ० 79।
54. हबीब, इरफान. पृ० 409।
55. हबीब, इरफान (सं०). पृ० 79।
56. वही. पृ० 85।
57. शर्मा, श्रीराम. पृ० 200–201।

बाल श्रम तथा भारत सरकार की नीतियां : दिल्ली के संदर्भ में

स्मिता अग्रवाल¹, अभय कुमार शुक्ल²

सारांश :

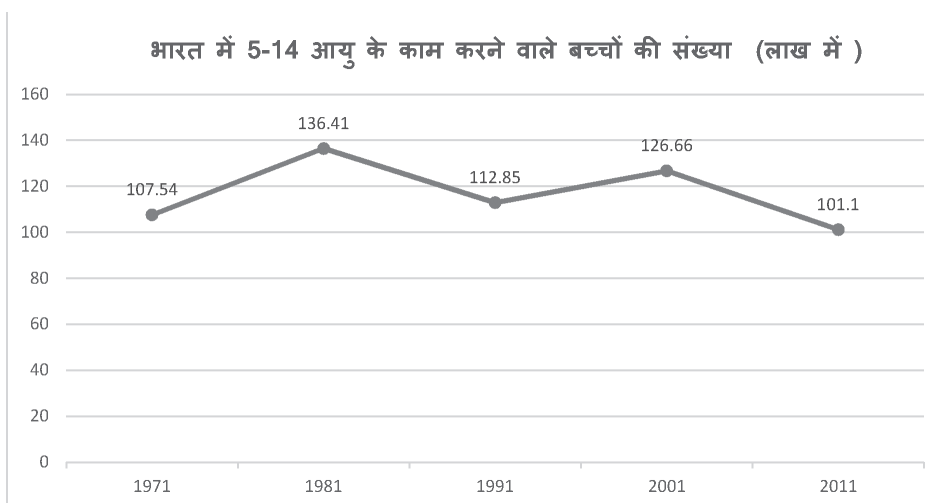
प्रस्तुत शोध पत्र में भारत की राजधानी दिल्ली के संदर्भ में बाल श्रम की स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में पिछले दो दशकों में पलायन के कारण प्रवासियों की संख्या में बहुत तेजी से बढ़ोतरी हुई है जिसका प्रत्यक्ष असर बाल श्रम पर पड़ा है। इस शोध कार्य का मुख्य प्रश्न यह है कि बच्चे बाल श्रम की ओर क्यों बढ़ रहे हैं? ऐसे कौन से सामाजिक-आर्थिक कारक हैं जिसके कारण दिल्ली में विभिन्न नीतियां तथा कड़े कानून होने के बावजूद बाल श्रम की समस्या से अभी भी ग्रसित है। प्रस्तावित शोध कार्य की समस्या एक संवेदनशील और जटिल है अतः इसके गहन अध्ययन, विश्लेषण तथा परीक्षण हेतु हमने एथनोग्राफी शोध पद्धति का प्रयोग किया है। इस शोध का मुख्य निष्कर्ष यह है कि बाल श्रम से जुड़े हुए कानून के बारे में सभी लोग जागरूक हैं जिस कारण से हमें सही आंकड़ा प्राप्त नहीं हो पाता है और इसी वजह से सही कारकों की पहचान करने में समस्या उत्पन्न होती है। वहीं इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि बाल श्रम के कानून 'पुनर्वास' की बात करते हैं किंतु सामाजिक-आर्थिक और अन्य कारकों के कारण यह जमीनी स्तर में नहीं दिखाई देता है जिस कारण से भारत जैसे विकासशील देश में बाल श्रम की समस्या एक बहुत संवेदनशील बनी हुई है।

बीज शब्द :

प्रस्तावना-

आज भारत जहाँ एक ओर वैश्विक पटल पर तीसरी दुनिया के देशों का नेतृत्व कर रहा है तथा अपनी एक सशक्त आवाज बुलंद किए हुए है वहीं दूसरी ओर यह देश बाल श्रम जैसी निकृष्ट समस्याओं से भी अभिशप्त है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत में बाल मजदूरों की संख्या 1.01 करोड़ है जिसमें 56 लाख लड़के और 45 लाख लड़कियां हैं (भारत सरकार की जनगणना, 2011) (ग्राफ 1)। दुनिया भर में कुल मिलाकर 15.20 करोड़, जिसमें 6.4 करोड़ लड़कियां और 8.8 करोड़ लड़के हैं, बाल मजदूर होने का अनुमान लगाया गया है अर्थात दुनिया भर में प्रत्येक 10 बच्चों में से एक बच्चा बाल मजदूर है। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत 2020-21 में पूरे भारत में, 58,000 से अधिक बच्चों को बाल श्रम से बचाया गया उनका पुनर्वास किया गया और मुख्यधारा में लाया गया तथा 2021-22 और 2022-23 के दौरान राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के

तहत बचाए गए/काम से हटाए गए, पुनर्वासित और मुख्यधारा में शामिल किए गए बच्चों की संख्या क्रमशः 18137 और 13761 थी (श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, 2016)। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो रिपोर्ट 2022 के अनुसार, वर्ष 2021 में बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 के तहत, सभी राज्यों में कुल मिलाकर लगभग 990 मामले दर्ज किए गए जिनमें सबसे अधिकांश कुल 257 मामले तेलंगाना राज्य में दर्ज किए गए थे और वहीं राजधानी दिल्ली में 177 मामले सामने आए थे (राष्ट्रीय आपराधिक रिकार्ड ब्यूरो, NCRB, 2022)। बाल-श्रम मुक्त दुनिया सतत विकास लक्ष्यों का आधार है। हाल ही में 12 जून 2024 को विश्व बाल श्रम निषेध दिवस मनाया गया जिसका थीम थी- “आइये अपनी प्रतिबद्धताओं पर कार्य करें: बाल श्रम समाप्त करें!”। सतत विकास लक्ष्यों के अंतर्गत, 2025 तक विश्व स्तर पर बाल श्रम (सभी रूपों में) को समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया है और 2030 तक, गरीबों और कमजोर वर्गों के लिए उपयुक्त सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था लागू करके एक सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है। यद्यपि भारत ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है परन्तु आज भी हमारे समाज में यह समस्या विकृत रूप से विद्यमान है। इस शोध पत्र का मुख्य प्रश्न यह है कि भारत सरकार द्वारा बनाए गए कठोर कानून बाल श्रम को क्यों नहीं रोक पा रहे हैं? इस समस्या के मुख्य कारण तलाशने हेतु हमने शोध-क्षेत्र के रूप में राजधानी दिल्ली का चयन किया है, जहां सरकारी तंत्र बहुत मजबूत है और लोगों में बाल श्रम के विरुद्ध जागरूकता भी है। इस संवेदनशील विषय में अध्ययन के लिए हमने एथ्नोग्राफी पद्धति का चयन किया है जिसकी मदद से हम अपने केंद्रीय प्रश्न के उत्तर को खोज पाएंगे। इस शोध की रूपरेखा इस प्रकार है: सर्वप्रथम हम यह देखेंगे कि यह शोध आखिरकार क्यों जरूरी था जिसके लिए हम साहित्य समीक्षा की मदद लेंगे। द्वितीय भाग में शोध पद्धति की चर्चा करेंगे। तृतीय भाग में बाल-श्रम से सम्बंधित कानून, विशेषकर दिल्ली में जो कानून लागू है, उन पर चर्चा करेंगे। अंतिम और चौथा भाग, क्षेत्र (फील्ड) अध्ययन के अनुभवों और आकड़ों के आधार पर बाल श्रम के कारणों का विश्लेषण प्रदान करेगा।



ग्राफ 1— भारत में 5-14 आयु के काम करने वाले बच्चों की संख्या

स्रोत— भारत सरकार की जनगणना के अनुसार 1971 से 2011 तक

साहित्य समीक्षा

मानवाधिकार और बाल श्रम

बाल श्रम को एक बहुआयामी सामाजिक घटना के रूप में देखते हुए विभिन्न विद्वानों, योजनाकारों, शोधकर्ताओं और टेक्नोक्रेटों ने विभिन्न-विभिन्न दृष्टिकोणों से इस समस्या का विश्लेषण किया है। मानवाधिकार की अवधारणा और उसका विकास, समाज में व्यक्तियों के बीच सामंजस्यपूर्ण जीवन का एक मौलिक आधार प्रदान करता है। गोठवाल, 2016; अराट 2002; चतुर्वेदी एवं अन्य 2011; टकर 1997 ने बाल श्रम को व्यापक रूप से मानवाधिकार से जोड़ा है जिसके अनुसार बाल श्रम बच्चों को उनके बचपन और सम्मान से वंचित करता है, और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह उनकी विकास क्षमताओं को बाधित करता है। इसी कारण, बाल श्रम स्पष्ट रूप से मानव विकास की अवधारणा के विपरीत है जो सीधे मानव जीवन की प्रगति और उनके कल्याण पर केंद्रित है।

बाल श्रम और सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

नीराबुरा 1997; त्रिपाठी 2010; मौर्या 2001; लिटेन 2003; गुप्ता 1995 ने बाल श्रमिक की विभिन्न जटिलताओं के बारे में बात की है। उन्होंने बाल श्रम की समस्या को एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में पहचाना है, जो न केवल बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित करती है, बल्कि उनके शिक्षा और भविष्य के अवसरों को भी सीमित करती है। इन सब लेखों में बाल श्रम का मुख्य कारण गरीबी बताया गया है।

बाल श्रम संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान: समस्या और सुधार

अहमद, 1999; पॉल 2008; वीनर 1989; रामनाथन 1998, जार्ज एवं अन्य 2015; शर्मा 1994 ने भारत के संविधान और बाल श्रम कानूनों के बीच के जटिल संबंधों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। बाल श्रम के खिलाफ कानूनों के बावजूद इसे पूरी तरह से समाप्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इन शोध में यह तर्क दिया है कि बाल श्रम का मुद्दा, उन्मूलन और प्रतिबंध के प्रयासों के बीच फंस गया है। आज भारत में बाल श्रम की समस्या को केवल कानूनी दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता बल्कि इसे एक व्यापक रूप से सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में भी समझने की आवश्यकता है।

शोध का उद्देश्य

उपर्युक्त साहित्य में बाल श्रम क्यों है और इससे कैसे बाहर निकला जाए इसके लिए काफी प्रयास किया गया है किंतु प्राप्त विभिन्न आंकड़ों से प्रतीत होता है कि यह समस्या अभी भी बहुत संवेदनशील है। पलायन, कोविड-19 तथा बढ़ती आर्थिक असमानता के कारण बाल-श्रम विभिन्न-विभिन्न रूपों में, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, समाज में विद्यमान है। इस शोध का केन्द्रीय बिंदु, इन्हीं सब कारकों से जनित बाल श्रम की स्थिति का राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के संदर्भ में अध्ययन करना है।

शोध पद्धति

प्रस्तावित शोध कार्य की समस्या एक संवेदनशील और जटिल है, इस समस्या का गहन अध्ययन विश्लेषण तथा परीक्षण हेतु हमने एथ्नोग्राफी पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह एक ऐसा उपागम है जो किसी अनसुलझे और जटिल परिदृश्य के सूत्रों को सूचनादाताओं और किसी समूह विशेष के अंदरूनी दृष्टिकोण के आधार पर समझने का प्रयास करता है। बाल श्रम ऐसी समस्या है जहाँ वास्तविक डाटा का संग्रह करना एक जटिल तथा जोखिमपूर्ण कार्य है। क्योंकि इससे सम्बंधित कानूनों के बारे में लोगों और बच्चों को पता है और इसी कारण पूछे जाने पर वह अपनी आयु गलत बता देते हैं या छिपा लेते हैं या इसके सम्बन्ध में पूछे गये सवालों का गलत जवाब देते हैं। इसलिए इस स्थिति में एथ्नोग्राफी पद्धति हमारे लिए उपयुक्त साबित होती है। एथ्नोग्राफी पद्धति के माध्यम से हम बाल श्रम से जुड़े व्यक्तियों तथा हितधारकों के सोच, आशयों तथा उनके व्यवहार व कार्यों की पारस्परिक कड़ियों को समझ सकते हैं। चूँकि एथ्नोग्राफी उपागम व्यक्ति से केवल सवाल पूछने में यकीन नहीं करता बल्कि वह उसकी गतिविधियों के अवलोकन को भी बराबर महत्व देता है जिससे हमें लोगों के रोजमर्रा के जीवन में पैठ कर इस शोध कार्य की समस्या तथा इसके विभिन्न कारकों को समझने में मदद मिलेगी। इस शोध कार्य की समस्या जटिल है। अतः इसके विश्लेषण के लिए हमने स्नोबाल तथा उद्देश्यात्मक प्रतिचयन का प्रयोग किया है जहां लगभग 100 प्रतिदर्श को हमने करीब से समझा है। साथ ही इससे जुड़े हुए गैर सरकारी संगठन जैसे— चाइल्ड राइट एंड यू (CRY) और बचपन बचाओ आंदोलन (BBA), इससे जुड़े हुए कार्यरत वकीलों, आपरेशन में जुड़े हुए पुलिस अधिकारियों का साक्षात्कार भी शामिल किया गया है।

भारत सरकार द्वारा उठाये गये कुछ महत्वपूर्ण कानूनी कदम

बाल श्रम की अवधारणा

बच्चों के अधिकारों संबंधी अभिसमय के अनुच्छेद 1 में किसी बच्चे को जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है, को बच्चे के रूप में परिभाषित किया गया है। (यूनिसेफ, 1989)

1973 का अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन अभिसमय सं० 138 में बाल मजदूरी को, 15 वर्ष से कम उम्र के किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी आर्थिक गतिविधि का परिभाषित किया गया है, बशर्ते 15 वर्ष की आयु अनिवार्य स्कूली शिक्षा पूरी करने की उम्र से कम न हो। (यूनाइटेड नेशन ह्यूमन राइट्स ऑफिस ऑफ द हाई कमिशनर, 1973)

बाल मजदूरी (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 के अनुसार—14 वर्ष से कम उम्र के किसी बच्चे को किसी कारखाने या खान में काम में नहीं लगाया जाना चाहिए अथवा अन्य किसी जोखिमपूर्ण रोजगार में नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। (हमारा लक्ष्य बालश्रम मुक्त भारत, भारत सरकार रिपोर्ट, 2017)

बाल श्रम पर प्रभावी अंकुश लगाने के लिए बाल और किशोर श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 अधिनियमित है। (भारत सरकार का राजपत्र, 2016)

इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार हैं:—

- बाल और किशोर श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986 को वर्ष 2016 में कुछ आवश्यक संशोधन किए गए हैं, जिनके अंतर्गत 14 वर्ष से कम उम्र के बालक—बालिका से कार्य कराना अपराध की श्रेणी में आता है। साथ ही 14 वर्ष से अधिक एवं 18 वर्ष से कम उम्र के किशोर या किशोरी से जोखिम पूर्ण कार्य करवाना भी संज्ञेय अपराध माना गया है।
- यह संशोधन, सक्षम सरकार को, अधिनियम के प्रावधानों के कुशल कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए, जिला मजिस्ट्रेट को आवश्यक शक्तियाँ और दायित्व प्रदान करने का अधिकार देता है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए राज्य कार्य योजना को सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को वितरित की गई है।
- अधिनियम के अनुसार, 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे, विद्यालय के समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय में जोखिम पूर्ण कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों में परिवार एवं पारिवारिक प्रतिष्ठानों में सहायता कर सकते हैं।
- 14 से 18 उम्र के बालक जोखिमपूर्ण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य कर सकते हैं।
- यह अधिनियम बच्चों को 13 व्यवसायों और 51 प्रक्रियाओं में काम करने से रोकता है।
- इस अधिनियम ने बाल श्रम से पीड़ित बच्चों के पुनर्वास पर भी जोर दिया है और इससे संबंधित संगठनात्मक ढांचा भी तय किया है जिससे बाल श्रम को रोका जा सके।

बाल श्रम से संबंधित दिल्ली सरकार के कानून, नीतियाँ और पहल

दिल्ली सरकार द्वारा बाल श्रम के उन्मूलन और बच्चों के कल्याण के लिए अपनाई गई नीतियों का उद्देश्य बच्चों के लिए सुरक्षित वातावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, और समग्र कल्याण सुनिश्चित करना है। दिल्ली सरकार ने केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए कानून को अपनाया है परन्तु उसके साथ दिल्ली सरकार ने बाल श्रम से लड़ने के लिए एक मजबूत संगठनात्मक ढांचा खड़ा किया है और पुनर्वास पर जोर डाला है।

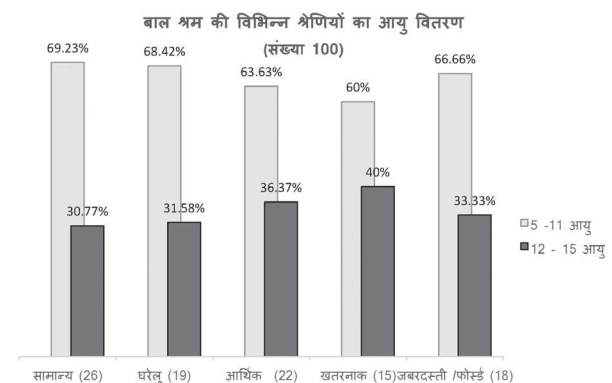
- 1) **श्रम विभाग द्वारा बाल श्रम विरोधी कार्यक्रम** — दिल्ली श्रम विभाग, बाल श्रम (प्रतिबंध) अधिनियम 1986 और बाल श्रम (प्रतिबंध और विनियमन) अधिनियम 2016 के तहत कार्य करता है। श्रम विभाग का मुख्य कार्य बाल श्रम के खिलाफ जागरूकता फैलाना, बाल श्रमिकों की पहचान करना, उनकी सुरक्षा, शिक्षा और पुनर्वास को सुनिश्चित करना है। इन कानूनों के तहत बच्चों को खतरनाक काम करने से रोका जाता है और कामकाजी स्थानों पर निरीक्षण किया जाता है।
- 2) **दिल्ली बाल अधिकार संरक्षण आयोग** — दिल्ली बाल अधिकार संरक्षण आयोग (DCPCR) का गठन बाल अधिकार संरक्षण आयोग (CPCR) अधिनियम, 2005 के तहत किया गया है। यह एक स्वतंत्र और वैधानिक संस्था है जो बाल अधिकारों के मामलों पर दिल्ली सरकार का

वैधानिक प्रहरी है। इस आयोग ने बाल श्रम और तस्करी को रोकने के लिए निवारक उपायों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए एक प्रभाग की स्थापना की है जो विभिन्न बचाव कार्यों को सुविधाजनक बनाता है। यह प्रभाग बचाए गए बच्चों की ट्रेकिंग, उनके मुआवजे और पुनर्वास तंत्र के लिए भी जिम्मेदार व जवाबदेह है। यह प्रभाग सुनिश्चित करता है कि बाल एवं किशोर श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 तथा अनैतिक तस्करी निवारण अधिनियम, 1956 के सभी प्रावधानों का क्रियान्वयन किया जा रहा है या नहीं। शिकायतों/उल्लंघनों पर ध्यान देना अथवा अधिनियम के गैर-अनुपालन के मुद्दों के संबंध में स्वप्रेरणा से संज्ञान लेना तथा संबंधित अधिकारियों को सलाह देना, संबंधित अधिकारियों द्वारा बजटीय प्रावधान तैयार करना, विशिष्ट प्रावधानों की जांच करना तथा नीतिगत मुद्दों का मूल्यांकन करना आदि इस प्रभाग का मुख्य कार्य है।

- 3) **महिला एवं बाल विकास विभाग** – महिला एवं बाल विकास विभाग ने कठिन परिस्थितियों में बच्चों की देखभाल और संरक्षण की जिम्मेदारी लेने के अपने प्रयास में और विभिन्न श्रेणियों के बच्चों के लिए सेवाएं और बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराने की दिशा में बहुआयामी दृष्टिकोण को अपनाया है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2009 में 'एकीकृत बाल संरक्षण योजना' शुरू की गई थी, जिसे राज्य द्वारा मिशन मोड में क्रियान्वित किया जा रहा है।
- 4) **मिशन वात्सल्य** – यह महिला एवं बाल विकास की एक पहल है जो सतत विकास लक्ष्यों के साथ संरेखित विकास और बाल संरक्षण प्राथमिकताओं को प्राप्त करने का एक रोडमैप के रूप में कार्य करता है। यह बाल अधिकारों की वकालत और जागरूकता पर जोर देता है, साथ ही किशोर न्याय, देखभाल और संरक्षण प्रणाली को मजबूत करने के साथ-साथ "कोई भी बच्चा पीछे न छूटे" के आदर्श वाक्य के साथ कार्य करता है। किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2016 के प्रावधान और यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 इस मिशन के कार्यान्वयन के लिए बुनियादी रूपरेखा प्रदान करते हैं।
- 5) **बाल कल्याण समिति** – यह देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों से संबंधित मामलों से निपटने के लिए एकमात्र प्राधिकरण है। इसके तहत प्रत्येक जिले या जिलों के समूह के लिए एक समिति का गठन किया जाना आवश्यक है और इसमें एक अध्यक्ष और 4 अन्य सदस्य में कम से कम एक महिला होनी चाहिए। समिति के पास बच्चों की देखभाल, सुरक्षा, उपचार, विकास और पुनर्वास के साथ-साथ उनकी बुनियादी जरूरतों और मानवाधिकारों का निपटारा करने का अंतिम अधिकार है। शोषणकारी स्थिति से बचाए गए बच्चे को देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों को बाल कल्याण समिति द्वारा सीधे बाल गृह भेजा जाता है, जो उनके पुनर्वास, पुनर्स्थापन और सामाजिक पुनः एकीकरण के लिए आवश्यक आदेश पारित करती है। दिल्ली में कुल 10 बाल कल्याण समिति कार्यरत हैं।

शोध कार्य (फील्ड वर्क)

1. विभिन्न व्यवसायों/कार्यों में बाल श्रम तथा आयु वितरण—

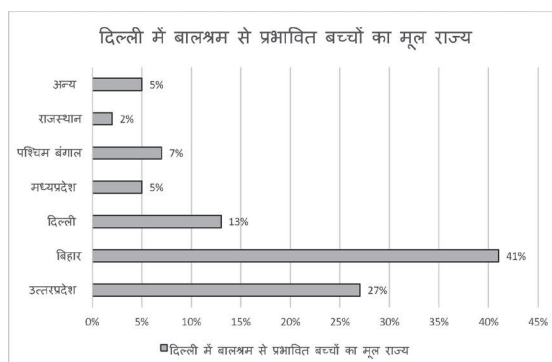


(ग्राफ 2, स्रोत—शोध कार्य (फील्ड वर्क) से)

हमने अपने शोध कार्य में पाया कि 5 से 11 आयु के बच्चे सबसे ज्यादा बाल श्रम से प्रभावित हैं, हमने देखा कि 5 से 11 आयु के बच्चे सामान्य, घरेलू, आर्थिक, खतरनाक तथा फोर्स के अंतर्गत क्रमशः 69.23%, 68.42%, 63.63%, 60% और 66.66% है जो एक गंभीर स्थिति को प्रदर्शित करता है (देखे ग्राफ 2)। हमने एथनोग्राफी शोध से पाया कि ज्यादातर उत्तरदाताओं की पारिवारिक स्थिति निम्न आयु वर्ग श्रेणी की थी। शोध के अनुभव से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि कोविड 19 ने पूर्व से व्याप्त स्थिति को और अधिक प्रभावित किया है, जिससे स्थिति और खराब हो गई है, जिस निम्न आयु वर्ग के परिवारों के बच्चे बाल श्रम से दूर थे उनमें भी कोविड 19 के कारण खतरा आ गया। एक परिवार के सदस्य ने कहा कि "खायेंगे क्या, "एक दिन नहीं काम करेंगे तो भूखे पेट सोना पड़ेगा"। हमने अपने अध्ययन में पाया कि बाल श्रम असंगठित क्षेत्रों जैसे बीड़ी बनाने, कालीन बनाने, चूड़ी, शीशा, ताला, पीतल, पटाखा ईट भट्टों पर काम करना, कपड़े तैयार करना, खानपान सेवाएं (जैसे चाय की दुकान पर) आदि जगहों में सबसे ज्यादा है।

"बच्चे बाल श्रम की ओर क्यों बढ़ रहे हैं ?"

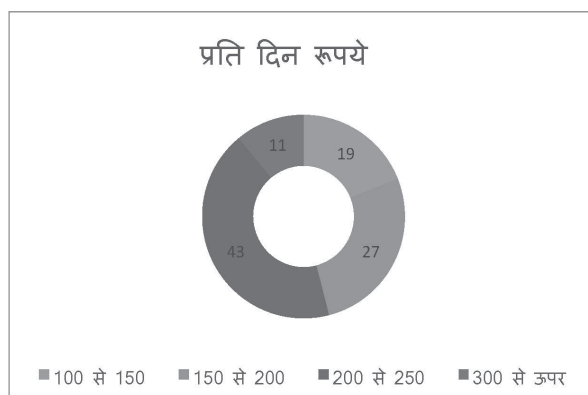
1. दूरस्थ पलायन, बाल तस्करी



(ग्राफ 3, स्रोत— शोध कार्य (फील्ड वर्क))

एथनोग्राफी अध्ययन के अंतर्गत प्रतिभागी अवलोकन में हमने पाया कि 41% बच्चे मूलतः बिहार से थे, 27% बच्चों का मूल राज्य उत्तरप्रदेश था तथा 13% बच्चों का मूल राज्य दिल्ली ही था (देखें ग्राफ-3)। हमने देखा कि “12 साल का लड़का एक ईंट भट्टे पर काम करता है। हर दिन, वह सुबह जल्दी उठता है और देर रात तक मेहनत करता है – मिट्टी से ईंटें बनाता है, कमरतोड़ बोझ उठाता है।” अपने शोध कार्य के दौरान हम एक किशोर के सम्पर्क में आये जिसे बाल तस्करी से बचाया गया था। उसे करीब एक साल, आर्थिक तंगी के चलते, अपने छोटे भाई के साथ एक रेस्टोरेंट में बाल मजदूर के तौर पर काम करना पड़ा। उसने बताया कि उसके माता-पिता की स्थिति ठीक नहीं है, वो गंभीर बीमारी से ग्रसित हैं, इसलिए घर चलाने की जिम्मेदारी उसके कंधों पर आ गई। जब हम दिल्ली के पुलिस अधिकारी से मुलाकात की जो बाल तस्करी के एक आपरेशन का हिस्सा थी उन्होंने अपने अनुभव हमसे साझा करते हुए बताया कि “आपरेशन में हमारे टीम को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, जिनमें भाषा संबंधी बाधाएं, अपरिचित स्थान और परिवारों के पास बच्चों की नवीनतम तस्वीरें न होने की चुनौती शामिल थी। कुछ गांवों में परिवहन की सुविधा कम थी, इसलिए हम कई किलोमीटर पैदल चले। कई लोग मदद करने के लिए तैयार होते हैं लेकिन कुछ लोगों को डर था कि पुलिस की मदद करने से कानूनी परेशानी हो सकती है। हमें कई दिनों तक अपने बच्चों से दूर रहना पड़ता था, मैं एक माँ हूँ इसलिए पीड़ित माता-पिता का दर्द समझ सकती हूँ, यही हमें हौसला देता था”। हाल ही में प्रकाशित एक गैर-सरकारी संगठन की रिपोर्ट से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और आंध्र प्रदेश में 2016 और 2022 के बीच बच्चों की तस्करी में अधिकतम संख्या वाले शीर्ष तीन राज्य हैं, जबकि दिल्ली में कोविड से पहले से लेकर बाद के समय में 68% की खतरनाक वृद्धि देखी गई है। (द हिन्दू, 2024) हमने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि ज्यादातर तस्करी व्यावसायिक यौन शोषण या श्रम के लिए की जाती है इसमें सबसे कमजोर बच्चे, विशेष रूप से शरणार्थी और प्रवासी, अक्सर शिकार बनते हैं और इसमें शिक्षा, बेहतर नौकरी या नए राज्य में बेहतर जीवन की उनकी उम्मीदों का इस्तेमाल लालच के तौर पर किया जाता है।

2. पारिवारिक स्थिति: शिक्षा का स्तर, गरीबी और सामाजिक असुरक्षा



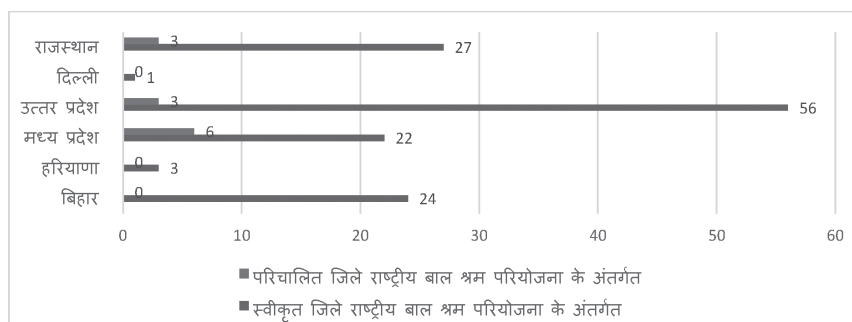
(ग्राफ 4 स्रोत – शोध कार्य (फील्ड वर्क) से)

हमने अपने अध्ययन में यह पाया कि अधिकांश बच्चों के माता-पिता का शिक्षा का स्तर बहुत कम है, जो बच्चे तस्करी का शिकार हैं, उनके भी माता-पिता शिक्षित नहीं थे। प्रत्येक दिन, जीवन निर्वाह के लिए संघर्ष करते हैं जिस कारण से बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाते हैं और बच्चे इस चंगुल में फँस जाते हैं। बाल श्रम से ग्रसित परिवार के लोग ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, जिस कारणवश उनके पास अच्छी नौकरी नहीं थी और अधिकांश परिवार असंगठित क्षेत्रों में संलग्न थे। अपनी दयनीय स्थिति के कारण यह लोग धन कमाने की चाहत में पलायन करके दिल्ली जैसे शहरी क्षेत्र में आए थे। इनमें से काफी के पास यहां स्थानीय दस्तावेज न होने के कारण सरकारी योजना का लाभ नहीं उठा पाते हैं और न ही अपने बच्चों का दाखिला विद्यालय में करा सकते हैं। आर्थिक तंगी के कारण इनके बच्चे भी बाल श्रम का शिकार बन जाते हैं। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हमने अपने शोध में यह पाया कि लगभग 43% बच्चों की प्रतिदिन आय 200 से 250 रुपये हैं तथा 11% बच्चे जो बाल श्रम से प्रभावित हैं उन्हें दैनिक भत्ता 300 रुपए प्रतिदिन से अधिक मिल रहा है (देखें ग्राफ 4)। हमने अपने शोधकार्य के दौरान यह भी पाया कि बच्चों को काम पर जाने और शिक्षा से वंचित रखने के पीछे सबसे प्रमुख कारण गरीबी है। अपने शोधकार्य के दौरान हम दिल्ली के कई गरीब परिवार से मिले जो अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं और इसी कारण अपने बच्चों के लिए रोजगार ढूँढना उनके लिए अधिक आय का एक साधन है। गरीबी के कारण जन्मी बाल श्रम की समस्या निरक्षरता, अच्छी नौकरियों तक पहुंच की कमी, जागरूकता की कमी और अन्य संबंधित कारकों के साथ मिलकर और भी बदतर हो जाती है। ये परिवार अक्सर एक ऐसे दुष्चक्र में फँस जाते हैं जहां जीवित रहना ही मूल प्राथमिकता होती है। “जब तक खाएंगे नहीं तो जीयेंगे कैसे” (एक पिता) यही कारण है कि बाल तस्करी भी बढ़ रही है। बच्चों और उनके परिवारों को शिक्षा और बेहतर जीवन के झूठे वादे करते हैं। “हमने कई बच्चों को बचाया है। वे एक ही स्थान पर बैठकर कई घंटों तक काम कर रहे थे, अगर वे कुछ गलत करते हैं, तो उन्हें दंडित किया जाता है।” (एक गैर-संगठन के अधिकारी)

असमर्थ कानूनी प्रावधान: पुनर्वास

भारत में बाल श्रम को रोकने के लिए ठोस कानून बना तो है जिसमें पुनर्वास से संबंधित प्रावधान भी किए गए हैं किंतु यह देखा गया है इसका लाभ बच्चों को नहीं मिल पाया है और इसका मुख्य कारण है धन का अभाव है। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना 1988 में बाल श्रमिकों के पुनर्वास का उद्देश्य खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में काम करने वाले बच्चों पर था। 9-14 वर्ष की आयु के बच्चों को इन व्यवसायों और प्रक्रियाओं से हटाकर विशेष प्रशिक्षण केंद्रों में भेज दिया जाता है। विशेष प्रशिक्षण केंद्रों में इन बच्चों को शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मध्याह्न भोजन, वजीफा, स्वास्थ्य देखभाल और मनोरंजन आदि जैसी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जिसका अंतिम उद्देश्य उन्हें औपचारिक शिक्षा प्रणाली में मुख्यधारा में लाने के लिए तैयार करना है किंतु राजधानी दिल्ली में ऐसा कोई केंद्र नहीं है (देखें, ग्राफ 5) और न ही ऐसे परिवारों को कोई वित्त सहायता आवंटित की गयी है (देखें, ग्राफ 6)।

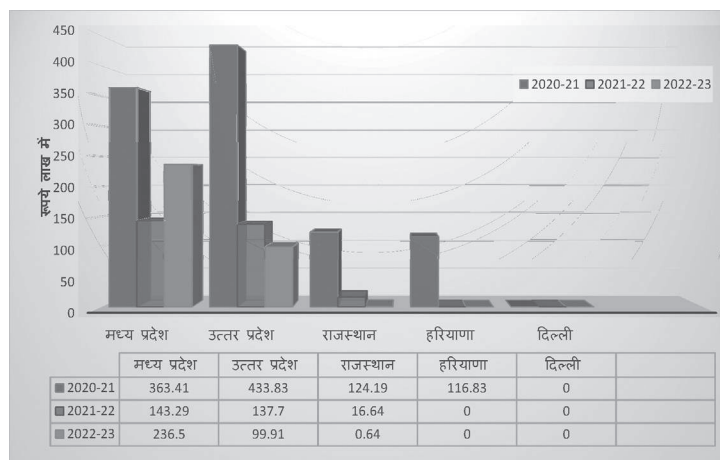
भारत के राज्यों में स्वीकृत (05 फरवरी 2024) और संचालित राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत जिलों की संख्या (31 मार्च, 2021 तक)



(ग्राफ-5 स्रोत श्रम एवं रोजगार मंत्रालय भारत सरकार तथा लोकसभा अतारांकित प्रश्न, प्रश्न संख्या 224, उत्तर 29 नवम्बर 2021)

नोट – प्रस्तुत आंकड़ों में चिह्नित राज्यों को ही रखा गया है।

राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत 2020-21 से 2022-23 के दौरान राज्य वार जारी अनुदान



(ग्राफ-6, स्रोत- प्रेस विज्ञप्ति, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, 05 फरवरी 2024)

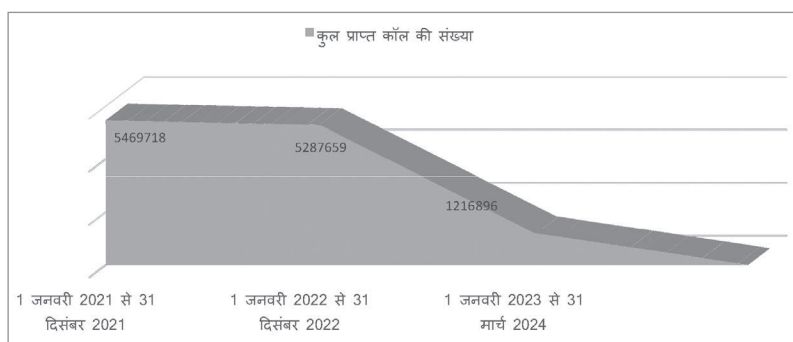
नोट – प्रस्तुत आंकड़ों में चिह्नित राज्यों को ही रखा गया है।

- वहीं कहीं न कहीं यह सरकार की बाल श्रम की समस्या को लेकर संवेदनशीलता पर एक प्रश्न चिन्ह भी लगाता है। इसी वजह से बाल-श्रम समस्या लगातार दिल्ली में बढ़ रही है और ज्यादातर बच्चे कलम, बीडी, माचिस, ईटा भट्टी, लोहे, कंस्ट्रक्शन, होटल, कारखानों, मोटर गैरेज में काम कर रहे हैं। एक उत्तरदाता ने कहा कि "मैं काम करता हूँ क्योंकि थाली में खाना मुफ्त नहीं है।" एक दूसरी समस्या समाज में कर्ज की भी हैं, एक लड़की ने हमसे कहा कि "2016 में मेरे पिताजी के निधन के बाद, हम अपने गाँव के कुछ बुरे लोगों के कर्जदार हो गए थे, जिन्होंने हमारे खेतों पर कब्जा कर लिया था। मेरे और मेरे भाई-बहनों के लिए एक अच्छा जीवन जीने का एकमात्र तरीका अपनी जमीन वापस पाना है। मेरी माँ अकेले 70,000 रुपये का कर्ज नहीं

चुका सकती हैं और इसलिए हमें हर संभव पैसा इकट्ठा करने के लिए काम करना पड़ा।” गरीबी के कारण जनित एक प्रमुख समस्या पलायन भी है, गरीबी के कारण जिनके पास घर नहीं हैं उन्हें झुग्गी बस्तियों में रहना पड़ रहा है। न तो कोई उनकी जान-पहचान का या सगे-संबंधी दिल्ली में हैं और न ही उनके पास कोई पहचान साबित करने वाला कानूनी दस्तावेज है जिसके कारण उन्हें सरकारी योजना का कोई भी लाभ भी नहीं मिल पाता, अंततः उनकी पारिवारिक स्थिति वैसी की वैसी ही बनी हुई है। जब हमने बचाव अभियान में शामिल हितधारकों से अपने शोध कार्य के लिए सम्पर्क किया तो उन्होंने कहा कि बाल मजदूरों का पुनर्वास कठिन है। बचाव के बाद बच्चे दूसरी फैक्ट्रियों में काम करने के लिए वापस लौट जाते हैं। बचाए जाने के बाद, उन्हें फिर से काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। इसलिए वे अपना काम करने का स्थान बदल देते हैं। अगर बच्चे को दक्षिण दिल्ली से बचाया जाता, तो वह फिर से काम करने के लिए दूसरे जिले में चला जाता है। आधार नंबर और बैंक खाते की अनुपस्थिति के कारण उन्हें अपना मुआवजा मिलना भी मुश्किल होता है।

2. **सरकारी विद्यालय में गिरता शिक्षा का स्तर** – हमने अपने शोध कार्य (फील्ड वर्क) में यह पाया कि जो बच्चे बाल श्रम से प्रभावित हैं या बाल श्रम कर रहे थे उन बच्चों का काम स्कूल जाना है न कि मजदूरी करना। इसी के साथ हमने ये भी पाया कि आस-पास शिक्षा का उचित माहौल का अभाव है, विशेषकर दूरस्थ इलाकों में, जहाँ ज्यादातर माता-पिता अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में नाम लिखवाकर छोड़ देते हैं ताकि सरकारी रिकॉर्ड में उनका नाम बना रहे और उन्हें सरकारी स्कूल की सब सुविधा/सहायता मिलती रहे और वहाँ के अध्यापक भी सिर्फ सरकारी नौकरी ही कर रहे हैं। उनको इस बात की कोई चिंता नहीं है कि उनका छात्र कहाँ है। इस संदर्भ में एक परिवार के संरक्षक ने कहा कि “हमने पैदा कर दिए हैं, अब उनकी (मास्टर साहब) जिम्मेदारी है उसको स्कूल बुलाना।” हमारे शोध में हमने पाया कि लगभग 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं को बाल श्रम निषेध कानून की जानकारी थी। इसलिए वह अपनी वास्तविक आयु नहीं बताते थे या बात घुमा देते थे कि बच्चे स्कूल गए हैं। शोध में हमने यह भी पाया कि बच्चों का विद्यालय जाने में मन नहीं लगता था क्योंकि वहाँ की शिक्षा उनको लुभाती नहीं है।

3. **1098 जहाँ मौन भी बहुत कुछ कहता है :-**



(ग्राफ 7, स्रोत – महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2021–2024)

1098 एक ऐसा फोन नंबर है जो भारत भर में लाखों बच्चों के लिए उम्मीद की किरण है। यह उनकी सहायता के लिए 24 घंटे, साल के 365 दिन, मुफ्त, आपातकालीन फोन सेवा है। यह न केवल बच्चों की आपातकालीन जरूरतों को पूरा करते हैं बल्कि उन्हें उनकी दीर्घकालिक देखभाल और पुनर्वास के लिए प्रासंगिक सेवाओं से भी उन्हें जोड़ता है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अनुसार इसे राष्ट्रीय आपातकालीन नंबर 112 के साथ इसका एकीकरण कर दिया गया जिससे अंतर-संचालन सुनिश्चित होगा तथा बच्चों के लिए उपलब्ध आपातकालीन सेवाओं का दायरा बढ़ाने में मदद मिलेगी। वित्त वर्ष 2023-24 के दौरान 36 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के महिला एवं बाल विकास नियंत्रण कक्षों द्वारा सीएचएल के माध्यम से उत्तर दिए गए कॉलों की कुल संख्या 12,16,896 है। वही वार्षिक रिपोर्ट 2022-23 के अनुसार 569 जिलों में चाइल्ड हेल्प डेस्क उपलब्ध है और 137 रेलवे स्टेशनों और 11 बस स्टैंडों पर चाइल्ड हेल्प डेस्क कार्यरत हैं। चाइल्ड हेल्प लाइन ने 1 जनवरी, 2022 से 31 दिसंबर, 2022 के बीच 52,87,659 कॉलों का जवाब दिया गया है जिनमें से 3,60,150 कॉल विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से संबंधित हैं। देखा जाये तो मौजूदा चिल्ड्रन हेल्प लाइन 1098 देश के 750 से अधिक जिलों में से केवल 603 जिलों तक ही सीमित है। जो भारत के 81% से अधिक भूभाग को कवर करती हैं। एक बच्चे तक पहुंचने की प्रक्रिया में लगभग 60 मिनट लगते हैं जो बिल्कुल असंतोषजनक है (महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार, 2022-23)। मुश्किल यह आ जाती है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में इसका संचालन महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा किया जाता है लेकिन दिल्ली के संदर्भ में इसका कोई भी अभी तक आधिकारिक आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। हमने अपने शोध में यह देखा कि बच्चे सरकारी तंत्रों को इस्तेमाल करने में डरते हैं क्योंकि उन्हें पुलिसकर्मियों पर विश्वास नहीं है। एक बच्चे ने कहा “मुझे पता है कि यह हेल्प लाइन नंबर है परन्तु मुझे इस बात का डर है कि कहीं मेरे मालिक को पता चल गया तो मेरी बहुत पिटाई होगी और खाना भी नहीं मिलेगा। क्योंकि पुलिस वाले मेरे मालिक के पास आते रहते हैं, मैंने देखा है।” हाल ही में दिल्ली हाईकोर्ट ने इस हेल्पलाइन और सुविधा के प्रचार-प्रसार के लिए सभी हितधारकों को निर्देशित किया है। (द स्टेट्समैन, 2024)

निष्कर्ष

बाल श्रम एक ऐसी समस्या है, जो अप्रत्यक्ष रूप जैसे बच्चों का यौन शोषण और शारीरिक और मानसिक तनाव, बाल तस्करी जैसे गंभीर चुनौतियों से करीब से जुड़ी हुई है। अपने शोध कार्य (फील्ड वर्क) में हमने पाया कि चाइल्ड हेल्पलाइन में ज्यादातर काल साइलेंट कॉल होती हैं जो यौन शोषण, भीख मांगने, शारीरिक शोषण और बाल विवाह से जुड़ी हुई होती हैं। हमने अपने शोध कार्य (फील्ड वर्क) में अवलोकन किया कोविड -19 के बाद दिल्ली में बाल श्रम की स्थिति बढ़ी है। कोविड-19 के आपातकालीन समय के दौरान लोगों का रोजगार छिन गया और हम कुछ परिवारों से मिले जो इस कारण कर्ज में पूरी तरह फंस चुके थे और यह सब बाल श्रम को बढ़ाने में योगदान देने वाले कारक है। हमारे सम्पर्क में आये अधिकांश बच्चे लगभग असंगठित क्षेत्र में कार्य करते थे कुछ ऐसे भी बच्चे थे जो खतरनाक उद्योग में अपनी जान-जोखिम में डाल कर काम करने के

लिए मजबूर थे। कहीं न कहीं इन्हीं कारकों ने दिल्ली जैसे महंगे शहर में बच्चों को बाल श्रम करने का मजबूर किया है। एक दूसरी समस्या के रूप में हमने पलायन को देखा जहाँ दिल्ली आने वाले परिवारों के पास कोई सरकारी कागजात नहीं होते हैं, वो रोजगार की तलाश में बड़े शहर के लिए पलायन करते हैं। हमने अपने शोध में पाया कि अधिकांश ऐसे परिवार/लोग झुग्गी बस्तियों में रहते हैं, जहाँ उन्हें प्रतिदिन काम करने के बाद ही रात का खाना मिलता है, वो दिहाड़ी मजदूर हैं, घर चलाने के लिए पूरा का पूरा परिवार काम करता है, आधार कार्ड, राशन कार्ड नहीं होने की वजह से वो सरकारी योजना के लाभ से वंचित रह जाते हैं और समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं हो पाते हैं। तीसरी समस्या जो हमने अपने शोध में पायी वह यह है कि सरकारी तंत्र एक एकीकृत रूप से कार्य नहीं करता है। पुलिस, आयोग तथा हितधारकों के अपने-अपने नियम और कानून हैं जिस वजह से बचाव अभियान में भी देरी होती थी, साथ ही में यह भी हमने पाया कि बच्चों को बाल श्रम से अगर बचा भी लिया जाता था, तो उन बच्चों को ट्रैक नहीं किया जाता था कि उनकी स्थिति क्या है, वे कहाँ हैं, फिर से बाल श्रम में तो नहीं फँस गये। जब सरकार द्वारा बनाई गई संस्थाएं अपने दायित्व को पूरा करने में असमर्थ हो जाती हैं, और सरकार तथा नागरिक के मध्य कोई संवाद नहीं होता है तब इस खाई (गैप) को जोड़ने का काम नागरिक समाज करता है। दिल्ली स्थित नागरिक समाज संस्थाओं द्वारा चलाए गए विभिन्न जागरूकता कार्यक्रम ने इस समस्या से निपटने में मुख्य भूमिका निभाई है जैसे बचपन बचाओ आंदोलन का जस्टिस फॉर एवरी चाइल्ड अर्थात् प्रत्येक बच्चे के लिए न्याय। देखा जाये तो नागरिक समाज बाल श्रम की समस्या को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह जागरूकता और शिक्षा, वकालत और लॉबीइंग, पुनर्वास और पुनर्निवेश, अन्वेषण और निगरानी, सामुदायिक सहभागिता, कानूनी सहायता, और सहयोग और नेटवर्किंग जैसे विभिन्न तरीकों से योगदान कर सकता है।

राजनीति विज्ञान विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

¹sagarwal1@polscience.du.ac.in

²abhayprabhagarg111@gmail.com

सन्दर्भ :

1. अराट, जेड. एफ., (2002). एनालाईजिंग चाइल्ड लेबर एस ए ह्यूमन राइट्स इश्यू: इट्स काउसेस, अग्रावर्तिंग पॉलिसी एण्ड अल्टरनेटिव प्रोपोसल. ह्यूमन राइट्स क्वार्टरली, 24(1), 177–204. <https://www-jstor-org/stable/20069593>
2. अहमद, आई. (1999). गेटिंग रीड ऑफ चाइल्ड लेबर. इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 34(27), 1815–1822. <https://www-jstor-org/stable/4408158>
3. गोठवाल, प्र. के. (2016). भारत में मानवाधिकार: बाल श्रम एवं बाल अपराध, समस्या एवं समाधान. इन्डियन जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च 2(6), 700–703.
4. चतुर्वेदी, एस., रामपाल, एस., एण्ड सिंह, ए. वी. (2011). चाइल्ड लेबर: ए डिनायल ऑफ ह्यूमन डेवलपमेंट. द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 72(1), 135–142. <https://www-jstor-org/stable/42761814>

5. जॉर्ज, ए., एण्ड पांडा, एस. (2015). चाइल्ड लेबर लॉ अमेंडमेंट: अप्लाइंग द ब्रेअक्स ऑन सोशल मोबिलिटी. इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 50(38), 16–19. <https://www-jstor-org/stable/24482423>
6. टकर, एल., (1997). चाइल्ड स्लेव्स इन मॉडर्न इंडिया: द बॉडेड लेबर प्रॉब्लम. ह्यूमन राइट्स क्वार्टरली, 19(3), 572–629. <https://www-jstor-org/stable/762726>
7. बुरा, एन. (1997) बॉर्न टू वर्क चाइल्ड लेबर इन इंडिया नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड प्रेस
8. पॉल, टी. (2008). चाइल्ड लेबर दू प्रोहीबिशन वर्सेज अबोलिशन: अनटैंगलिंग द कॉन्सटीट्यूशनल टैंगल. जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, 50(2), 143–176. <https://www-jstor-org/stable/43952432>
9. मौर्या, ओ. पी., (2001). चाइल्ड लेबर इन इंडिया. इंडियन जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशनस, 36(4), 492–498. <https://www-jstor-org/stable/27767746>
10. रामानाथन, यू. (1998). ऑन एनोजिंग विद द लॉ: रिविजीटिंग चाइल्ड लेबर. जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, 40(1 / 4), 263–283. <https://www-jstor-org/stable/43953321>
11. लिऐटन, जी. के. (2002). चाइल्ड लेबर इन इंडिया: डिसेंटैंगलिंग एस्सेनस एंड सलूशनस. इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 37(52), 5190–5195. <https://www-jstor-org/stable/4413015>
12. वीनर, एम. (1989). कैन इंडिया एंड्स चाइल्ड लेबर? इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, 16(3&4), 43–50. <https://www-jstor-org/stable/23002067>
13. वीनर, एम् (1991) द चाइल्ड एंड द स्टेट इन इंडिया चाइल्ड लेबर एंड एजुकेशन पॉलिसी इन कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
14. शर्मा, पी. (1994). चाइल्ड लेबर: ए सोसिओ-लीगल स्टडी. जर्नल ऑफ द इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट, 36(2), 211–220. <https://www-jstor-org/stable/43951532>
15. स्त्रागे, ई. जे., एण्ड इविंग, ए. पी., (2005). द कोकोआ इंडस्ट्री एंड चाइल्ड लेबर. द जर्नल ऑफ कॉर्पोरेट सिटीजनशिप, 18, 99–112. <https://www-jstor-org/stable/jcorpciti-18-99>
16. त्रिपाठी, एस., (2010). चाइल्ड लेबर एंड एजुकेशन इन इंडिया: प्रॉमिस एंड परफॉरमेंस. द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 71(2), 469–480. <https://www-jstor-org/stable/42753709>
17. भारत का राजपत्र नई दिल्ली, शनिवार, जुलाई 30, 2016& श्रावण 8, 1938 (शक) पुनर्प्राप्ति 18 अक्तूबर 2024 [%2016%41%20pdf">https://pencil-gov-in/THE%20CHILD%20LABOUR%20%4PROHIBITION%20AND%20REGULATION%20AMENDMENT%20ACT\]%2016%41%20pdf](https://pencil-gov-in/THE%20CHILD%20LABOUR%20%4PROHIBITION%20AND%20REGULATION%20AMENDMENT%20ACT)
18. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार (2021) वार्षिक रिपोर्ट 2021–22 पुनर्प्राप्ति 10 अक्तूबर 2024 <https://wcd-gov-in/documents/annual&report>
19. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार (2022) वार्षिक रिपोर्ट 2021–22 पुनर्प्राप्ति 10 अक्तूबर 2024 <https://wcd-gov-in/documents/annual&report>
20. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार (2023) वार्षिक रिपोर्ट 2022–23 पुनर्प्राप्ति 13 अक्तूबर 2024 <https://wcd-gov-in/documents/annual&report>
21. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार (2024) वार्षिक रिपोर्ट 2023–24 पुनर्प्राप्ति 15 अक्तूबर 2024 <https://wcd-gov-in/documents/annual&report>
22. यूनिसेफ (1989) बाल अधिकारों पर कन्वेंशन पुनर्प्राप्ति 16 नवम्बर 2024
23. <https://www-unicef-org/child&rights&convention/convention&teÜt>
24. यूनाइटेड नेशन ह्यूमन राइट्स ऑफिस ऑफ द हाई कमिशनर, (1973) न्यूनतम आयु कन्वेंशन, 1973 (सं. 138) पुनर्प्राप्ति 10 सितम्बर 2024 <https://www-ohchr-org/en/instruments&mechanisms/instruments/minimum&age&convention&1973&no&138>
25. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय (2011) भारत सरकार की जनगणना 2011, पुनर्प्राप्ति 10 सितम्बर 2024 <https://labour-gov-in/hi/childlabour/census&data&child&labour>

26. श्रम और रोजगार मंत्रालय भारत सरकार (2016) प्रेस विज्ञप्ति बाल श्रम बचाव अभियान पुनर्प्राप्ति 10 नवम्बर 2024
<https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1945514#:~:text=NCLP%20scheme%20has%20now%20been%20subsumed%20under,and%202022%2D23%20were%2018137%20and%2013761%20respectively.>
27. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय भारत सरकार रिपोर्ट (2017) हमारा लक्ष्य बालश्रम मुक्त भारत रिपोर्ट 2017 पुनर्प्राप्ति 30 अक्तूबर 2024
https://labour.gov.in/sites/default/files/_aur_kishor_shrm_prtissedh_aur_viniymn_adhiniym_1986.pdf
28. श्रम और रोजगार मंत्रालय भारत सरकार (2024) प्रेस विज्ञप्ति बाल श्रम के लिए स्कूलों की स्थापना, पुनर्प्राप्ति 18 अक्तूबर 2024 <https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2002659>
29. लोकसभा अतारांकित प्रश्न, प्रश्न संख्या 224, उत्तर 29 नवम्बर 2021
30. दिल्ली गवर्नमेंट अपीलस तो सिटीजन तो रिपोर्ट चाइल्ड एब्यूज बैगिंग केसेस (26 जुलाई, 2024) द स्टेट्समैन पुनर्प्राप्ति 30 नवम्बर 2024 <https://www.thestatesman.com/cities/delhi-govt-appeals-to-citizens-to-report-child-abuse-begging-cases-1503324927.html>
31. यूपी बिहार एमंग टॉप स्टेट इन चाइल्ड ट्रेफिकिंग दिल्ली रिकॉर्ड्स अलार्मिंग राइज : एनजीओ स्टडी (30 जुलाई, 2024) द हिन्दू पुनर्प्राप्ति 30 नवम्बर 2024 <https://www-thehindu-com/news/national/p&bihar&ap&among&top&states&in&child&trafficking&delhi&records&alarming&rise&ngo&study/article67138325-ece>
32. 1098: व्हेयर साइलेंट स्पीक वॉल्यूम (22 नवम्बर 2024) टाइम्स ऑफ इंडिया पुनर्प्राप्ति 26 नवम्बर 2024 <https://timesofindia-indiatimes-com/city/chennai/1098&child&helpline&revolutionizing&support&for&silent&calls&in&india/articleshow/115575758-cms>

एडमिरल ए. टी. महान के नौ शक्ति सिद्धांत के आलोक में भारतीय सामुद्रिक उदय: संभावनाएं एवं चुनौतियाँ

डा. लखन सिंह कुशरे

सारांश :

सारांश— ए. टी. महान ने कहा था— “जो देश हिंद महासागर पर नियंत्रण करेगा, वह एशिया पर राज करेगा। यह महासागर सात समुद्रों की कुंजी है। 21वीं सदी में दुनिया की नियति उसके जल पर तय होगी।” महान के सिद्धांतों में नौ शक्ति को एक राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या, व्यापार, नौसेना की क्षमता और सामरिक गठबंधन जैसे तत्वों से परिभाषित किया गया है। यह सिद्धांत आज भी वैश्विक सामरिक नीतियों में प्रासंगिक है। हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति और समुद्री व्यापारिक मार्गों पर प्रभाव के कारण भारत प्रमुख सामरिक भूमिका निभाने की क्षमता रखता है। आलेख में भारत की नौसैनिक शक्ति के ऐतिहासिक विकास और भविष्य की संभावनाओं का आकलन किया गया है।

इस अध्ययन में नौसैनिक शक्ति के क्षेत्र में भारत के समक्ष मौजूद प्रमुख चुनौतियों जैसे अधोसंरचनात्मक अभाव, आर्थिक संसाधनों की कमी, तकनीकी पिछड़ापन, और पड़ोसी देशों (विशेषतः चीन और पाकिस्तान) से उत्पन्न खतरे को रेखांकित किया गया है। शोध में यह सुझाव दिया गया है कि भारत को अपनी नौसेना के दीर्घकालिक विस्तार के लिए नीतिगत सुधार, स्वदेशी तकनीकी नवाचार और अंतरराष्ट्रीय सामरिक गठबंधन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। हिंद महासागर क्षेत्र में प्रभुत्व स्थापित करने और ब्लू इकोनॉमी का सतत विकास, भारत को वैश्विक स्तर पर एक प्रभावशाली नौसैनिक महाशक्ति के रूप में उभरने में मदद करेगा। भारत अपनी नौसैनिक शक्ति को मजबूत करके क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

बीज शब्द : एडमिरल ए.टी. महान, नौ शक्ति सिद्धांत, हिंद महासागर, ब्लू इकोनॉमी, समुद्री कूटनीति, समुद्री आतंकवाद, पायरेसी, क्वाड।

प्रस्तावना

सरदार के. एम. पनिकर के अनुसार— “भारत ने अपनी आजादी तब तक नहीं खोई, जब तक उसने समुद्र पर नियंत्रण नहीं खो दिया।”¹ उनके निष्कर्ष के अनुसार— “भारत की सुरक्षा हिंद महासागर पर निर्भर है। एक सुविचारित और प्रभावी नौसैनिक नीति के बिना, दुनिया में भारत की स्थिति कमजोर होगी, उसकी आजादी हिंद महासागर को नियंत्रित करने वाले किसी भी देश की दया पर निर्भर होगी।”² ऐतिहासिक रूप से नौ सैन्य शक्ति वैश्विक प्रभुत्व की आधारशिला रही है। यह साम्राज्यों के उत्थान और पतन को आकार देती है और भू-राजनीतिक परिदृश्य को प्रभावित करती

है। 19वीं सदी के सबसे प्रमुख नौसैनिक रणनीतिकारों में से एक, अल्फ्रेड थायर महान ने तर्क दिया है कि किसी राष्ट्र की महानता और वैश्विक प्रभाव आंतरिक रूप से समुद्र पर नियंत्रण रखने की उसकी क्षमता पर निर्भर करता है। उनका सिद्धांत समुद्री वर्चस्व स्थापित करने में भूगोल, व्यापार और नौसैनिक ताकत की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। उन्होंने सामुद्रिक शक्ति को राष्ट्रीय शक्ति की कुंजी माना है।³ आज की वैश्विक जगत में जहां 90% से अधिक वैश्विक व्यापार समुद्री मार्गों से होता है, महान के विचार अत्यधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

हिंद महासागर क्षेत्र में भारत की रणनीतिक अवस्थिति और 7,500 किलोमीटर से अधिक लंबी तटरेखा के कारण उसमें नौ सैन्य शक्ति के विकास की प्रबल संभावनाएं हैं।⁴ हिंद महासागर न केवल भारत के व्यापार के लिए एक माध्यम है, बल्कि भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के लिए भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह मलक्का जलडमरूमध्य, होर्मुज जलडमरूमध्य और बाब-अल-मंडेब जैसे प्रमुख समुद्री जलमार्गों से जुड़ा हुआ है। इस महासागर के तटीय क्षेत्र में विश्व की 30 प्रतिशत और दक्षिण एशिया में दुनिया की दो तिहाई जनसंख्या रहती है।⁵

भारत का समुद्री इतिहास समुद्री यात्रा और व्यापार की विरासत को दर्शाता है। लेकिन इसका समकालीन नौसैनिक पुनरुत्थान स्वतंत्रता के बाद की नीतियों और समुद्र के रणनीतिक महत्व की बढ़ती मान्यता में निहित है। पिछले दो दशकों में, भारत अपनी नौसेना के विस्तार और आधुनिकीकरण में उल्लेखनीय निवेश किया है। यह सब समुद्री मार्गों को सुरक्षित करने और हिंद-प्रशांत में उसकी प्रभावशाली उपस्थिति की महत्वाकांक्षा को दर्शाता है।

हालाँकि, भारत के इस रास्ते में अत्यधिक चुनौतियाँ भी हैं। बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) और “स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स” रणनीति के द्वारा चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी नेवी के एक दुर्जेय समुद्री बल के रूप में उभरने से क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा तेज हो गई है।⁶ इसके अतिरिक्त, भारत को सीमित रक्षा बजट, तकनीकी निर्भरता और बुनियादी ढांचागत बाधाओं के अलावा आंतरिक बाधाओं का सामना भी करना पड़ रहा है।

इस पेपर का उद्देश्य महान के समुद्री शक्ति के सिद्धांतों के आलोक में सामुद्रिक महाशक्ति के रूप में भारत के उदय का विश्लेषण करना है। भारत की समुद्री रणनीति में संभावनाओं और चुनौतियों की जांच करके, यह मूल्यांकन करना है कि भारत उभरती वैश्विक समुद्री व्यवस्था में एक प्रमुख स्थान हासिल करने के लिए अपनी नौसैनिक क्षमताओं का कितना प्रभावी ढंग से लाभ उठा सकता है।

शोध का उद्देश्य और प्रासंगिकता— भारत, हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी रणनीतिक स्थिति के कारण, वैश्विक स्तर पर एक नौसैनिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है। समुद्री व्यापार मार्गों पर भारत का नियंत्रण न केवल उसके आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है, अपितु क्षेत्रीय स्थिरता और भू-राजनीतिक प्रभाव को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। वर्तमान में, समुद्री सुरक्षा, ऊर्जा आपूर्ति मार्गों का संरक्षण, और चीन की बढ़ती सामरिक गतिविधियों को देखते हुए भारत के लिए नौसैनिक शक्ति का विकास अत्यंत प्रासंगिक है।⁷

इस शोध का मुख्य उद्देश्य भारत के नौसैनिक शक्ति के विकास को एडमिरल ए. टी. महान के नौ शक्ति सिद्धांत के आलोक में मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन दो मुख्य प्रश्नों पर केंद्रित है:

1. महान के नौ शक्ति सिद्धांत के कौन से पहलू भारत की समुद्री रणनीति को आकार दे सकते हैं?
2. भारत के लिए एक प्रभावी नौसैनिक शक्ति बनने में कौन-कौन सी चुनौतियाँ और संभावनाएँ हैं?

शोध प्रविधि— यह शोध विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक प्रकार का है। इस शोध आलेख में संबंधित द्वितीयक डेटा जैसे प्रमुख शोध पत्र, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, और आधिकारिक दस्तावेज: भारतीय रक्षा मंत्रालय, भारतीय नौसेना, और अन्य संबंधित संस्थाओं द्वारा जारी किए गए रिपोर्ट्स और दस्तावेज का उपयोग किया गया है साथ ही ऑनलाइन संसाधन: इंटरनेट, जर्नल्स, और ई-बुक्स से उपलब्ध डेटा का भी उपयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा— शोध विषय से संबंधित शोध पत्रों, पुस्तकों, और अन्य साहित्यों की समग्र समीक्षा की गई है।

मुख्य चर्चा: भारत की नौ सैन्य शक्ति का इतिहास बहुत पुराना और विविधतापूर्ण है। भारत की नौसैनिक शक्ति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समय-समय पर बदलता रहा है, लेकिन हर कालखंड में समुद्र के महत्व को समझने और उस पर नियंत्रण करने की आवश्यकता बनी रही है।

दक्षिण भारत में स्थित चोल साम्राज्य समुद्र पर अपने प्रभाव का विस्तार किया था। चोल सम्राट राजा राजा चोल और उनके उत्तराधिकारियों ने हिंद महासागर, दक्षिण-पूर्व एशिया, और श्रीलंका के पास स्थित समुद्री क्षेत्रों में अपनी शक्ति का विस्तार कर समुद्र के व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण किया था।

मराठों का समुद्री शक्ति में महत्वपूर्ण योगदान था। शिवाजी महाराज ने 17वीं सदी में समुद्र के महत्व को समझते हुए एक मजबूत नौसेना का गठन किया। उन्होंने कोंकण तट और आसपास के तटीय क्षेत्र में एक मजबूत नौसेना तैयार की, जिससे समुद्र में व्यापारिक मार्गों की रक्षा और अपनी सामरिक शक्ति को मजबूत किया जा सका। मराठों ने मुगल साम्राज्य के साथ समुद्री संघर्ष भी किए, और पश्चिमी तट पर सफलताएँ प्राप्त कीं। औपनिवेशिक काल में, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के समुद्री व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित किया और भारतीय तटों पर अपनी नौसेना तैनात की।

हिंद महासागर क्षेत्र में विश्व के लगभग 80% समुद्री व्यापार और ऊर्जा आपूर्ति के मार्ग स्थित हैं, जिसे नियंत्रित करने से भारत वैश्विक व्यापारिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हिंद महासागर क्षेत्र न केवल भारत के लिए बल्कि दुनिया के अन्य बड़े देशों के लिए भी सामरिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र वैश्विक ऊर्जा आपूर्ति के प्रमुख मार्गों जैसे पर्सियन गल्फ, मलक्का स्ट्रेट एवं बाब-अल-मंदेब को नियंत्रित करता है। भारत की भौगोलिक स्थिति उसे प्राकृतिक समुद्री शक्ति बनने के लिए उपयुक्त बनाती है। लेकिन, चीन की “मोतियों की माला” रणनीति, जिसके तहत वह हिंद महासागर में अपने सामरिक आधार स्थापित कर रहा है, भारत के लिए एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है।

भारत का लगभग 95% व्यापार और 80% से अधिक ऊर्जा आपूर्ति समुद्री मार्गों से होती है। ऐसे में, समुद्री मार्गों की सुरक्षा और संरक्षण सुनिश्चित करना, भारत की आर्थिक स्थिरता के लिए अत्यंत आवश्यक है। समुद्री व्यापारिक मार्गों पर किसी भी प्रकार का खतरा, जैसे समुद्री डकैती या

आतंकवाद, भारत की आर्थिक प्रगति को बाधित कर सकता है।⁸ हिंद महासागर समुद्री संसाधनों (जैसे मछली, खनिज, तेल व गैस) का बड़ा भंडार है। इस महासागर के लिटोरल स्टेट्स में विश्व के तेल का 65 प्रतिशत और गैस का 35 प्रतिशत भण्डार पाया जाता है।⁹ भारत के लिए ब्लू इकोनॉमी का विकास उसकी आर्थिक प्रगति और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है। नौसैनिक शक्ति का विस्तार समुद्री संसाधनों के सतत उपयोग और सुरक्षा को सुनिश्चित करेगा।

एडमिरल ए. टी. महान के नौ शक्ति सिद्धांतों का भारत के संदर्भ में मूल्यांकन: एडमिरल अल्फ्रेड थायर महान 19वीं सदी के एक प्रमुख अमेरिकी नौ सैन्य इतिहासकार और सामरिक विश्लेषक थे। उन्होंने समुद्री शक्ति (Sea Power) के महत्व को परिभाषित किया है। उनका सबसे प्रसिद्ध कार्य—'The Influence of Sea Power Upon History, 1660–1783' (1890)¹⁰ है, जिसमें उन्होंने सामुद्रिक शक्ति को वैश्विक राजनीति, युद्ध, और राष्ट्रों की शक्ति के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण कारक माना। उनके सिद्धांतों का वैश्विक नौसैनिक रणनीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

एडमिरल अल्फ्रेड थायर महान (1840–1914) का नौ शक्ति सिद्धांत आधुनिक सामरिक चिंतन की समीचीन विषय-वस्तु है। उन्होंने तर्क दिया कि एक राष्ट्र की वैश्विक शक्ति उसकी समुद्री क्षमता पर निर्भर करती है। महान का यह सिद्धांत भारत जैसे देशों के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, जो रणनीतिक रूप से हिंद महासागर क्षेत्र में स्थित है और जिनके आर्थिक एवं सामरिक हित समुद्र से जुड़े हैं।

महान का नौ शक्ति सिद्धांत समुद्री शक्ति के महत्व और समुद्र के प्रभाव के बारे में उनके व्यापक विचारों का समूह था। उनका मानना था कि जो राष्ट्र समुद्र पर नियंत्रण रखते हैं, वे वैश्विक स्तर पर शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। उनके सिद्धांत ने समग्र रूप से यह स्थापित किया कि एक राष्ट्र की शक्ति केवल उसकी भूमि सीमाओं पर निर्भर नहीं होती, बल्कि समुद्र के माध्यम से भी यह सामर्थ्य बढ़ाई जा सकती है। उनके सिद्धांत उन महत्वपूर्ण कारकों को रेखांकित करते हैं जो समुद्री वर्चस्व हासिल करने और बनाए रखने में योगदान करते हैं।

एडमिरल ए.टी. महान का नौसैनिक शक्ति का सिद्धांत प्रमुख रूप से छह प्रमुख तत्वों पर जोर देता है जो नौसैनिक प्रभुत्व हासिल करने और बनाए रखने के लिए एक राष्ट्र की क्षमता निर्धारित करते हैं। इन तत्वों में भौगोलिक स्थिति, भौतिक संरचना, क्षेत्रीय विस्तार, जनसंख्या, सरकार का स्वरूप और राष्ट्रीय चरित्र शामिल हैं।¹¹

1. भौगोलिक स्थिति—

- i. महान का सिद्धांत: महान के अनुसार किसी राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, उसकी सामुद्रिक क्षमता निर्धारित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। आदर्श स्थान, महत्वपूर्ण समुद्री चोकपॉइंट्स के पास या वैश्विक व्यापार मार्गों के केंद्र में हैं, जो राष्ट्र को महत्वपूर्ण समुद्री मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने और दूर के जल में एक मजबूत नौसैनिक उपस्थिति बनाए रखने में सक्षम बनाता है।
- ii. भारत की स्थिति: भारत रणनीतिक रूप से हिंद महासागर के मध्य में स्थित है, जो वैश्विक समुद्री व्यापार के लिए एक महत्वपूर्ण चौराहा है। मलक्का जलडमरूमध्य, होर्मुज जलडमरूमध्य

और बाब—अल—मंडेब जलडमरूमध्य जैसे प्रमुख समुद्री चोकपॉइंट्स से इसकी निकटता भारत को महत्वपूर्ण वैश्विक शिपिंग मार्गों के केंद्र में रखती है। हिंद महासागर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से ऊर्जा आपूर्ति (तेल और गैस) के परिवहन के लिए, और भारत का स्थान उसे इन समुद्री मार्गों को नियंत्रित करने में प्राकृतिक लाभ प्रदान करता है।

- iii. मूल्यांकन: भारत की भौगोलिक स्थिति महान के सिद्धांत के साथ अच्छी तरह मेल खाती है। देश की रणनीतिक स्थिति प्रमुख समुद्री मार्गों पर लाभ प्रदान करती है और हिंद महासागर क्षेत्र पर प्रभाव और नियंत्रण बनाए रखने के इसके रणनीतिक उद्देश्यों को मजबूत करती है। इस क्षेत्र में भारत की बढ़ती नौसैनिक क्षमताएं उसके हितों की रक्षा करने और क्षेत्रीय स्थिरता सुनिश्चित करने का काम करती हैं, जो आधुनिक समुद्री रणनीति में महान के भौगोलिक सिद्धांतों के महत्व की पुष्टि करती है। मलक्का जलडमरूमध्य, बाब अल मण्डेब और होर्मुज जलडमरूमध्य जैसे रणनीतिक स्थान वैश्विक व्यापार और ऊर्जा आपूर्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन चोकपॉइंट्स से भारत की भौगोलिक निकटता इसे महत्वपूर्ण शिपिंग मार्गों की निगरानी और प्रभावित करने में सक्षम बनाती है।¹²

2. भौतिक संरचना—

- i. महान का सिद्धांत: महान ने देश के समुद्र तट, नौ संचालन योग्य नदियों और प्राकृतिक बंदरगाहों के महत्व पर जोर दिया है, जो इसे नौसैनिक अड्डे स्थापित करने, बड़े तैनात करने और समुद्री प्रभुत्व सुरक्षित करने में सक्षम बनाता है।
- ii. भारत की संरचना: भारत के पास 7,500 कि.मी. से अधिक लम्बी और विविधता तटरेखा है, जो कई प्रमुख नौसैनिक अड्डों तक पहुंच प्रदान करती है। देश में मुंबई, चेन्नई, कोलकाता और कोच्चि सहित कई प्रमुख बंदरगाह हैं, जो इसके नौसैनिक बलों के लिए रसद और परिचालन केंद्र के रूप में काम करते हैं। भारत की भौतिक संरचना उसे हिंद महासागर में नौसैनिक संसाधनों को अपेक्षाकृत आसानी से तैनात करने और एक मजबूत रक्षात्मक स्थिति बनाये रखने में सहायक है।
- iii. मूल्यांकन: भारत की व्यापक तटरेखा और कई गहरे पानी के बंदरगाह इसे समुद्र तक पर्याप्त पहुंच प्रदान करते हैं, जिससे समुद्री शक्ति को विकसित करने में सहायक हैं। अपने समुद्र तट और हिंद महासागर के पार परिचालन आधार स्थापित करने और बनाए रखने की क्षमता भारत की रणनीतिक पहुंच के लिए महत्वपूर्ण है, जो महान के इस दावे का समर्थन करता है कि किसी देश की भौतिक भूगोल उसकी नौसैनिक सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक बंदरगाहों, नौ आवागमन योग्य नदियों और लंबी तटरेखा की उपस्थिति किसी देश की नौसैनिक अभियानों को बनाए रखने की क्षमता को बढ़ाती है। भारत की विस्तृत तटरेखा और कई बंदरगाह इसकी नौसैनिक महत्वाकांक्षाओं के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।¹³

3. क्षेत्रीय विस्तार—

- i. महान का सिद्धांत: बड़े क्षेत्रीय विस्तार वाला देश, विशेष रूप से द्वीपों या दूरस्थ चौकियों पर नियंत्रण के साथ, नौसैनिक शक्ति प्रदर्शित करने की अपनी क्षमता बढ़ाता है। बड़े क्षेत्र समुद्री व्यापार को नियंत्रित करने और दूर-दराज के क्षेत्रों पर प्रभाव डालने की क्षमता बढ़ाते हैं।

- ii. भारत का क्षेत्र: भारत के क्षेत्रीय विस्तार में न केवल मुख्य भूमि बल्कि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और लक्षद्वीप जैसे द्वीप क्षेत्रों की एक शृंखला भी शामिल है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, रणनीतिक रूप से मलक्का जलडमरूमध्य के पास स्थित है, जो भारत को एक मूल्यवान नौसैनिक आधार प्रदान करता है जो प्रमुख शिपिंग लेन पर निगरानी क्षमता प्रदान करता है और नौसेना संचालन के लिए एक रणनीतिक बिंदु के रूप में काम कर सकता है। आर्थिक और सैन्य उद्देश्यों के लिए सुरक्षित और खुले समुद्री मार्ग बनाए रखना आवश्यक है। महान ने इन मार्गों को विरोधियों से बचाने के लिए सुदृढ़ नौसेना की आवश्यकता पर जोर दिया है। हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी नौसैनिक उपस्थिति बढ़ाने के भारत के प्रयास और मालाबार जैसे नौसैनिक अभ्यासों में इसकी भागीदारी इन मार्गों को सुरक्षित करने की दिशा में कदम हैं।¹⁴
- iii. मूल्यांकन: भारत का व्यापक क्षेत्र, जिसमें प्रमुख समुद्री चौकियाँ भी शामिल हैं, महान के सिद्धांतों के अनुरूप है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह विशेष रूप से भारत के लिए एक बल गुणक के रूप में काम करता है। विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र सहित विशाल समुद्री क्षेत्रों तक पहुंच वाले बड़े क्षेत्र रणनीतिक गहराई और संसाधन अवसर प्रदान करते हैं। भारत का 2 मिलियन वर्ग किलोमीटर से अधिक का अनन्य आर्थिक क्षेत्र (ईईजेड) अन्वेषण और समुद्री प्रभुत्व के लिए अपार संभावनाएं प्रदान करते हैं।¹⁵

4. जनसंख्या—

- i. महान का सिद्धांत: किसी देश की जनसंख्या नौसैनिक बलों के लिए उपलब्ध जनशक्ति का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक बड़ी उत्पादक आबादी एक मजबूत व्यापारिक बेड़े की स्थापना में मदद करती है, जो व्यापार और रसद के लिए आवश्यक है।
- ii. भारत की जनसंख्या: 1.4 बिलियन से अधिक लोगों की आबादी के साथ, भारत के पास अपनी नौसैनिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए मानव संसाधन का एक बड़ा पूल है। यह जनसंख्या भारत के नौसैनिक क्षमता और समुद्री अर्थव्यवस्था के विकास दोनों के लिए आवश्यक जनशक्ति प्रदान करता है। भारत की जनसंख्या समुद्र आधारित व्यापार में भी योगदान दे सकती है।
- iii. मूल्यांकन: भारत की बड़ी और युवा आबादी नौसैनिक शक्ति को बनाए रखने में एक प्रमुख तत्व के रूप में महान के दृष्टिकोण का समर्थन करती है। देश का जनसांख्यिकीय लाभ इसे अपने नौसैनिक बलों को विकसित करने में सक्षम बनाता है, साथ ही एक सुदृढ़ समुद्री व्यापारिक नेटवर्क के विकास में भी सहायक है, जो महान के सिद्धांत के अनुरूप है कि एक देश की आबादी अपनी नौसेना और व्यापारी बेड़े दोनों को बनाए रखने के लिए पर्याप्त मजबूत होनी चाहिए।

5. सरकार का स्वरूप—

- i. महान का सिद्धांत: एक सुसंगत समुद्री रणनीति बनाए रखने, नौसैनिक संचालन के वित्तपोषण और दीर्घकालिक नौसैनिक बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए एक स्थिर और केंद्रीकृत सरकार आवश्यक है। महान ने ऐसे सरकार के महत्व पर भी प्रकाश डाला जो नौसैनिक शक्ति और रणनीतिक लक्ष्यों को प्राथमिकता देती है।

- ii. भारत की सरकार: भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। एक स्थिर सरकार के साथ जिसने अपनी सामुद्रिक नीति के प्रमुख तत्व के रूप में क्षेत्रीय एवं वैश्विक शांति तथा सुरक्षा बनाये रखने के उद्देश्य से नौसेना विस्तार सहित रक्षा आधुनिकीकरण को लगातार प्राथमिकता दी है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय समुद्री सुरक्षा रणनीति और समुद्री सुरक्षा नीति जैसी पहलों के माध्यम से अपनी समुद्री रणनीति पर ध्यान केंद्रित रखा है, जिसका उद्देश्य हिंद महासागर और उससे आगे भारत के हितों की रक्षा करना है। इसके अतिरिक्त, भारतीय नौसेना ने देश के समुद्री लक्ष्यों को आकार देने और क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- iii. मूल्यांकन: भारत की केंद्रीकृत लोकतांत्रिक सरकार महान के सिद्धांत का समर्थन करते हुए स्थिरता और दीर्घकालिक दृष्टि प्रदान करती है कि प्रभावी नौसैनिक शक्ति के लिए मजबूत और सुसंगत शासन आवश्यक है। नौसेना के आधुनिकीकरण में सरकार का सतत निवेश, साथ ही समुद्री सुरक्षा को दी गई रणनीतिक प्राथमिकता, महान की सैद्धांतिक मान्यता के अनुरूप है। नौसेना आधुनिकीकरण के लिए भारत का बढ़ता रक्षा बजट आवंटन समुद्री शक्ति बनने की उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। सरकार की विवेकपूर्ण नीति सामुद्रिक शक्ति को प्रोत्साहित करती है।¹⁶

6. राष्ट्रीय चरित्र—

- i. महान का सिद्धांत: एक राष्ट्र का राष्ट्रीय चरित्र नौसैनिक शक्ति के लिए महत्वपूर्ण है। समुद्री पहचान की मजबूत भावना और अपने समुद्री मार्गों और समुद्री हितों की रक्षा करने के संकल्प वाला राष्ट्र दीर्घावधि में सफल होगा।
- ii. भारत का राष्ट्रीय चरित्र: भारत का राष्ट्रीय चरित्र, जो समुद्र के साथ इसके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंध में निहित है, जिससे एक मजबूत समुद्री पहचान को बढ़ावा मिलता है। ऐतिहासिक रूप से, भारत एक समुद्री यात्रा वाला देश रहा है, जिसके समुद्री व्यापार मार्ग सदियों से अफ्रीका, दक्षिण पूर्व एशिया और मध्य पूर्व से जुड़े रहे हैं। अग्रणी समुद्री शक्ति बनने का भारत का संकल्प नौसेना क्षमताओं में लगातार निवेश, अपने बेड़े के आधुनिकीकरण और हिंद महासागर क्षेत्र में इसके बढ़ते प्रभाव से स्पष्ट है।
- iii. मूल्यांकन: भारत का राष्ट्रीय चरित्र, जो समुद्री व्यापार और अन्वेषण के लंबे इतिहास से जुड़ा हुआ है, महान के सिद्धांत का समर्थन करता है कि एक राष्ट्र के पास समुद्री शक्ति बनाए रखने के लिए संकल्प और रणनीतिक दृष्टि होनी चाहिए। भारत की नौसैनिक महत्वाकांक्षाएं अपने समुद्री हितों को सुरक्षित करने, शक्ति अर्जित करने और अपने बढ़ते भू-राजनीतिक प्रभाव के अनुरूप क्षेत्रीय गतिशीलता को आकार देने के अपने मजबूत राष्ट्रीय संकल्प को दर्शाती हैं। किसी राष्ट्र के सामाजिक मूल्य, समुद्री परंपराएं और समुद्री यात्रा के प्रति प्रतिबद्धता उसकी नौसैनिक सफलता को प्रभावित करती है। समुद्री व्यापार के साथ भारत का ऐतिहासिक जुड़ाव और रक्षा उत्पादन में स्वदेशीकरण के प्रयास इसके विकसित समुद्री चरित्र को रेखांकित करता है।¹⁷

भारत के लिए संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ— भारत के लिए समुद्री शक्ति के निर्माण और उसे सशक्त बनाने की दिशा में अनेक संभावनाएँ और चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों का सामना करते हुए भारत को अपनी नौसेना को अधिक प्रभावी और प्रतिस्पर्धी बनाना होगा। इन चुनौतियों का समाधान केवल समुद्री शक्ति के विस्तार तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी कई पहलुओं को समाहित करना होगा। भारत के प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं:

1. चीन की बढ़ती उपस्थिति और समुद्री दबदबा— चीन की “मोतियों की माला” (String of Pearls) रणनीति के तहत हिंद महासागर क्षेत्र में उसकी उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। चीन ने इस क्षेत्र के विभिन्न देशों में सैन्य ठिकाने स्थापित किए हैं और उसके व्यापारिक हित भी बढ़े हैं। भारत के लिए यह एक प्रमुख चुनौती है, क्योंकि चीन के बढ़ते प्रभाव का मुकाबला करने के लिए उसे अपनी समुद्री शक्ति को मजबूत करने की आवश्यकता होगी। हिंद महासागर में चीन की सुदृढ़ उपस्थिति के बाद भारत और चीन की नौ सेनाओं के मध्य संघर्ष भी हो सकता है।¹⁸
2. चीन के रणनीतिक निवेश और सैन्य विस्तार— चीन ने पाकिस्तान, श्रीलंका, मालदीव, और बांग्लादेश में अपनी सैन्य और समुद्री प्रतिष्ठान स्थापित किए हैं, जिससे भारत की रणनीतिक स्थिति पर दबाव पड़ता है। यदि चीन ने इन देशों में अपनी नौसैनिक उपस्थिति बढ़ाई, तो भारतीय नौसेना को अपनी रक्षा रणनीतियों में और भी बदलाव करने की आवश्यकता होगी।
3. सामरिक असंतुलन— चीन की बढ़ती नौसैनिक शक्ति और उसकी “हमला और नियंत्रण” (A2/AD) रणनीति भारतीय नौसेना के लिए एक गंभीर चुनौती बन सकती है, विशेषकर दक्षिण चीन सागर और हिंद महासागर क्षेत्र में। चीन की तेजी से बढ़ती शक्ति भारत के लिए एक असंतुलन उत्पन्न करती है, जिसे संतुलित करने के लिए भारत को अपनी नौसैनिक शक्ति और रणनीतिक साझेदारियों को मजबूत करना होगा।
4. समुद्री आतंकवाद और समुद्र में असुरक्षा— समुद्री आतंकवाद और पायरेसी हिंद महासागर क्षेत्र में लगातार बढ़ती हुई समस्याएं हैं, भारत के लिए यह चुनौती इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि समुद्री आतंकवाद और पायरेसी न केवल व्यापारिक मार्गों को प्रभावित करते हैं, बल्कि समुद्री सुरक्षा को भी खतरे में डालते हैं। अरब सागर और सोमालिया के तट पर पायरेसी के बढ़ते मामलों से भारत को कठिनाई हो सकती है।¹⁹
5. समुद्री सुरक्षा नीति में कमजोरी— समुद्री आतंकवाद के खिलाफ कड़ी नीति और रणनीतिक ढांचे की कमी भी एक बड़ी चुनौती हो सकती है। भारत को समुद्री सुरक्षा की रणनीति को विस्तृत और सशक्त करने की आवश्यकता है ताकि वह समुद्री अपराधों से निपट सके।
6. समुद्र में बढ़ते प्रदूषण और पर्यावरणीय संकट— समुद्रों में प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली समस्याएं भारत के लिए एक प्रमुख चुनौती हैं। समुद्रों में प्रदूषण, प्लास्टिक कचरा, और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की हानि से न केवल पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो रहे हैं, बल्कि यह भारत की नौसैनिक गतिविधियों और ब्लू इकोनॉमी के लिए भी खतरे का कारण बन सकता है। प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए भारत को समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा के लिए ठोस कदम उठाने होंगे।

7. जलवायु परिवर्तन और समुद्र स्तर में वृद्धि— जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र स्तर में वृद्धि, समुद्र के तापमान में वृद्धि, और तूफानों की बढ़ती आवृत्ति भारत की समुद्री रणनीतियों को प्रभावित कर सकती है। समुद्र के बढ़ते स्तर से तटीय क्षेत्रों में बाढ़ और विनाश का खतरा भी हो सकता है, जो भारत की समुद्री सुरक्षा और रणनीतिक स्थितियों को चुनौतीपूर्ण बना सकता है।
8. संसाधनों की कमी और वित्तीय सीमाएँ— भारत की नौसेना को दुनिया की सबसे बड़ी और तकनीकी रूप से उन्नत नौसेनाओं में से एक बनाने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश और संसाधनों की आवश्यकता है। हालांकि, वित्तीय संकट और संसाधनों की कमी भी भारत के लिए एक बड़ी चुनौती है।
9. आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक संसाधन— भारत को अपनी नौसेना को आधुनिक बनाने के लिए अत्याधुनिक युद्धपोतों, पनडुब्बियों, मिसाइलों और अन्य उपकरणों की आवश्यकता होगी। इसके लिए भारी वित्तीय निवेश की आवश्यकता है, जो कि एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।
10. सैन्य-औद्योगिक क्षमता— भारत को अपने सैन्य-औद्योगिक आधार को और सशक्त करना होगा ताकि वह अपने बेड़े के लिए आवश्यक उपकरणों और तकनीकी विकास को घरेलू स्तर पर निर्मित कर सके। इसके लिए तकनीकी और औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत सुधारों की आवश्यकता है।
11. क्षेत्रीय और वैश्विक राजनीतिक असंतुलन— भारत को अपनी समुद्री शक्ति के विस्तार के दौरान वैश्विक और क्षेत्रीय राजनीतिक असंतुलनों का भी सामना करना पड़ सकता है। वैश्विक ताकतों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा और क्षेत्रीय संधियों में बदलाव से भारत की नौसेना की रणनीति प्रभावित हो सकती है।
12. वर्तमान और भविष्य की राजनीतिक अस्थिरता— क्षेत्रीय राजनीतिक असंतुलन, विशेषकर पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालदीव और चीन के साथ, भारत के लिए बड़ी चुनौती हो सकती है। इन देशों के साथ तनावपूर्ण संबंधों के कारण भारत को अपने नौसैनिक अभियानों को बहुत सतर्कता से संचालित करना होगा।
13. वैश्विक शक्ति संतुलन में बदलाव— वैश्विक शक्ति संतुलन में बदलाव, जैसे अमेरिका और चीन के बीच प्रतिस्पर्धा, भारत के लिए चुनौती पैदा कर सकते हैं। भारत को अपनी रणनीति और नौसेना की भूमिका को इन बदलावों के अनुरूप अनुकूलित करना होगा।

समाधान और रणनीतिक सुझाव— भारत के लिए नौ शक्ति सिद्धांत के संदर्भ में समुद्री शक्ति को सशक्त बनाने और वैश्विक समुद्री सुरक्षा में अपनी भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न समाधानों और रणनीतिक सुझावों की आवश्यकता है। ये समाधान न केवल भारत के लिए समुद्री शक्ति के विस्तार में मदद करेंगे, बल्कि उसे समुद्री रणनीतिक दबावों और चुनौतियों से निपटने में भी सक्षम बनाएंगे। इस संदर्भ में प्रमुख समाधानों और रणनीतिक सुझावों को निम्नानुसार रेखांकित किया जा सकता है:

1. समुद्री सुरक्षा में सामूहिक साझेदारी और सहयोग— भारत को समुद्री सुरक्षा को प्राथमिकता देने के लिए अंतरराष्ट्रीय साझेदारी और सहयोग को मजबूत करना चाहिए। प्रमुख जलमार्गों की सुरक्षा हेतु सामूहिक सुरक्षा बलों का गठन तथा क्वाड (QUAD), हिंद महासागर रिम संगठन जैसे क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग, एक सशक्त रणनीतिक उपाय हो सकता है। भारत को त्रि-पक्षीय अथवा बहु-पक्षीय गठबंधन बनाना होगा।²⁰ सागर की अवधारणा पर कार्य करने की आवश्यकता है।
2. समुद्री संसाधनों का प्रभावी और स्थायी उपयोग— भारत के पास अपार समुद्री संसाधन हैं, जिनका उपयोग ब्लू इकोनॉमी और स्थिर विकास के लिए किया जा सकता है। समुद्र से मिलने वाली ऊर्जा, खनिज, मछली पालन, और समुद्री जैव विविधता का उपयुक्त उपयोग भारत की समृद्धि को बढ़ा सकता है और समुद्री शक्ति में योगदान कर सकता है। भारत को समुद्र आधारित ऊर्जा जैसे समुद्री लहरों (अम मदमतहल), सौर ऊर्जा (offshore solar power) और पवन ऊर्जा (offshore wind power) के क्षेत्रों में निवेश करना चाहिए। समुद्री संसाधनों के संरक्षण और सतत उपयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए, विशेष रूप से समुद्री जैव विविधता और मछली पालन के क्षेत्र में।
3. आधुनिक समुद्री शक्ति का निर्माण— भारत को अपनी नौसेना को आधुनिक और सक्षम बनाने के लिए लगातार प्रयास जारी रखने होंगे। इसमें नवीनतम तकनीकों का उपयोग, स्वदेशी युद्धपोतों और पनडुब्बियों का निर्माण, और नई सैन्य प्रणालियों को शामिल किया जा सकता है। भारत को अत्याधुनिक युद्धपोतों, विमानवाहक पोतों, और परमाणु पनडुब्बियों के निर्माण में निवेश बढ़ाना चाहिए। भारत को अपनी नौसेना के लिए उच्च तकनीकी प्रणालियाँ और उपकरण विकसित करने के लिए अपने रक्षा उद्योग को मजबूत करना चाहिए। भारतीय नौसेना ने 2012–2027 की अवधि के लिए योजना तैयार की है। सन 2027 तक भारतीय नौ सैनिक बेड़े में तीन विमान वाहक पोत सहित 212 जहाज एवं 458 विमान की परिकल्पना की गई है।²¹
4. समुद्री सुरक्षा में सामरिक दृष्टिकोण को सशक्त करना— महान के सिद्धांत के तहत, समुद्री शक्ति केवल एक नौसेना के निर्माण तक सीमित नहीं होती, बल्कि एक सामरिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जो समुद्र में सुरक्षा, प्रभावी नियंत्रण, और सामरिक मजबूती को सुनिश्चित करे। भारत को हिंद महासागर में अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सामरिक दृष्टिकोण में सुधार करना चाहिए। इसके लिए भारत को अधिक प्रभावी नौसेना केंद्र और सामरिक ठिकाने स्थापित करने की आवश्यकता है। समुद्र में खतरों की पहचान और निगरानी के लिए नई तकनीकों का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. सशक्त कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय सहयोग— भारत को अपनी समुद्री शक्ति को बढ़ाने के लिए अंतरराष्ट्रीय कूटनीति और सहयोग को भी प्राथमिकता देनी चाहिए। समुद्र पर आधारित साझा हित और अंतरराष्ट्रीय नियमों का पालन करना, भारत के समुद्री शक्ति को बढ़ाने में मदद करेगा। भारत को वैश्विक शक्तियों के साथ रणनीतिक साझेदारियाँ बढ़ानी चाहिए, खासकर समुद्री सुरक्षा के मामलों में। समुद्री कूटनीति को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अपने तटीय सहयोगियों और समुद्र के पड़ोसी देशों के साथ सहयोग बढ़ाना चाहिए।

निष्कर्ष

जवाहर लाल नेहरू ने उचित ही कहा है कि— जमीन पर सुरक्षित रहने के लिए हमें समुद्र में भी सबसे बेहतर होना होगा।²² एडमिरल ए.टी. महान का नौ शक्ति सिद्धांत, जो समुद्रों और नौसेना की सामरिक, आर्थिक और राजनीतिक महत्व को रेखांकित करता है, आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से भारत के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। महान के सिद्धांत को आधार बनाकर भारत समुद्र के संसाधनों के उचित उपयोग और समुद्री सुरक्षा को सुदृढ़ कर अपनी सामरिक स्थिति को मजबूत कर सकता है।

भारत की भौगोलिक स्थिति, विशाल तटीय क्षेत्र, और समुद्री संसाधन उसे नौ शक्ति सिद्धांत के विभिन्न तत्वों के अनुरूप महत्वपूर्ण बनाता है। भारत अपनी नौसेना के आधुनिकीकरण, समुद्री सुरक्षा और समुद्र से जुड़े वैश्विक कूटनीतिक रिश्तों को मजबूत करने के लिए कई कदम उठाए हैं। फिर भी, समुद्री सुरक्षा, सामरिक दबाव, और वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में भारत को अपनी रणनीतियों में निरंतर सुधार और नवाचार की आवश्यकता है। भारत को अपनी नौसैनिक शक्ति को बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय साझेदारी और कूटनीतिक सहयोग को प्राथमिकता देते हुए, समुद्री सुरक्षा और संसाधनों के प्रबंधन में समन्वय बढ़ाने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से भारत अपने समुद्री हितों को सुरक्षित रखने, क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभरने, और वैश्विक प्रभाव को बढ़ाने में सक्षम होगा। अंततः, एडमिरल महान के नौ शक्ति सिद्धांत का पालन करके भारत समुद्रों पर अपनी प्रभावी स्थिति स्थापित कर सकता है और भविष्य में वैश्विक समुद्री शक्ति के रूप में अपनी पहचान बना सकता है।

सैन्य विज्ञान विभाग

शासकीय विज्ञान महाविद्यालय (स्वशासी) जबलपुर (म.प्र.)

lakhankushre@gmail.com

सन्दर्भ :

1. Singh, S. (2004). The Indian Ocean and India's Maritime Security in the early 21st Century- Challenges and Options. In R. Prasad, India's Security in the 21st Century- Challenges & Responses. New Delhi: Dominant Publishers and Distributors. P-279
2. Ibid, P-279
3. Asthana, N. C. (2016). Strategic Thought and The Art of War. Jaipur: Pointer Publication. P-56
4. Compose, L. G. (2018). A National Security Strategy for India- The Way Forward. New Delhi: KW Publisher. P-136
5. Marwah, O. (1987). India's Strategic Perspectives on the Indian Ocean . In W. L. Dowdy, The Indian Ocean- Perspectives on a Strategic Areana. New Delhi : Himalayan Books. P-302
6. Cordner, L. (2020). The Strategic Significance of the Indian Ocean. Journal of the Indian Ocean Region, 16(2), 123-140.
7. India, G. o. (2015). Maritime Doctrine of India. New Delhi: Ministry of Defence.
8. India, G. o. (2021). Maritime Doctrine of India. New Delhi: Ministry of External Affairs.
9. Pant, H. V. (2012). Bhartiya Suraksha evam Videsh Niti. New Delhi: Prabhat Prakashan. P-236.
10. Mahan, A. T. (1890). The Influence of Sea Power Upon History- 1660-1783 . Boston: Little Brown and Company Boston.
11. Adhikari, S. (2017). Adhunik Strategic Chintan. Allahabad: S. P. J. Publication. P-67.

12. Corder, L. (2020). The Strategic Significance of the Indian Ocean. *Journal of the Indian Ocean Region*, 16(2), 123-140.
13. Holmes, J., & Yoshihara, T. (2018). *Red Star over the Pacific: China's Rise and the Challenges to U.S. Maritime Strategy*. New York: Naval Institute Press .
14. Scott, D. (2019). India's Role in the Indo-Pacific: The Strategic and Maritime Dimensions. *Asian Security*, 15(3), 290-310.
15. India, G. o. (2015). *Ensuring Secure Seas: Indian Maritime Security Strategy*. New Delhi: Ministry of Defence.
16. Sharma, Y. K., & Nigam, R. (1983). *Sainya Vicharak*. Kanpur: Alka Prakashan. P-174
17. Chand, V. (2020). Maritime Heritage and The Indian Navy. *Journal of Defence Studies*, 14(2), 87-106.
18. Bajpai, K. (2021). *India Versus China*. New Delhi: Juggernaut Publication. P-200
19. Compose, L. G. (2018). *A National Security Strategy for India- The Way Forward*. New Delhi: KW Publisher. P-137
20. Bambawale, G. (2021). *Rising to the China Challenges*. New Delhi: Rupa Publication. P-134
21. Gupta, A. (2018). *How India Manages its National Security*. New Delhi: Penguin Random House. P-101
22. Pillai, D. A., & Tewari, D. (2006). *Ocean Warfare- The Technology Waves*. New Delhi: Manas Publications. P-42

भारतीय पुनर्जागरण में सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका

आभा सिंह

सारांश :

भारतवर्ष में पुनर्जागरण का आगाज अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में हुआ। यहां पुनर्जागरण का अर्थ एक परंपरा को त्यागकर दूसरी परंपरा की ओर लौटना नहीं था, बल्कि एक सतत परंपरा के पूर्ण अर्थ और महत्व की खोज करना था। इसलिए कोई भी आधुनिक भारतीय विचारक, आधुनिकता की खातिर, भारतीय संस्कृति और परंपरा के मुख्य स्रोतों, मानवता और आध्यात्म से अलग नहीं हुआ। वसुधैव कुटुम्बकम् पर आधारित भारतीय परंपरा आदि काल से ही मानवतावादी रही है। इसके वाह्य स्वरूप में कालक्रम में भले ही परिवर्तन होते रहे हैं लेकिन इसके मौलिक मानवतावादी स्वरूप में आज तक कोई परिवर्तन नहीं आया है। यही इस परंपरा की सततता का कारण है। सदियों की गुलामी के चलते भारतीय जनमानस ने अपनी सबसे बड़ी मजबूती 'आध्यात्मिकता' को नजरअंदाज कर दिया। वर्तमान युग की असली त्रासदी यह है कि वह यह भूल गया है कि मानवता की समस्या मूलतः आध्यात्मिकता की समस्या ही है।

वास्तव में आधुनिक भारतीय मानवतावाद आध्यात्म आधारित प्राचीन भारतीय मूल्यों और आधुनिक पश्चिमी विज्ञान का संश्लेषण है। आलेख का मूल विमर्श इस बात पर केंद्रित है कि आदि काल से लेकर आजतक हमारी परम्परा की सततता का आधार है कुछ ऐसे मूल्य जो सर्वकालिक और सर्वजनीन हैं।

बीज शब्द : पुनर्जागरण, आध्यात्म, मानवतावाद, मूल्य

प्रस्तावना

“पुनर्जागरण” यूरोपीय सभ्यता के उस काल को संदर्भित करता है जिसे शास्त्रीय शिक्षा और ज्ञान के पुनरुद्धार द्वारा चिह्नित किया गया था। यूरोप में पुनर्जागरण मध्ययुग और आधुनिक काल के बीच संक्रमणकालीन आंदोलन था, जो 14वीं शताब्दी से शुरू होकर 17वीं शताब्दी तक चला तथा जो कला और साहित्य के विकास में शास्त्रीय प्रभाव के मानवतावादी पुनरुद्धार और आधुनिक विज्ञान के प्रादुर्भाव द्वारा चिह्नित किया गया। पुनर्जागरण विचारकों ने दुनिया में महत्वपूर्ण धर्मों का सबसे आदर्श संश्लेषण कर एक प्रकार की आध्यात्मिक सक्रियता, एक सर्वेश्वरवादी मानवतावाद और एक अंतरराष्ट्रवाद पर जोर दिया जिसे मानवतावाद नामक बौद्धिक आंदोलन द्वारा व्यक्त किया गया था।

भारतवर्ष में अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में पुनर्जागरण तब आरम्भ हुआ जब सदियों की गुलामी और पश्चिमी शासन, जो भारतीय संस्कृति और रीति-रिवाजों का उपहास निरंतर करते रहते थे, ने

भारतीयों की स्थिति को बहुत दयनीय कर दिया था। यह वास्तव में अंधकार का काल था जिसमें भारतीय विरासत और संस्कृति खतरे में पड़ गयी थी। यह माना जाता है कि पश्चिमी विचारों और मूल्यों के प्रसार के प्रति आम जनता की सहज अस्वीकार्यता और संभावित विनाश से मुक्ति के लिए पशुबलि और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों का सहारा लिया जा रहा था। इस क्रम में उन्हें पुजारियों के जबरदस्त शोषण का शिकार होना पड़ा जिसका लोगों के दिमाग पर बुरा असर पड़ा। सामाजिक परिस्थितियाँ भी उतनी ही निराशाजनक थीं। सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बाल विवाह, अस्पृश्यता, सती प्रथा, महिलाओं का सामान्य पतन और शोषण चरम पर था। सबसे अधिक कष्टदायक था लड़की का जन्म, उसकी शादी बोज़ थी और उसका विधवा होना अशुभ था। एक और कमजोर करने वाला कारक था लोगों का अंतहीन जातियों और उप-जातियों में विभाजन जिसने संपूर्ण भारतीय समाज को कमजोर कर दिया था।

इस दयनीय स्थिति ने पारंपरिक रूढ़िवादी समाज से उद्भूत अंग्रेजी शिक्षित कुछ युवकों को चिंतित कर डाला। जो युवा शिक्षा की नई प्रणाली के संपर्क में आ चुके थे वह यूरोप की उदार और तर्कसंगत सोच से भी परिचित हो गए थे। किन्तु इसके साथ ही उनमें अपनी उदात्त आध्यात्मिक विरासत, जो सदियों के विदेशी शासन के कारण सुप्त पड़ गयी थी, के प्रति जागृति भी उत्पन्न हुई। वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ना चाहते थे, जो उन्हें ढाढ़स बँधाये और अपनी योग्यता में उनके विश्वास को दृढ़ करे। कुछ ऐसा आश्वासन दे जो विदेशी और शासन के परिणामस्वरूप उत्पन्न निराशा और अपमान की भावना को शमित करे और उन्हें अपने समृद्ध अतीत को पुनर्स्थापित करने के प्रति उत्साहित करे। अतः उन्होंने समाज, सुधार आंदोलनों का सहारा लेते हुए आधुनिकीकरण के लिए एक सामाजिक माहौल बनाने की दिशा में प्रयास आरम्भ किया। इससे भारतवर्ष में विज्ञान, साहित्य, दर्शन, राजनीतिक और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में एक सामाजिक-बौद्धिक क्रांति का श्रीगणेश हुआ जिसे भारतीय पुनर्जागरण के रूप में जाना जाता है।

भारतवासियों की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्होंने सामाजिक परिवर्तन की वकालत की। उनकी पूरी गतिविधि आंशिक रूप से प्राचीन भारतीय मान्यताओं की पुनरावृत्ति और आंशिक रूप से पुनर्कथन की ओर निर्देशित थी। लेकिन जब उन्होंने यह सब करने का साहस किया, तो वे अपना ध्यान निम्न वर्गों के उत्थान, महिलाओं की स्थिति में सुधार और दलित जातियों के उत्थान पर भी केंद्रित किया, जो अक्सर आसानी से अंधविश्वास का शिकार हो जाते थे।

अतः भारत में पुनर्जागरण का अर्थ एक परंपरा को त्यागकर दूसरी परंपरा की ओर लौटना नहीं था, बल्कि एक सतत परंपरा के पूर्ण अर्थ और महत्व की खोज करना था। इसलिए कोई भी आधुनिक भारतीय विचारक, आधुनिकता की खातिर, भारतीय संस्कृति और परंपरा के मुख्य स्रोतों से अलग नहीं हुआ। वास्तव में आधुनिक भारतीय मानवतावाद प्राचीन भारतीय मूल्यों और आधुनिक पश्चिमी विज्ञान का संश्लेषण है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि यह संश्लेषण कैसे संभव हुआ? वास्तव में प्राचीन भारतीय चिंतन में मानवतावादी विचारों और मनुष्य की सर्वोच्चता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मानव जाति

का कल्याण प्राचीन भारतीय साहित्य का केंद्रीय विषय था। भारतीय मानवतावाद का सार है 'अयं आत्मा ब्रह्म' और इसके परिणामस्वरूप प्रार्थना है, 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु'। चारों वेद मनुष्य के दैनिक जीवन की समस्याओं और रीति-रिवाजों और तदनुरूप दैनंदिन क्रियाकलापों से संबंधित थे। उपनिषदों का केंद्रीय उद्देश्य, मानव जीवन को मात्र जैविक अस्तित्व के स्तर से आत्म-चेतन आध्यात्मिक अस्तित्व की स्थिति तक ऊपर उठाना था। भगवद्गीता ने दिव्य आत्मा या ब्रह्म के साथ अनुभवजन्य आत्म के संलयन की अपनी अवधारणा के माध्यम से भारतीय मानवतावाद का मानदंड स्थापित किया (Radhakrishnan 1977)। गीता का मानवतावाद संपूर्ण मानव जाति को गले लगाता है, जो इसे सार्वभौमिक मानवतावाद का आधार बनाता है।

पुनः शंकराचार्य ने गीता पर अपने भाष्य की प्रस्तावना में कहा है कि वेदों में मुख्यतः दो धर्म निहित हैं दृ (1) प्रवृत्ति-लक्षण अर्थात् संसार की ओर झुकाव और (2) निवृत्ति-लक्षण अर्थात् संसार से विमुखता और परम सत्य की ओर झुकाव। पहला मनुष्य के अभ्युदय के लिए है और दूसरा निःश्रेयस के लिए। अभ्युदय का अर्थ भौतिक समृद्धि नहीं है। इसका सही अर्थ अरस्तू के 'यूदैमेनिया' (eudaimonia) या कल्याण के माध्यम से व्यक्त किया गया है। दूसरी ओर निःश्रेयस का अर्थ है सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करना। इस संसार में विभिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों के लिए ये दोनों प्रकार के धर्म आवश्यक हैं। इस प्रकार इसे, अर्थात् धर्म, अर्थ और काम को, व्यवस्थित मानव समाज के सार्वभौमिक आवरण और ताने-बाने के रूप में माना जाता है। लेकिन मोक्ष को एक पारलौकिक स्थिति माना जाता है जो उन कुछ लोगों के लिए है जो जीवन के आध्यात्मिक आयाम में गहराई तक जाने का साहस करते हैं। दूसरों के लिए, पारलौकिक स्वतंत्रता का यह प्रयास सामाजिक संदर्भ की सीमाओं के भीतर आता है, क्योंकि धर्म जीवन के सामाजिक और पारलौकिक लक्ष्यों का संगम है। हमारे प्राचीन विचारकों ने कभी भी धर्म शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ अर्थात् रिलिजन के रूप में नहीं किया।

शंकराचार्य और रामानुज के बाद मध्ययुग में रामानंद और कबीर, नानक और चौतन्य, दादू और रामकृष्ण आदि भी उसी अर्थ में दार्शनिक हैं। आधुनिक युग के राममोहन रॉय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, तथा गाँधी, टैगोर, विवेकानंद, मौलाना आजाद, सर सैयद, अरविन्द, इकबाल, राधाकृष्णन, एम् एन रॉय, महर्षि रमन, कृष्णमूर्ति आदि ऐसे नाम हैं जिन्हें यूरोपीय परंपरा में पेशेवर दार्शनिक हम भले ही नहीं कहें पर भारतीय जीवन को उन्होंने एक समग्र दृष्टि दी है और संसार की व्यापक व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। इस अर्थ में वह किसी भी मानवतावादी दार्शनिक से कमतर दार्शनिक नहीं माने जा सकते हैं।

इनमें से अधिकांश चिंतकों ने वैसी भारतीय परम्परा या दार्शनिक या धार्मिक विचारों को ग्राह्य माना जो बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरा उतरे। साथ ही उन्होंने उन पाश्चात्य विचारों को भी अपनाया जो श्रेष्ठतम भारतीय परम्पराओं के विरुद्ध नहीं थे। उन्होंने पूरब और पश्चिम के विचारों का समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस दिशा में राजा राममोहन रॉय अग्रणी रहे हैं। केशवचंद्र सेन, विवेकानंद, तिलक, टैगोर, कुमारस्वामी, इत्यादि विचारकों पर विज्ञान का प्रभाव रहा है। इसलिए इनका आधुनिक भारतीय चिंतन बौद्धिक है तथा तर्क पर आधारित है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में मौजूद मानवतावादी तत्वों को आधुनिक काल में एक निश्चित जागृति मिली और एक दर्शन के रूप में भारत में मानवतावाद के विचार का निश्चित रूप से उभार हुआ। यह मनुष्य की आवश्यक गरिमा पर आधारित दर्शन है जो उसके कल्याण, उसके सर्वांगीण विकास और उसके लिए अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण के लिए गहरी चिंता व्यक्त करने वाली एक प्रणाली के रूप में विकसित हुई। सुखी-संपन्न और सर्वकल्याणकारी सामाजिक जीवन की आकांक्षा आधुनिक भारतीय मानवतावाद के विकास में योगदान देने वाला एक महत्वपूर्ण कारक था।

आदि काल से भारत में दर्शन विकसित हुआ जो चिंतन और कर्म दोनों से जुड़ा रहा। आज के दार्शनिक भी वह इस बात को स्वीकारते हैं कि दार्शनिक चिंतन मात्र बौद्धिक अभ्यास नहीं, जीवन पद्धति को संचालित करने का साधन है। दर्शन को उन्होंने जीवन से जोड़ा है जो भारतीय परंपरा रही है। पुनर्जागरण काल को दार्शनिक चिंतन का पुनरुत्थान अथवा जागृति का युग माना जा सकता है। कुछ आलोचकों ने आधुनिक भारतीय चिंतन पर आक्षेप करते हुए लिखा है कि इसमें सृजनात्मकता का अभाव है। पर ऐसी आलोचना तर्कसंगत नहीं है। विचार शून्य से उत्पन्न नहीं होते और उनके तारतम्य में एक कड़ी होती है। इस दृष्टि से यदि नए विचारों को मात्र आकार-परिवर्तन विचारों तो यह एक भूल होगी। इसी कारण वेद और उपनिषद्, शंकर और रामानुज से लेकर आधुनिक काल तक के भारतीय विचारों में एक तारतम्य, एक कड़ी दीखती है। उनमें निरंतरता है इसलिए आज का भारतीय विचार मात्र पुनरावृत्ति नहीं है। आधुनिक भारतीय चिंतकों ने प्राचीन विचारों और मूल्यों का अर्थ निरूपण तो किया ही साथ ही साथ वर्तमान में उनकी उपादेयता को भी स्थापित किया। अब हम इस बात को स्थापित करने के लिए कुछ तर्कों का सहारा लेंगे।

पुनर्जागरण काल के दार्शनिक चिंतन में भविष्य की झांकी तो मिलती ही है पर उनके गर्भ में अतीत अवश्य है। उन्होंने प्रधानता दी है मानव अस्तित्व को। व्यक्ति को वास्तविक विचारकर, उसके सुख-दुख, उसकी आकांक्षाओं को मानकर वे उसकी मुक्ति का मार्ग ढूंढते हैं। अतः उनके विचारों का केंद्र बिंदु परलोक से इहलोक, ईश्वर से व्यक्ति की ओर खिसकता नजर आता है। इस काल के दार्शनिक विचारों का सार दो धाराओं में विभाजित कर समझा जा सकता है – अध्यात्मवादी अर्थात् भक्ति-कर्म धारा और ज्ञान कर्मवादी धारा – हालांकि इन दोनों धाराओं का पृथक्त्व में दृष्टिगोचर होना कठिन है।

भक्ति-कर्म धारा:

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि परंपरा का पालन करते हुए आधुनिक भारतीय चिंतकों के विचार आध्यात्मिक हैं। पर उनकी आध्यात्मिकता एकांगी नहीं, वरन मानवतावादी है। उन्होंने तत्त्व, ईश्वर, आत्मा आदि विषयों को मानव अस्तित्व से असम्बद्ध कर नहीं विचारा है। हालांकि आधुनिक भारतीय चिंतकों के चिंतन की विधि भी प्राचीन भारतीय विचारकों से भिन्न रही है। अधिकांश प्राचीन विचारकों के अनुसार गूढ़तम समस्याओं का समाधान तथा चित्रण बौद्धिक स्तर से उठकर ही संभव है, पर आधुनिक भारतीय विचारकों ने पाश्चात्य विचारकों की भांति मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को सीमित नहीं माना है। बौद्धिक प्रयासों से ही व्यक्ति में एक आंतरिक सूझ उत्पन्न होती है जिसे वे अंतर्दृष्टि

अथवा आध्यात्मिकता कहते हैं। इसे किसी साधारण या असाधारण वैयक्तिक शक्ति के रूप में नहीं विचारा गया है। यह सभी को उपलब्ध हो सकता है। यहीं से स्वतंत्र सोच और रचनात्मकता के युग का भी अभ्युदय हुआ।

कुछ लोगों का मानना था कि भारतीय पुनर्जागरण की प्रक्रिया ईश्वर के प्रति असीम भक्ति पर आधारित तथा निरंतर पोषित होनी चाहिए। शायद इस तथ्य का सबसे सशक्त अहसास कि पीड़ित आत्माओं की भलाई के लिए कार्य करने के लिए ईश्वर की अच्छाई और दयालुता पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए, यह विचार एक साधारण बालक गंगाधर के मन में आया, जो श्री रामकृष्ण के नाम से भारतीय अध्यात्मवाद में अभूतपूर्व ऊंचाई तक पहुंचा। रामकृष्ण जिस सामाजिक व्यवस्था में काम करते थे, उसमें उनके भक्ति मार्ग का विस्तार था। वे अक्सर अपने साथियों की जीर्ण-शीर्ण अवस्था को देखकर भावुक हो जाते थे। वे हमेशा उनकी मदद करने और उनके दुख को कम करने के लिए तत्पर रहते थे। हालाँकि यह सच है कि उन्होंने सभी के दुख को अस्तित्व की विशेषता के रूप में स्वीकार करने का निर्देश दिया, न कि उसे दूर करने के लिए कुछ करने की और इस तरह उन्होंने किसी भी तरह की कार्रवाई करने की इच्छा नहीं दिखाई, लेकिन उनका मानवतावादी दृष्टिकोण इतना व्यापक था कि वे सभी के लिए पूर्ण उपकार के आदर्श को पूरा कर सकते थे।

उनके शिष्य विवेकानंद को कुछ समय के लिए बुद्धि और भावना, ज्ञान और भक्ति के बीच संघर्ष का सामना करना पड़ा, लेकिन वह जल्द ही पारलौकिक अनुभव और समाधि के परमानंद की ओर आकर्षित हो गए। तब से उन्होंने रामकृष्ण के नक्शेकदम पर चलना शुरू कर दिया। लोगों को अपने वास्तविक जीवन में हिंदू धर्म की उदात्तता से अवगत कराने के उद्देश्य से विवेकानंद ने भारत में व्यापक रूप से दौरा किया। उनके अवलोकन के बारे में दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने देखा कि भारत का संकट वैदिक धर्म के पतन और भारतीय मानवतावाद की भावना के प्रति भारतीयों की उदासीनता के कारण था। वह प्राचीन वैदिक मार्ग की पूर्ण सत्यता के बारे में इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने अपने गुरु से भी अधिक वैदिक-उपनिषदिक विश्वदृष्टि को अपनाया तथा पश्चिम की सभी सांस्कृतिक धाराओं के विरुद्ध इसे पुनः स्थापित करने का मन बना लिया। हिन्दू धर्म के गौरवशाली विचारों और भारतीयों द्वारा अपने वास्तविक जीवन में झेले जा रहे राष्ट्रीय अपमान के बीच की असंगति उन्हें हर समय परेशान करती थी। निश्चित रूप से, यह इस असंगति की स्वीकृति ही थी जिसने विवेकानंद को 1897 में रामकृष्ण मिशन के रूप में विख्यात एक सामाजिक सेवा संघ की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया। यह निस्वार्थ भिक्षुओं का एक संघ था, जो विभिन्न प्रकार के संगठित सामाजिक कार्यों के माध्यम से वेदांत-विचारों के प्रचार-प्रसार से जुड़े थे (details in Muller] 1925] pp- 12-26)।

रामकृष्ण और विवेकानंद के आध्यात्मिक मानवतावाद के प्रभाव में आने वाले सैकड़ों अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों में, अरबिंदो घोष ने एक योगी, एक दार्शनिक और एक देशभक्त के रूप में दर्शन की प्रतिष्ठा को एक अविश्वसनीय ऊंचाई तक पहुँचाया। अरबिंदो ने अपने सिद्धांत में ईश्वर की स्वयं प्रकट होने वाली प्रकृति को प्रस्तावित किया है। उनका मानना है कि सब कुछ ईश्वर की इच्छा की अभिव्यक्ति

हैं, ईश्वर के कार्य की प्राप्ति है, उनका अवतार है (Aurobindo] 1948] pp- 7-7-9)। वह यहां तक कहते हैं कि अपने देश के प्रति प्रेम 'ईश्वर से आया एक धर्म' है। इसलिए, हिंदू धर्म है जो सनातन धर्म या शाश्वत धर्म है जिसे अरबिंदो के अनुसार न केवल भारत को स्वतंत्रता दिलाने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए बल्कि इसे पूरी दुनिया में फैलाने की भी जिम्मेदारी लेनी चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि हिंदू धर्म के सिद्धांत ही पृथ्वी पर सबसे प्रामाणिक मानवतावाद है। भारत और ब्रह्मांड की नियति को देखने के लिए, ईश्वर के मन और सृष्टि के उनके 'खेल' को समझने के लिए, हर किसी को हिंदू पंथ के तर्क को समझना चाहिए।

श्री अरबिंदो के साथ भारतीय दर्शन में एक नई वेदांत प्रवृत्ति शुरू हुई जिसने तकनीकी रूप से प्रभुत्व वाले पश्चिम में भौतिकवादी प्रवृत्तियों का विरोध करने के लिए एक आध्यात्मिक प्रणाली बनाने का प्रयास किया, जो रामानुज के बाद भारतीय चिंतन में दिखाई देने वाली किसी भी दार्शनिक प्रवृत्ति से कहीं अधिक जीवंत और व्यापक थी। हालांकि उन्होंने अपने मूल सिद्धांतों को उपनिषदों और भगवद्गीता पर आधारित किया, पर उन्होंने उन्हें इस तरह से विकसित किया कि वे बौद्धिक रूप ले सकें और पृथ्वी पर मानव जाति के भाईचारे को एक आदर्श के रूप में स्थापित कर सकें।

निस्संदेह आधुनिक भारत के तेजी से बदलते परिदृश्य में अरबिंदो भक्ति कर्म के सम्मिश्रण के अंतिम महत्वपूर्ण प्रतिपादक हैं। वस्तुतः दार्शनिकता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की एक प्रणाली के रूप में, जो वैदिक-उपनिषदिक द्रष्टाओं के लोकाचार को लगातार बनाए रखता है, अरबिंदो के भक्ति कर्म आंदोलन में वैविध्य स्वाभाविक ही है, लेकिन उसमें कहीं भी संकीर्णता नहीं है। प्राचीन भारतीय विचार के आधुनिकीकरण में अरबिंदो का सबसे मौलिक योगदान अतिमानस (Supermind) के विचार पर केंद्रित है। वह अतिमानस को अनंत चेतना के रूप में मानते हैं, जो स्वयं को शुद्ध आनंद या आनंद से लेकर सभी प्रकार के जैविक और अजैविक अस्तित्वों में अवरोही क्रम में प्रकट करती है। सुपर माइंड एक व्यक्तिगत मानसिक तत्व है जो स्वयं परिवर्तनकारी है। शरीर और चेतना, ज्ञान, भक्ति और क्रिया, पदार्थ और आत्मा के बीच के भेद, सभी इसमें विलीन हो जाते हैं। "सुपर माइंड में", अरबिंदो लिखते हैं, "व्यक्तित्व और अवैयक्तिकता विपरीत सिद्धांत नहीं हैं, वे एक ही वास्तविकता के अविभाज्य पहलू हैं" (Aurobindo] 2005] p- 881)। इसका कोई भी हिस्सा — चाहे वह एक व्यक्ति के रूप में कितना भी असंगत या अपूर्ण क्यों न लगे — वास्तव में सुपर माइंड के साथ असामंजस्य में नहीं हो सकता है। और एक बार, योग की "कृत्रिम विधि" के माध्यम से, एक व्यक्ति अपने अस्तित्व की आंतरिक धारा को समझ लेता है, तो उसे एहसास होगा कि वह केवल "सुपर माइंड की एक धारा" है (Aurobindo] 2005] p- 889)।

इसलिए, जब तक भक्ति और कर्म का सम्मिश्रण मनुष्य को सभी के कल्याण और एकता की दिशा में गतिविधि के लिए एक अविभाज्य आधार प्रदान करने के लिए व्यवहार में नहीं लाया जाता है, जब तक इस अभ्यास को मानव के वास्तविक जीवन के अपरिहार्य हिस्से के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है, वह पृष्ठभूमि में चला जाएगा और पलायनवाद के एक स्व-निहित उपकरण के रूप में भुला दिया जाएगा।

अब हम आधुनिक युग की व्यावहारिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत में सुधार की दूसरी दिशा की धारा पर केंद्रित करेंगे जिसे ज्ञान कर्म आंदोलन कहा जा सकता है।

ज्ञान कर्म धारा:

जब भारत अपनी पारलौकिक और आध्यात्मिक सोच को मुखर कर रहा था और पश्चिमीकरण से स्वयं की रक्षा के लिए उद्यत था, तब अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच एक और सकारात्मक दृष्टिकोण पनप रहा था। यह दृष्टिकोण न केवल कार्योंन्मुख और व्यावहारिक था, बल्कि एक राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित भी था। स्पष्ट है कि यह दृष्टिकोण भी भारतीयों की स्वतंत्रता में हनन के अवसाद से ही उभरा था। उन्होंने यह महसूस किया कि भाग्यवाद और आत्मवाद पर अत्यधिक भरोसे ने भारतीयों को विज्ञान और उद्योग की दुनिया से बहुत पीछे रख छोड़ा है। हालाँकि उनका यह दृष्टिकोण काफी हद तक उनके पश्चिमी विचारधारा के करीब आने के कारण उभरा था। भारतीयों के समग्र उत्थान की ओर निर्देशित इस विचारधारा को कुछ ऐसे लोगों ने बढ़ावा दिया था जो देशभक्ति के प्रबल समर्थक तो थे ही साथ ही उन्होंने ज्ञान और क्रियाशीलता, अर्थात् ज्ञान और कर्म को जोड़ा, और भौतिक संसाधनों की उपलब्धि को पूर्ण स्वतंत्रता अर्थात् मोक्ष के लिए आवश्यक माना।

उन्होंने इस बात पर भी गौर किया कि परंपरागत रूप से भारतीय नैतिकता में प्रमुख स्थान रखने वाला कर्म का सिद्धांत एक नकारात्मक सन्देश भी देता रहा है। प्राचीन भारतीय दार्शनिक न केवल मनुष्य की संसार में स्थिति को उसके पिछले जन्मों द्वारा निर्धारित अवस्था के रूप में देखते थे, बल्कि वे यह भी मानते थे कि यदि किसी को पूर्णता प्राप्त करनी है तो उसका कार्य इच्छारहित अर्थात् अप्रतिबद्ध इच्छा की अभिव्यक्ति जैसा होना चाहिए। 19वीं और 20वीं सदी में बौद्धिक जागृति के उदय के साथ इन भारतीयों ने अपनी गतिविधियों को इस तरह से संगठित करने की आवश्यकता महसूस की कि यह एक अच्छी तरह से परिभाषित सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त कर सके, जो पूर्व के विचारकों से उनके दृष्टिकोण में अभूतपूर्व परिवर्तन को दर्शाता है। ज्ञान-कर्म आन्दोलन का तात्कालिक लक्ष्य भारतीयों के सांसारिक जीवन को सुधारना था (Sinari] 1984] p- 245)। वास्तव में, इस तरह का परिवर्तन कुछ सबसे संवेदनशील भारतीय विचारकों की सूझबूझ से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, कर्म और स्वतंत्रता के पश्चिमी दृष्टिकोण से परिचित थे और परिणामस्वरूप पूरे देश की दुर्दशा से व्यथित थे।

वह जिस मानव कल्याण की कल्पना करते हैं उसका सार है — भौतिक अभावों से मुक्ति, मानस का नैतिक उत्थान, ज्ञान और शांति की प्राप्ति, मनुष्य और मनुष्य के बीच मैत्री का संचार और प्रत्येक व्यक्ति को आत्मोपलब्धि का पूर्ण अनुभव हो। जिस प्रकार चरित्र में चमत्कारिक परिवर्तन एक अकेले व्यक्ति के जीवन में एक नई सक्रियता का संचार करता है और जिस तरह एक सुधारित व्यक्तित्व में अतीत एक नए तरीके से काम कर सकता है, उस व्यक्तित्व की वर्तमान स्थिति में समाहित हो सकता है और उसका आध्यात्मिक सार बना रह सकता है, या किसी भी तरह से उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाए बिना व्यक्तित्व के वर्तमान दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकता है, उसी तरह एक

राष्ट्र में भी उसका अतीत एक अर्धचेतन अंतर्धारा के रूप में कार्य कर सकता है जो उसके चयनों, अस्वीकृतियों, निर्णयों, योजनाओं, नीतियों और उसके सम्पूर्ण जीवन के आनंद को एक विशेष दिशा में उन्मुख करता है। हालांकि, उनके कार्यों और संस्थाओं से उत्पन्न होने वाले अंतिम शुभ के बारे में किसी भी संदेह के तत्व के बिना, ज्ञान कर्म मार्ग के अग्रदूतों ने समाज निर्माण कार्यक्रम में अपना जबरदस्त योगदान दिया (Sinari] p- 247] note 11)। इस कार्यक्रम में सबसे आगे रहने के लिए आज भी जिन लोगों को याद किया जाता है वे हैं: महादेव गोविंद रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ, महात्मा गांधी, एम.एन. रॉय, विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण और सर्वोदय आंदोलन के संत नेतागण। इन सभी हस्तियों में एक ही विशेषता समान रूप से मौजूद पाई जाती है और वह है — भारत को मनोवैज्ञानिक और भौतिक रूप से मजबूत करने के लिए उनका दृढ़ संकल्प — भारतीयों से एक सजातीय इकाई के रूप में सोचने और कार्य करने की उनकी निरंतर अपील।

इन चिंतकों का दृष्टिकोण मानववादी है। उनकी चिंता मात्र व्यक्ति की मुक्ति नहीं वरन मानव कल्याण है। वे ऐसी स्थितियों की कल्पना करते हैं जिसमें व्यक्ति की सभी नैसर्गिक शक्तियों को पूर्णतया विकसित होने का अवसर मिले। वह इस बात पर एकमत हैं कि मनुष्य में स्वयं ऐसा कर लेने की क्षमता है। इसके लिए उसे किसी दैवी शक्ति पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार आधुनिक भारतीय चिंतक दर्शन को मानव जीवन के साथ जोड़ने का प्रयत्न करते हैं।

एकात्म मानववाद

दर्शन की उपर्युक्त विचारधाराओं का उत्कर्ष दीन दयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद में देखा जा सकता है। वर्तमान युग की असली त्रासदी यह है कि वह यह भूल गया है कि मानवता की समस्या मूलतः आध्यात्मिकता की उपेक्षा की समस्या है। एक स्वतंत्र और शांतिपूर्ण समाज तभी उभरेगा जब आध्यात्मिकता मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सिंचित करेगी।

उपाध्याय भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच एक जैविक एकता और अखंडता की कल्पना करते हैं और उन्हें एक इकाई के रूप में देखते हैं। दीन दयाल उपाध्याय के लिए, ऐसे समग्र आदर्श केवल उसी समाज में प्राप्त किए जा सकते हैं जिसके सदस्य एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हों। ऐसा माना जा सकता है कि इस तरह का संबंध उन्हीं व्यक्तियों के बीच विकसित होगा जो अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समुचित विकास के माध्यम से अभिन्न रूप से विकसित व्यक्तित्व रखते हैं। उपाध्याय कहते हैं, “शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा, — ये चार एक व्यक्ति का निर्माण करते हैं” (Upadhyaya] 2017] p- 11)। ये चार तत्व चार सार्वभौमिक उद्देश्यों के अनुरूप हैं जो मानव जीवन का सार तत्व हैं — धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (धन), काम (इच्छा) और मोक्ष (पूर्ण मुक्ति और मोक्ष)। केवल अपने व्यक्तित्व के सभी आयामों के उचित एकीकरण और पोषण के माध्यम से ही मनुष्य एक पूर्ण और संतुलित जीवन प्राप्त कर सकेगा जो उसे उसके अंतिम लक्ष्य की ओर ले जाएगा।

मोक्ष के विरुद्ध आलोचकों द्वारा अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि यह एक स्वार्थी व्यक्तिगत उपलब्धि है जिसमें दूसरों की भलाई के लिए कोई सम्मान नहीं है। किंतु यह आक्षेप पूरी तरह से

भारतीय परंपरा में इसके वास्तविक अर्थ की अज्ञानता पर आधारित है। वास्तव में मोक्ष सांसारिक मूल्यों का अवमूल्यन नहीं करता बल्कि उन्हें आध्यात्मिक जीवन के उचित साधनों में परिवर्तित करता है। यद्यपि मोक्ष का अर्थ सभी सीमित हितों और लक्ष्यों का संपूर्ण त्याग है और ऐसा आदर्श अधिकांश लोगों के लिए असंभव हो सकता है, फिर भी वैराग्य (अनासक्त भाव) और सेवा के अर्थ में त्याग सभी के लिए अनुशासित है। यह कहना सरासर गलतफहमी है कि त्याग में संसार का त्याग शामिल है, संसार का आनंद लेना नहीं। अच्छा जीवन न केवल यहाँ और अभी बल्कि उसके बाद भी सुखी जीवन है। सच्चा त्याग एक स्वाभाविक विकास और अच्छे जीवन की पूर्ति है। लेकिन सभी कर्तव्यों को त्यागने के अर्थ में त्याग की कभी वकालत नहीं की जाती है। के.जे.शास ने ठीक ही कहा है, 'धर्म और मोक्ष एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि वे निकटता से और आवश्यक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। कोई कह सकता है कि धर्म, आचार संहिता, अर्थ और काम की खोज में दूसरों के साथ हमारे संबंधों को अनुशासित करती है, और साथ ही यह हमारी भावनाओं को भी अनुशासित करती है। हमारी भावनाओं का अनुशासन ही मोक्ष से संबंधित है। जब अनुशासन पूरा हो जाता है तो व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है, और भगवद्गीता की शब्दावली में 'स्थितप्रज्ञ' बन जाता है। दूसरी ओर, ध्यान, तप आदि के माध्यम से भावनाओं का कोई भी प्रत्यक्ष प्रशिक्षण न केवल हमें आंतरिक अनुशासन को पूर्ण करने में मदद करता है, बल्कि अर्थ और काम की खोज में दूसरों के साथ हमारे संबंधों को भी अनुशासित करता है। चार पुरुषार्थ मिलकर एक लक्ष्य मोक्ष का निर्माण करते हैं जो धर्म द्वारा परिपूर्ण और पूर्ण होता है, और धर्म जो अर्थ और काम की हमारी खोज को अनुशासित करता है' (Shah] 1990] Vol- 7 (2)] p- 2)।

मनुष्य की यात्रा दोहरी है प्रथमतः एक व्यक्ति के रूप में धर्मनिरपेक्ष लौकिक स्तर पर अर्थात् समाज के एक हिस्से के रूप में जीवन में अपने कर्तव्यों को पूरा करना, और दूसरा, अपने सच्चे आध्यात्मिक स्वभाव के अनुरूप होना जो हमेशा ब्रह्मांडीय आध्यात्मिक वास्तविकता के साथ व्यग्रता से एकीकृत होना चाहता है। एक संवेदी प्राणी के रूप में मनुष्य अनुभवजन्य दुनिया का सदस्य है किन्तु एक तर्कसंगत आध्यात्मिक प्राणी के रूप में वह प्राकृतिक कारण और प्रभाव के वर्चस्व से परे प्रकृति से परे जाता है और उन मानदंडों को प्रस्तुत करता है जो वह स्वयं को सभी वस्तुनिष्ठ प्रभावों (भगवान सहित) से मुक्त करने के लिए स्थापित करता है। जो अंततः उसे आत्म साक्षात्कार प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

अतः आत्म-साक्षात्कार संकीर्ण अर्थों में स्वार्थ की तलाश नहीं है। स्वयं में आध्यात्मिक सार की पहचान व्यक्ति को अहंकार की सीमाओं से परे जाने में सक्षम बनाती है। हर चीज में आध्यात्मिक सार के साथ स्वयं के एकत्व की प्राप्ति के माध्यम से व्यक्ति सभी प्राणियों के साथ असीम विस्तार और सद्भाव प्राप्त करता है। अहंकार की जकड़न टूट जाती है और मानव हृदय में प्रेम और करुणा के आंतरिक द्वार खुल जाते हैं। परोपकारिता हमारे भीतर अंतर्निहित है। जैसा कि विवेकानंद कहते हैं, 'ऐसे क्षण आते हैं जब हर व्यक्ति को लगता है कि वह ब्रह्मांड के साथ एक है और वह इसे व्यक्त करने के लिए आगे बढ़ता है, चाहे वह इसे जानता हो या नहीं। एकता की इस अभिव्यक्ति को हम प्रेम और सहानुभूति कहते हैं, और यह हमारी सभी नैतिकता का आधार है। इसे वेदांत दर्शन में प्रसिद्ध

सूत्र तत तत्त्वं असि, 'तू वही है' द्वारा अभिव्यक्त किया गया है (Vivekanand] 1992] Vol- I] p] 329)। यही अवधारणा मूल भारतीय विचारों में से एक 'ऋण' के विचार के मूल में भी है। भारतीय परंपरा में प्रत्येक व्यक्ति ऋण लेकर पैदा होता है और उसका पूरा जीवन पूर्वजों का ऋण, ऋषि-मुनियों का ऋण और देवताओं का ऋण चुकाने की प्रक्रिया है। पश्चिमी परंपरा में मनुष्य अधिकारों के साथ पैदा होता है लेकिन भारतीय परंपरा में मनुष्य दायित्वों के साथ पैदा होता है। मनुष्य की हमारी पारंपरिक छवि में एक स्थिर सामाजिक व्यवस्था का ठोस आधार है। यदि आदर्श नागरिकता सेवा की भावना है, तो उस भावना का स्रोत त्याग के दर्शन में खोजा जाना चाहिए।

उपाध्याय के अनुसार, समाज में भी मनुष्य के समान ही तत्व अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा शामिल हैं। उनके अनुसार समाज एक विस्तृत मनुष्य, 'विराट' है। मनुष्य और समाज के बीच का संबंध मानव शरीर की उन कोशिकाओं के बीच के संबंध के समान है जो उसके अंगों का निर्माण करती हैं। व्यक्ति मिलकर अलग-अलग सामाजिक व्यवस्था बनाते हैं, जिसमें परिवार, अदालत, सरकार आदि जैसी कई संस्थाएं शामिल होती हैं। इन सभी को एक समग्र विश्वदृष्टिकोण में देखने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य का एक चिकित्सा मॉडल उसकी जैविक आवश्यकताओं तक ही सीमित हो सकता है, जबकि मानव जीवन की एक एकीकृत समझ में इसके सभी आयामों – शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से संबंधित मुद्दों को समग्र रूप से संबोधित करना शामिल होगा।

इस मामले के एक तथ्य के रूप में, उपाध्याय का एकात्म मानववाद अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक व्यक्ति, समाज, मानव जाति और संपूर्ण ब्रह्मांड के हितों में सामंजस्य स्थापित करना चाहता है। 'मानव प्रकृति का मौलिक नियम विभिन्न स्थितियों में व्यवहार के औचित्य को तय करने का मानक है (Upadhyaya] 2017] p- 23)। मनुष्य के व्यक्तित्व का एकीकृत विकास एक व्यक्ति को अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति पूरी तरह जागरूक बनाता है। एक समाज, जिसमें ऐसे व्यक्ति होते हैं जो आत्म-चेतना की भावना से कार्य करते हैं, धर्म के अनुसार कार्य करते हैं अर्थात् कार्य के गुण और दोषों पर उचित विचार करते हुए कार्य करते हैं; उपाध्याय इसे 'चिति' कहते हैं। इसका अर्थ है प्रकृति की उपयुक्तता के अनुसार कार्य करना, जिसे विकसित किया जाना चाहिए; जबकि जो कुछ भी 'चिति' के विरुद्ध है वह अवांछनीय मानकर त्यागने योग्य है।

आत्म-चेतना या धर्म द्वारा निर्मित चिति वह शक्ति है जिसके माध्यम से एक राष्ट्र कायम रहता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी चिति होती है, जो मिलकर मानवता की आत्म-चेतना का निर्माण करती है। सामूहिक आत्म चेतना ब्रह्मांड की आत्म-चेतना के रूप में कार्य करती है, जो मानवता की एकता की दृष्टि का प्रतीक है जिसे एकात्म मानववाद के रूप में जाना जाता है। "चिति वह कसौटी है जिस पर प्रत्येक कार्य, प्रत्येक दृष्टिकोण का परीक्षण किया जाता है, और स्वीकार या अन्यथा निर्धारित किया जाता है। 'चिति' राष्ट्र की आत्मा है। इसी 'चिति' के बल पर एक , मजबूत और पौरुषयुक्त राष्ट्र का निर्माण होता है, यही 'चिति' है जो राष्ट्र के प्रत्येक महापुरुष के कार्यों में प्रदर्शित होती है" (Upadhyaya] 2017] p- 17)। उपाध्याय ने इस अवधारणा को विकास की एक नई दृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया है जो भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों, व्यक्तियों और समाज की परस्पर निर्भरता पर जोर देता है।

एकात्म मानववाद समाज के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर विकास के लिए एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण के लिए जागरूकता का प्रचार करता है। ऐसा दर्शन आधुनिक राजनीतिक और आर्थिक सोच के साथ पारंपरिक भारतीय मानवतावादी मूल्यों के एक अद्वितीय मिश्रण का प्रतिनिधित्व करता है, और यह आज भी भारतीय राजनीतिक विचार और व्यवहार को प्रभावित कर रहा है। कुल मिलाकर, एकात्म मानववाद एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहां व्यक्ति नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को कायम रखते हुए प्रकृति और समाज के साथ सामंजस्य बैठाकर अपनी पूरी क्षमता का एहसास कर सकें।

निष्कर्ष:

वर्तमान युग की असली त्रासदी यह है कि वह यह भूल गया है कि मानवता की समस्या मूलतः आध्यात्मिकता की समस्या ही है। एक स्वतंत्र और शांतिपूर्ण समाज तभी उभरेगा जब आध्यात्मिकता मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सिंचित करेगी। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति और ब्रह्मांड में अंतर्निहित अंतिम वास्तविकता की प्राप्ति की आकांक्षा ने धर्म को भारतीय संस्कृति और सभ्यता की आधारशिला बना दिया। राधाकृष्णन के शब्दों में, 'रिकॉर्ड किए गए इतिहास की शुरुआत से, हिंदू धर्म ने आत्मा की पवित्र लौ की गवाही दी है, जो हमेशा बनी रहनी चाहिए, भले ही राजवंश नष्ट हो जाएं और साम्राज्य ढह जाएं। यह अकेले ही हमारी सभ्यता को एक आत्मा, और पुरुषों एवं महिलाओं को जीने का सिद्धांत दे सकता है' (Radhakrishnan] 1959)।

उपर्युक्त विवेचन यह स्थापित करता है कि भारत में पुनर्जागरण की प्रक्रिया अपने अर्थ के अनुरूप सार्थक रहते हुए एक सतत परंपरा को निर्दिष्ट करती है। वसुधैव कुटुम्बकम् पर आधारित भारतीय परंपरा आदि काल से ही मानवतावादी रही है। इसके बाह्य स्वरूप में कालक्रम में भले ही परिवर्तन होते रहे हैं लेकिन इसके मौलिक मानवतावादी स्वरूप में आज तक कोई परिवर्तन नहीं आया है। यही इस परंपरा की सततता का कारण है। अतः आधुनिक भारतीय चिंतन ने प्राचीन आध्यात्मिक परम्पराओं तथा आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों को समेटते हुए एक नवीन विश्व दृष्टि पाने तथा एक नवीन संसार को रचने का प्रयास किया है।

स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
abhasingh126@gmail.com

सन्दर्भ :

1. Aurobindo, S. (1948). Speeches, Calcutta: Arya Publishing House.
2. Abrobindo, S. (2005). The Life Divine (revised ed.). Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication Department.
3. Muller, M. (1925). Ramkrishna: His Life and Saying. London: Longmans Green and Company.
4. Radhakrishnan, S. (1959). Religion and Society. London: George Allen and Unwin.
5. Radhakrishnan, S. (Trans.). (1977). Bhagavadgita (6th reprint). Bombay: Blackie & Son (India) Ltd. (originally published 1948)

6. Shah, K. J. (1990). Philosophy, Religion, Morality, Spirituality: Some Issue. Journal of Indian Philosophical of Research, VII (2), pp. 1-12.
7. Sinari, R.A. (1984) The Structure of Indian Thought (reprint ed.). Delhi: Oxford University Press.
8. Upadhyaya, D.D. (2017, October 08). Integral Humanism. Retrieved from <http://www.bjp.org/about-the-party/philosophy/?u=integral-humanism>.
9. Vivekanand, S. (1992). The Complete Works of Swami Vivekanand (Vol. I, Paperback ed.). Calcutta: Advaita Ashrama.

Kerala Renaissance through the Lens of Women's Autobiographies

Joseph Mathew¹, Minna Ann Andrews²

ABSTRACT:

The article examines the transformative potential of women's autobiographies as cultural and historical narratives, focusing on *Nashtabodhangalillathe Oru Antharjanathinte Athmakatha (An Antharjanam's Memoir Without Regrets)* by Devaki Nilayangode published in 1967. Through feminist and socio-cultural frameworks, the study highlights how autobiographies transcend personal reflections to reveal broader societal structures, values, and historical shifts. Nilayangode's memoir provides a vivid account of the lives of Namboodiri women during Kerala's 19th-Century renaissance, a period marked by challenges to entrenched caste-based and patriarchal norms rooted in texts like the *Manusmriti*.

The article explores restrictive customs, rituals, and how modern education and socio-political reforms instigated resistance, symbolized by changes in attire, education, and professional opportunities. Contrasting Nilayangode's personal narrative with E.M.S. Namboodiripad's politically charged autobiography, it reveals how gender shapes autobiographical expression. Women's autobiographies are positioned as critical interventions in historical discourse, documenting the intersections of caste, gender, and modernity, and reshaping Kerala's socio-cultural narrative.

Keywords: Women's Autobiographies, Namboodiri Women, Kerala Renaissance, Gender, Caste.

Introduction

Autobiography is a literary form that opens pathways to unique dialogues and inquiries. It is a branch of literature capable of facilitating diverse interpretations in cultural studies. Though an autobiography reconstructs events through memory, it transcends the individual, embodying a broader social presence. The period in which the individual lived, the politics, society, customs, and beliefs—everything finds its way into the narrative, transforming autobiography into a journey through history. Many autobiographies written against the backdrop of modernity's advent essentially narrate the story of a changing world. Udaya Kumar highlights how an individual's life becomes a medium to tell the tale of these transformations. Through personal experiences, autobiographies shape societal memories of history, becoming chronicles of the historical evolution of the time (Kumar 2011,34). This historical journey is not merely a travel into the past to understand the present society but also serves as a guide to the future.

Autobiographies emerge from a time when only the narratives that conformed to mainstream discourse were historicized, leaving the consciousness of marginalized groups outside history. They have since, then reached the cultural awakening of a new era that acknowledges every life—no matter how small—as valuable and meaningful. When racial, caste-based, and gendered minorities and their identity representations merge into the narrative, autobiography becomes a part of humanity's authentic history. The energy derived from decades of resistance has brought the ignored and marginalized groups into mainstream discourse. Autobiographies thus share the history and resistance of such communities. Women's narratives play a crucial role in this transformation, often arising from resistance efforts undertaken in varying contexts. These were attempts by women to overcome the many oppressions that were normalized in society. Because they transcend numerous restrictions and articulate resistance through writing, women's autobiographies exhibit significant diversity in both themes and style. They unveil the injustices, discriminations, restrictions, and power structures in society.

Women's autobiographies offer a narrative landscape shaped by the willingness to express and document their experiences. This article evaluates such a world of experiences as portrayed in Devaki Nilayangode's autobiography *Nashtabodhangalillathe Oru Antharjanathinte Athmakatha (An Antharjanam's Memoir Without Regrets)*. The study also examines the socio-cultural backdrop of how the awakening brought about by the renaissance among the Namboodiri community moved women's lives from the confines of kitchens and cloisters to the outer world and the workplace (Ramadevi 2019,45).

Renaissance and the Context of Autobiographies

The 19th Century renaissance period in Kerala was a time of significant transformation in the social and cultural domains of Malayali life. Several factors, including the spread of Western education, the societal awareness born out of colonial dominance, socio-political advancements, the popularity of print media, and changes in the joint family system, energized renaissance movements. Modern education brought fundamental changes to perspectives and ways of life. Traditional practices and beliefs rooted in the caste system underwent re-evaluation. The uniqueness of Kerala's renaissance lies in its class-based transformations that created changes across the societal spectrum. The Channar revolt and the temple entry protests are examples of such movements. Although the renaissance began slightly later among the Namboodiris compared to other communities, it marked the beginning of the transition from the darkness of rigid traditions to the light of the external world (Mini 2019,38).

In its initial stages, the transformations were more evident in the lives of men, but over time, their effects resonated among women dependent on them. Family dynamics, marital relationships, domestic values, and the status of women were redefined. However, there was little change to the ideal of the "perfect homemaker." The notion of the "ideal woman" continued to dominate societal consciousness, shaping women's awareness both explicitly and implicitly. It is within this context that Devaki Nilayangode's *Nashtabodhangalillathe*

must be analyzed. Her autobiography serves as a window into the cultural awakening that brought Namboodiri women from the inner confines of their homes to a broader world of socio-economic participation.

The World of Women's Experiences

Even while living in the same society, at the same historical juncture, and under the same circumstances, the experiential worlds of men and women differ significantly. A comparison of the autobiographies of Devaki Nilayangode and E.M.S. Namboodiripad reveals clear differences in narrative style, thematic focus, and approach to life. In one, the individual speaks and takes center stage, while in the other, society speaks and is brought to the forefront. For E.M.S., his story is inherently the story of the society he is part of. Devaki Nilayangode, on the other hand, begins her narrative with, “I am a seventy-five-year-old antharjanam. My name is Devaki, a member of Nilayangod,” narrating without glorifying or demeaning anything, simply recounting how people lived in a particular era (Nilayangode 2003, 63).

As Ayyappa Paniker notes in the foreword to *Nashtabodhangalillathe*, this is a “detached, unembellished view of memory, stripped of sentimentality, offering something that future generations can read as attentively as one reads a manuscript” (Paniker, 1993). She narrates the world of kitchens, bathing ghats, and the porches where older women gathered, as if speaking to herself or to close confidants. Her storytelling is far removed from the resonant tones of public speeches, stages, or newspapers. Often, her tales transcend the world of Kathakali, Rituals, Manipayalam, and Vedic studies that were central to her community. She uncovers and narrates the objects, events, and reforms she witnessed, including K.P. Namboodiri’s herbal toothpaste and its related promotional jingles. E.M.S.’s autobiography, on the other hand, is consciously stripped of personal emotions, resembling more a political report than a personal narrative. He himself acknowledged the observation that his autobiography lacks “soul” and leans more toward a political chronicle. The narrative chronicles the history of peasant movements, the freedom struggle, the communist movement, and the reforms within the Namboodiri community. E.M.S. concludes his autobiography by leaving the task of narrating his life story, intertwined with the history of the communist movement, to communist historians. He believed that as soon as his life transitioned into mature political activism as a communist, his personal life story became irrelevant.

In the preface to *Jeevithapatha*, written for the life story of Cherukad, E.M.S. elaborates on his perspective on autobiographical literature. He observes both the merits and flaws inherent in an autobiographical narrative that focuses on the storyteller’s self, noting how Cherukad’s life story eventually transforms into the history of the Leftist democratic movement in Kerala (Namboodiripad 2005). Unlike E.M.S., who prioritizes political, social, and cultural experiences, Devaki Nilayangode presents her lived experiences through the lens of a witness. Her narrative is predominantly shaped by observations from within the household. Women’s relationships with their inner world are often defined by the value

systems society imposes upon them. As a result, even when they are aware of their lack of freedom, they may often accept it as a natural state. Devaki Nilayangode meticulously exposes the customs and practices of the Namboodiri community that maintained gender-based hierarchies. These customs perpetuated a system designed to uphold differences in status between men and women, confining women to a restricted inner world. Her narrative sheds light on this constrained existence, revealing how deeply ingrained such societal structures were.

Rituals and Customs

The customs followed by the Namboodiri community were self-created based on texts like *Manusmriti* and *Shankarasmarana*. Within these, a woman's life was reduced to a strict sequence of rituals to be diligently observed. Society firmly believed that a woman's duties extended no further than serving men, worshiping Perumthrikovilappan for their longevity, chanting sacred threads, and observing rigorous austerities. The birth of a girl in a Namboodiri household was not considered auspicious. Devaki Nilayangode highlights the stark difference: while the birth of a boy was celebrated with jubilant cries by the elders, the birth of a girl was marked by the faint tapping of the door by the older women. The oppressive force of these customs became evident to a girl upon reaching puberty, which marked the end of her freedom to engage with the outside world. From then on, the external world was entirely forbidden to her. As Lalithambika Antharjanam wrote in her autobiography, her situation resembled a bird captured from the forest and confined to a cage. Like countless other women, Devaki Nilayangode, too, bowed before her fate. She spent two years confined within the inner quarters of the household. M.P. Bhattathiripad sharply criticized these customs in his poem *Ritumatikal*:

*“When she becomes a woman-child,
And her learning ceases at Sunday school,
She's confined forever to the kitchen,
To sit within and wither away.
Clad in modest garments, she must remain,
Bound by the laws of her primitive caste.”*, (Bhattathiripad 2008, 627).

Women had no freedom to voice opinions in family matters or decisions concerning their future. They often learned about their marriage only when flowers were prepared for the ritual or when maids whispered about it. In Devaki Nilayangode's case, there was a slight exception—her tuition teacher informed her with the phrase, “Child, tomorrow you will have to go to Manerichil” (Nilayangode 1967,52).

Society prescribed the duties of women as mere cooking, serving, and childbearing. Even relationships between men and women were mechanized to serve reproduction and pleasure. While the *Veli* system among the Namboodiris aimed at mechanical reproduction or financial gain, arranged relationships focused on mechanical pleasure. A woman's sexuality was branded sinful, and customs and rules were imposed to uphold this perception. The *Smartha*

Vicharam (ritual trial for women accused of infidelity) exemplified this. The principal cause for initiating *Smartha Vicharam* was the accusation of a woman's moral transgression. Devaki Nilayangode hints at a subversive satisfaction experienced by women of her generation when they, albeit in hushed tones, recalled names like Kuriyedathu Thathri. Thathri's rebellion against oppressive customs marked a historic moment when an *Antharjanam* defied the suffocating traditions of the outside world. V.T. Bhattathiripad described Thathri as a cultural reformer who consciously fought against the sexual lawlessness of patriarchal dominance using the same weapon of defiance.

Strict control over women was imposed because any contact with men from lower castes, particularly untouchable men, was believed to undermine the foundation of upper-caste society. Women's sexuality was subordinated to male control. Brahmanical law, royal authority, and ruling classes justified these restrictions on upper-caste women. Uma Chakravarti points out that safeguarding the caste system necessitated excluding upper-caste Brahmin women from societal interactions. Marriage, sexuality, and reproduction were structured as the foundational elements of the caste system, which is why endogamous marriages were promoted. Their ideology valued women as chaste and dutiful wives, adhering to strict customs. (Chakravarti 2008,47).

Attire and Its Transformation

Since the caste system mandated strict observance of untouchability, the arrangement of the body was a visible marker of caste and sub-caste identity. Even minor changes or innovations in attire were considered grave violations of customs. It is in this context that the concept of *ghosha bahishkaranam* (renunciation of the veil) gains significance. The first instance of *ghosha bahishkaranam* occurred during the Yogakshema Sabha's Edakkunni annual meeting when Mrs. Manazhi publicly discarded the veil. This act was later followed by Aryapallam, Parvathi Nenmiminimangalam, and others. Such attempts to create a cultural atmosphere enabling the emergence of new identities brought about remarkable changes among the *antharjanams* (Namboodiri women). Lalithambika Antharjanam describes in her autobiography the experience of setting out to the temple, ostensibly for a visit, carrying an umbrella and a covering cloth. Once out of sight, she discarded the umbrella, transformed her covering cloth into a sari, and boarded a bus to the meeting venue (Antharjanam 2012).

Devaki Nilayangode observed these innovations in attire through the children of Appan. When she saw women adorned in blouses, kasavu mundu (traditional white-and-gold Kerala garment), jewelry, and neatly combed hair, she recalls feeling a sense of inferiority as a six-year-old clad in a simple loincloth, her hair unruly and lice-ridden. The plight of her elder sister was even worse; she tried to conceal her unrefined appearance behind the door as much as possible. Women resisted this lack of autonomy over their own bodies through small acts of rebellion like discarding restrictive garments. Clothing, which symbolized internal inequalities, became an indicator of resistance against them. Just as Namboodiri men reformed themselves by cutting their hair, donning cropped clothing, and wearing shirts,

anthurjanams discarded their veils and heavy garments, adopting saris and even piercing their ears for earrings. Sari-clad women with earrings symbolized the emergence of a new identity, an event Devaki Nilayangode described as the birth of a new woman. She herself had the experience of wearing earrings after marriage, reducing the size of the traditional ear plug.

Jewelry and the way it was worn, much like clothing, were part of power dynamics, and thus underwent significant changes during reform movements. The body became the site of continuous struggles for identity. The cutting of hair, growing of mustaches, lowering the mundu, discarding the veil, and wearing ornaments were part of a series of body-centered movements of that era. As G. Ushakumari points out, these acts created a sense of bodily autonomy that harmonized individuality with dignity. Women did not retreat from this newly acquired awareness. While some men who had discarded their sacred thread later wore it again, women who renounced the *ghosha* never returned to it (Ushakumari 2013).

Colonial modernity, alongside democratic processes, social interventions, and reform movements, played a significant role in empowering women to assimilate and sustain their new experiences. Educational awareness further aided women in directly or indirectly overcoming the restrictions imposed by family or community laws.

Education and Social Transformation

The Namboodiri education system, shaped by upper-caste elitism, made emancipation through education particularly challenging. For the Namboodiris, Sanskrit education was a path to ascendancy to the status of a distinguished Brahmin. They were granted exclusive rights to sacred chants and rituals that others could neither learn nor recite. However, this education did not prepare them to understand or engage with real life. In the first act of the play *From the Kitchen to the Stage*, V. T. Bhattathiripad critiques the absurdity of Vedic studies pursued without comprehension. Having experienced this firsthand, he narrates how, despite 17 years of Vedic education, he was still illiterate in reading and writing. For most, this education merely enabled them to become a *oothan* (ritualistic reciter) or gain fame at the Kadavallur Anyonyam (a traditional Sanskrit debating event). E. M. S. Namboodiripad also realized the limitations of this system (Namboodiripad 2007).

It became evident that Namboodiris needed to adopt modern education to escape the confines of their rigid traditions. The Yogakshema Sabha prioritized teaching English to young Namboodiris as part of its agenda. However, as E. M. S. recounted, while he and his brothers were sent to school, the idea of sending their sisters was unthinkable at the time. Only the next generation of girls could dream of attending school. Overcoming the conservative notion that girls' education should be limited to what suited their domestic roles was a formidable challenge.

For girls like Devaki Nilayangode, education consisted of basic literacy, learning to write, and reading *Ramayana* aloud—after which it ended. Yet, unlike many others, Devaki retained her connection to literacy. Her voracious reader brothers smuggled books to her, opening

the vast world of reading. In an era when girls reading books was considered inappropriate, even these brothers could not send their sisters to school. Responding to Devaki's insistence on learning, her family arranged for a private tutor at home, a practice that continued until her marriage. For women to enter the broader domain of modern education, a conducive environment was necessary. Educating the Namboodiris about the discrimination they faced, preparing them to break free from outdated customs, and convincing the larger community of the need for change were all equally important. The Yogakshema Sabha, the Youth Association, and the *Antharjanam Samajam* (Namboodiri Women's Association) carried out these awareness campaigns through pamphlets, conferences, and plays. These movements emphasized the necessity of women-centric advancements.

The *Antharjanam Samajam* is particularly significant because it worked with the understanding that women's emancipation is integral to social liberation. Devaki Nilayangode viewed the *Samajam's* activities as a phase that brought numerous women like herself, confined to the kitchen, onto the public stage. The *Samajam* sought to enable women to work for their livelihood and achieve freedom through employment. Meetings often began with the question, "Should our children also inherit our fate?" (Nilayangode 1967,81). Women demanded education for their children as an alternative to a life confined to the dark interiors of the *illams* (Namboodiri homes). Devaki shared her experiences of organizing meetings within *illams* and undertaking a month-long awareness campaign from Malappuram to Kottayam. However, when she returned to her own *illam*, her mother protested by locking herself in a room, refusing to see her. This rejection deeply pained Devaki, overshadowing the campaign's successes or failures. Such emotional responses often receive more emphasis in women's narratives, contrasting with the objectivity and authority men typically prioritize. Rama Devi illustrates this by comparing Devaki's reflections with V. T. Bhattathiripad's detailed analysis of his journey after *Yachanayatra*.

Women had to navigate numerous challenges while engaging with and resisting societal conditions. As Lalithambika Antharjanam observed, "While men could boldly trample through the thorny undergrowth, we women had to tread cautiously, riddled with fear and apprehension" (Antharjanam 2012,20). It is against this backdrop of conflicting submission to family and assertion of self-awareness that Devaki Nilayangode became the secretary of the *Antharjanam Samajam* and participated in establishing a vocational center, marking a significant step forward for women in society.

Conclusion

The exploration of Devaki Nilayangode's *Nashtabodhangalillathe Oru Antharjanathinte Athmakatha* reveals how women's autobiographies transcend personal reflections to become critical interventions in socio-cultural history. Through the lens of feminist and socio-cultural frameworks, this article has traced the evolution of Namboodiri women's lives, highlighting the interplay of caste, gender, and modernity in Kerala's. By narrating her experiences without sentimentality, Devaki portrays a vivid tapestry of resistance and transformation, offering an

invaluable historical record of a community undergoing profound change. These narratives underscore the role of education, reform movements, and incremental acts of resistance in reshaping women's identities. From challenging oppressive customs to reclaiming bodily autonomy and pursuing education, Namboodiri women moved beyond the confines of kitchens and cloisters to assert their agency in public and professional spaces. Devaki's autobiography serves as both a mirror and a map, reflecting the entrenched inequities of her time while guiding future generations toward a more inclusive and equitable society.

In conclusion, women's autobiographies like Devaki Nilayangode's are indispensable for understanding the intersections of caste, gender, and modernity in shaping Kerala's renaissance. They reclaim the voices of the marginalized, preserving them as powerful instruments of historical discourse. As the narratives of Namboodiri women challenge patriarchal and caste-based hegemonies, they also inspire continued efforts to recognize and uplift the suppressed voices of other communities, ensuring a more comprehensive understanding of history and culture.

¹Department of English
Nehru Arts and Science College, Coimbatore, Tamil Nadu
josephmathew0905@gmail.com

²Department of English
SH School of Communication, Sacred Heart College, Thevara, Kochi
minnaandrews@shcollege.ac.in

References

1. Bhattathiripad, V. T. (2008). *Collected works of V. T. Kottayam*: D.C. Books.
2. Bhattathiripad, V. T. (2008). *Ritumatikal*. Kottayam: D.C. Books.
3. Chakravarti, U. (2008). *Gendering the caste*. Kozhikode: Mathrubhumi Books.
4. Devika, J. (2015). *How the kulastree became the market woman*. Thrissur: Kerala Sastra Sahitya Parishad.
5. Devika, Nilayangode. (1967). *Nashtabodhangalillathe Oru Antharjanathinte Athmakatha (An Antharjanam's Memoir Without Regrets)*. Thrissur: Kerala Sastra Sahitya Parishad.
6. Lalithambika Antharjanam. (2012). *Introduction to autobiography*. Kottayam: D.C. Books.
7. Mini, S. (2019). *Food, clothing, and customs: Kerala history in renaissance autobiographies*. Kollam: Patham Books.
8. Namboodiripad, E. M. S. (2005). *Introduction*, Jeevithapatha. Cherukad. Thrissur: Current Books.
9. Namboodiripad, E. M. S. (2007). *Autobiography*. Thiruvananthapuram: Chinta Publishers.
10. Nilayangode, D. (2003). *Without a sense of loss: An antharjanam's autobiography*. Thrissur: Current Books.
11. Ramadevi, P. (2019). *Women's autobiographies: Life, writing, and history*. Thiruvananthapuram: Kerala Bhasha Institute.
12. Sharada Kutty, S. (2020). *Innumerable inspirations*. Kozhikode: Mathrubhumi Books.
13. Sreekala, P. S. (2020). *The history of feminism in Kerala*. Kozhikode: Mathrubhumi Books.
14. Udayakumar. (2011). *Autobiographies as history writing, cultural studies: History, theory, practice*. Sukapuram: Vallathol Vidyapeetham.
15. Ushakumari, G. (2013). *The body as a weave*. Kottayam: National Bookstall.

Women in Male Dominated Occupations: A Sociological Analysis

Priya Garg¹, Kali Nath Jha²

Abstract:

The horizontal segregation of labour market into men's work and women's work has been in practice since historical times. There has been a gradual change in the social values regarding women working in the urban areas and especially in male-dominated occupations. The increase in number of women in male-dominated occupations has been a sign of this change. After globalization, this change has been accelerated as new job avenues have been opened to women. But the patriarchal nature of the Indian society doesn't allow women to work with equality and faces several challenges. The feminist thinkers have challenged the horizontal segregation in jobs by fighting for the equal rights of women. This paper will attempt to conceptualize the horizontal segregation of informal labour market especially after globalization. This paper will also analyse the impact of feminist movement associated with the increase in number of women entering into male-dominated occupations.

Keywords: women, male domain, gender bias, occupational segregation, globalization.

INTRODUCTION:

Women are crucial facilitators for development. They serve a catalytic role towards realization of transformational economic, environmental and social transformations essential for sustainable development. The empowerment and development of women is essential for the progress of individuals, families and communities and also for the comprehensive development of a nation. India is ranked among the ten lowest countries for women's workforce participation (WEF Report, 2022).

The decrease in the participation rates of female in the labor force in proportion with their population in India has been well documented. This decline is paradoxical in the background of an average growth rate of 6 to 7 percent per annum. More recently especially during the COVID pandemic, the severity has been compounded with a scenario of growing unemployment, rapid urbanization and disproportionately high domestic duties for women (Klasen & Pieters, 2015).

Women and girls suffer institutional restraints everyday that repudiate them of their basic human rights and impede their efforts to excel their own and the lives of the others.

Women also often concentrate on distress driven work, which is typically semi-skilled, low paid and offers no growth. The increasing absence of women from the workforce, some have argued, is because of higher number of women students in higher educational institutions or withdrawal of female from the labor market due to upward mobility of the households; others have focused on the non-availability of jobs that are believed to be more apt for women concerning skills, location and timings (Sinha, 2019). Often, even if they get a job, women are constrained by patriarchal and cultural norms; besides, there are serious safety concerns.

The horizontal segregation of labour market into men's work and women's work has been in practice since historical times. There has been a gradual change in the social values regarding female employed in the urban areas and especially in male-dominated occupations. The increase in number of women in male-dominated occupations has been a sign of this change. This change has been accelerated due to globalization as new job avenues have been opened to women. But the patriarchal character of the Indian society doesn't allow women to work with equality and faces several challenges. The feminist thinkers have challenged the horizontal segregation in jobs by fighting for gender equality. This paper will attempt to conceptualize the horizontal segregation of informal labour market especially after globalization. This paper will also analyse the impact of feminist waves associated with the phenomenon of women inclining towards male-dominated occupations.

LITERATURE REVIEW:

Bagilhole (2002) has analysed common issues and concepts concerning women in non-traditional, male-dominated work in her book. She examines women's experiences of relationships with colleagues, managers, clients, customers and the community, which impact their achievement and feelings of competence and confidence. When women enter these occupations they encounter hostility, both overt and covert opposition, and resistance to their success. They basically relate to men's exclusionary behaviour, where men tend to share information predominately with other men, recruit in their own image, ostracize and undermine women, and generally act to perpetuate ways of working and forms of interaction with which they feel comfortable. It uses women's experiences in non-traditional occupations to investigate the effects of providing equal opportunities via policies within their occupations.

Kulkarni and Hatekar (2013) have identified the reasons behind gender stereotyping in evolutionary psychology. The authors have also described the demotivating psychological process women suffered from, due to the prevalence of gender stereotypes in society. This book is concerned with the gender role stereotypes and occupational segregation from the perspective of women.

Price (2016) describes the causes for women's involvement in many non-traditional fields remains so low and what conditions would lower racial and gender barriers in the workplace. He has analysed the situations in the global North and global South. In the global

South, the formal sector is generally a small percentage of workers, whilst much broader in the global North (though even there a vast underground economy exists that relies on migrant labor).

Roksana (2018) explores the current position of women in construction industry, and seeks to identify the reasons of women's disinterest about the industry, job satisfaction and the barriers (professional and social) that compel women to think to change career and leave the construction industry. The women stated that the unpleasant work environment, gender discriminatory behaviours from the male colleagues, less career development opportunities, unfair promotion system and unequal salary compel them to rethink about their career choice and leave the construction industry.

Waite and Berryman (1985) examine the factors which affect occupational choice and job turnover of young women in sex-atypical jobs. The author has taken a sizeable sample of women in the military and in civilian jobs to compare job turnover for women. The factors include socio-economic status and family structure. They also observed that when women work in a non-traditional occupation their job turnover increases and they are plausibly to continue in a non-supportive work environment. Also with women entering the non-traditional occupations the work environment and the facilities improves. Apart from the primary data, secondary data was used to determine the factors which affect the entry of women in the labour force.

Wilkinson (1998) has examined the gendered segregation of work using two of the most gendered occupations of marine-corps and nursing. The author has tried to look at the minimal percentage of less than four percent of female in marine-corps and male in nursing. Wilkinson has identified that these occupations themselves foster the gender differences in a number of ways such as internal stratification, etiquette rules, informal practices etc. The author identified that the perpetuation of gender in non-traditional occupations serve men's emotional and economic interests.

On the basis of the review of literature, there seems a dearth of studies based on the Indian context. The existing literature about the women opting traditionally male dominated occupations is mostly focused on the challenges faced by women when working in a male dominated occupation. Some studies focus on the reasons of women to enter such occupations. Other studies focus on the issues faced by the women and leaving the job early and not continuing for a longer time period. Most of the research studies have been based on the international context and says little about the Indian scenario. However, the conceptual scheme which forms the foundation of the phenomenon of women in male-dominated occupations still remains superficial and therefore leave a gap which is discussed in this paper.

RESEARCH METHODOLOGY:

This paper is based on the review of different articles and research papers relating to the entry of women in male-dominated occupations. It is qualitative in nature. This paper

is based on secondary sources. The phenomenon of women entering into male-dominated informal sectors is being explored by means of various concepts such as gendered division of labour, occupational segregation, feminist theories, and globalization.

GENDERED DIVISION OF LABOUR:

The concept of gendered division of labour is an inevitable part of any patriarchal society. The expectation of what kind of work women can do can be rooted in anatomical differences that frame the "biological basis" (based on body strength, reproductive roles of childbearing and childcare) and appropriation of roles based on the perception of competitiveness, ambitions, skill set which is gendering the emerging markets. This has played out particularly in jobs that witnessed mechanization overtime and have been masculinized (Kulkarni & Hatekar, 2013).

The traditionality of gendered roles is an extension of distribution of labor within the household which feminizes and endorses stereotypes about the ability of women and influences their roles in the society. It is crucial to challenge the intra-household division of labor and the perceptions that it creates in the market, for both men and women.

Traditionality has an element of temporality suggesting that it emanates from the past. On the contrary, upcoming job roles in manufacturing and expanding services (including those offered by the gig economy) are witnessing gender specific career paths undergirded by discriminatory perceptions and beliefs prevalent in the market and in industries, for example, women's role in hospitality where they are designated housekeeping jobs.

Stereotypes affect the kind of job that men and women select and/or are already trained for. It is expected from customers too. It is assumed that part-time jobs like paid domestic help will be fulfilled by women whereas deep cleaning and car cleaning by men, mainly because latter involved machinery.

In order to reverse some of these trends in gender specific jobs and create visibility for alternative occupations for women, some roles have gained more popularity over others as non-traditional for women, but the rationale of selection of these trades has not been clarified. Entry of women in specific workspaces also changes the culture of the place. Thus women apart from being able to earn, also acts as 'change makers' in the society. For instance, when women are repairing bikes it changes the perception as well as the behavior of customers and other male co-workers.

OCCUPATIONAL SEGREGATION:

On the basis of femininity and masculinity, women and men have been allocated different tasks in different spheres and different sectors. About fifty percent of the global working population is working in occupations in which at least eighty percent of the workers are employed from the same gender. In both developed and the developing countries, occupational segregation by sex is extensive. In many countries occupational segregation is highest among the blue collar jobs. This uneven representation and distribution of gender

in different occupations is described as occupational segregation on the basis of sex. On the other side, occupational segregation may affect women's tendency to choose traditional occupations such as teaching and nursing. But these choices are directed by the values associated with these jobs and the dominant values of femininity and masculinity.

Despite these efforts, however, an overwhelming and growing population of Indian women are employed in the informal economy and therefore do not benefit from the government security schemes. India's rate of female participation in the formal labor force at around 30 percent which is significantly lower than other developing nations. This rate has actually declined over the past decade, affecting women across different education levels and in both urban and rural areas. The majority of Indian women instead work in the informal sector characterized by low wages and limited social protections. This is not due to legal restrictions, as Indian women have equal rights to employment, contracting and banking. Instead, cultural norms and occupational segregation hinder women's economic potential. Women are concentrated in industries with stagnant employment and wage growth. Addressing these cultural and occupational barriers is crucial for promoting women's economic empowerment.

FEMINIST CHALLENGES TO GENDER BIAS:

The persistence of male dominance in society has led to the systemic marginalization of women, restricting their autonomy and agency. For centuries, women's choices have been dictated by societal norms, with their decisions subject to approval from male figures. The work they opt, the food they eat, the places they can visit, the clothes they can wear etc. have been in control of men. They were socialized into taking permission for everything either from father, brother, husband or son. This patriarchal framework has perpetuated gender-based discrimination, limiting women's participation in various aspects of life. The justification for male dominance stems from biological differences between males and females, where women are perceived as receptive and male as providers. This binary opposition is rooted in the notion that gender differences are mutually exclusive, rather than complementary. This differentiation was challenged for the first time by Simone de Beauvoir in her book 'The Second Sex' in which she rejected these differences between genders? Betty Friedan, influenced by Beauvoir's work, wrote "The Feminine Mystique" (1963), critiquing the mainstream media's portrayal of women and advocating for women's potential beyond domestic roles. These challenges to gender biases and differences, started feminist movement in several phases came to be known as feminist waves. Influenced by the feminist movements, women began demanding equality in every domain in civil and political rights (first wave), sexual and reproductive rights (second wave), intersectional rights (third wave) and digital rights (fourth wave).

WOMEN ENTERING INFORMAL LABOUR MARKET:

India's unorganized sectors employ a considerable number of working women. In terms of social status, the bulk of Indian women is still bound by tradition and is at a disadvantage.

For women, globalization is a two-edged sword with respect to economic advancement and social advancement. For example, the vast majority of women in India and other poor nations are denied the benefits of social security, government-subsidized labor rights protection, and other safety nets. On the other side, women in developed countries are given greater access to health care and education. Additionally, opportunities exist for more improved educational facilities and opportunities in a transnational sense that are quite appealing to those who are fortunate enough to have access to them. In order to achieve effective development, it is vital to recognize that women must be fully integrated into the development process, both as agents of change and as beneficiaries, because Indian women can be used as development resources in multitude facets. Since globalization has opened up the Indian economy at a fast pace, without the necessary economic and social policies in place to provide the much-needed safety net, women who have been involved in production in traditional ways must deal with a slew of issues while attempting to capitalize on the opportunities that an open economy offers. Women's information needs will become more diverse as the situation changes (Sanchez-Apellaniz, Nunez-Torrado, & Charlo, 2012).

GLOBALIZATION AS A CATALYST:

Globalization has made a decisive mark on the world of the twenty first century. Globalization is a complex process. It results from the convergence of a series of developments in societies which are qualitatively new. Globalization has presented people with an opportunity to imbibe multiple perspectives related to every aspect of the society. It is believed by proponents of globalization that this will result in faster rates of economic growth and an improvement in people's standard of living. Globalization is accelerating dramatically, offering new prospects for developing countries in particular, and who are increasingly able to attract global investors and foreign capital to their economies. It has also opened new avenues of work which has resulted in increased and more equitable participation of people in the economy. Growing media exposure and consumers' demands for better treatment of workers has pushed multinationals toward fairer wages and better working conditions for women. Increased access to information, primarily through television and the Internet, allows countries to learn about social mores in other places, which can change perceptions and promote the adoption of more egalitarian attitudes.

Globalisation is playing a crucial role in shifting gender roles and norms. Economic empowerment for women reinforces this process by promoting changes in gender roles and allowing women to influence time allocation, shift relative power within the household and exercise agency more broadly. Globalisation has the potential to contribute to greater gender equality. However, in the absence of public policy, globalisation alone cannot end gender inequality. Despite significant increases in agency and in access to economic opportunities for many women in many countries, large gender gaps remain in some areas. Public action is needed to close gender gaps in endowments, agency, and access to economic opportunities. Only then will countries be able to capitalize on the potential of globalisation as a force for greater gender equality.

The current wave of globalization has made a significant difference on the lives of women all across the world and particularly in the lives of women in developing countries. Because globalization is rapidly opening up the Indian economy, women who have traditionally worked in production face several challenges while trying to take advantage of the opportunities that an open economy offers (Jaiswal, 2014). Indian women have faced following issues throughout history such as patriarchy and social pressures, discrimination and societal restrictions against people on the basis of their caste, inadequate access to productive resources, effects of poverty and insufficient promotion opportunities, a sense of helplessness and inadequate access to the financial and other resources.

SUMMARY AND CONCLUSION:

The pattern of a small number of women entering some traditionally male occupations can be interpreted as slow horizontal desegregation. However, to confirm this there is a requirement for studies of the condition of women in various occupations at the organizational level, to try to reveal the tacit or unspoken strategies that either create and recreate segregation or reduce it (Bagilhole, 2002). Retaining women in occupations having a majority of men occupations remains a challenge because they tend to give in to the societal pressures (Du Plessis & Barkhuizen, 2012). This paper will enhance understanding of women's experiences in male-dominated occupations may expedite strategies directed towards their motivation and retention.

Interventions by government, non-governmental organizations and private sector through training programmes have encouraged women to take up new challenges against the barriers of male domination and enter occupations once considered as male dominated. Although skilling alone without adequate demand generation and sensitization of market players is futile which have been now realized by the governmental as well as non-governmental organizations.

The government has launched a programme named "Skilling in Non-Traditional Livelihoods for Girls" to train and induct women in male dominated occupations. The government has also recently begun several allied schemes such as day care centers, crèche facilities, working women hostels, one stop centers, and women helpline number etc. to help women continue working in several sectors in the economy. There are also various programmes run by non-governmental organizations such as Archana Women's Centre, Mobile Creches, Dalit Shakti Kendra, Barefoot College, Women on Wheels, Akshara Centre etc.

*Department of Sociology and Social Work
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar*

¹*prdpriya1104@gmail.com*

²*kalinathjha@rediffmail.com*

References:

1. Azad Foundation. (2016a). Recommendation for Draft National Policy for Women. http://azadfoundation.com/wp-content/uploads/2014/12/Recommendations_Draft-National-Policy-for-Women_Azad-Foundation_14062016.pdf
2. Bagilhole, B. (2002). *Women in Non Traditional Occupations: Challenging Men*. Palgrave Macmillan. London.
3. Beauvoir, S. de. (2015). *The Second Sex*. Vintage Classics. London.
4. Chatterjee, E., Desai, S., & Vanneman, R. (2018a). Rising education, declining women's employment. *Demographic Research*, 38, 855–878. <http://www.jstor.org/stable/26457065>
5. Chaudhary, R., & Verick, S. (2014a). Female labour force participation in India and beyond. www.ilo.org/publns
6. Dasgupta, K. (2003, July 31). Globalisation and Indian Women : Problems, Possibilities and Information. Retrieved April 27, 2022, from origin-archive.ifla.org: <http://origin-archive.ifla.org/IV/ifla69/papers/600-Dasgupta.pdf>
7. Dhawan, N. (2020). The case for women in non traditional livelihood: A sociological Inquiry, PhD Dissertation, Department of Humanities and Social Sciences, IIT Delhi
8. Du Plessis Y., & Barkhuizen N. (2012). Psychological capital, a requisite for organisational performance in South Africa. *South African Journal of Economic and Management Sciences*, 15(1), 16–30.
9. Friedan, B. (2013). *The Feminine Mystique*. W.W. Norton & Co.
10. Gothoskar, S. (2016). An Explanatory Review of Skills-Building Initiatives in India and Their Relation to Women and Girls' Empowerment. <https://ajws.org/wp-content/uploads/2017/02/An-Exploratory-Review-of-Skills-19Dec2016.pdf>
11. Hensman, R. (2004). 'Globalisation, Women and Work' *Economic and Political Weekly*, 6 March.
12. Jackson, S (2011). *Theorising Gender and Sexuality in Contemporary Feminist Theories* ed. by Stevi Jackson and Jackie James. Rawat Publications. Jaipur.
13. Jackson, S. and Sue, S. (2002). *Gender: A Sociological Reader*. London: Routledge.
14. Jaggar, A. and Rothenberg, P. (1993). *Feminist Frameworks: Alternative Theoretical Accounts of the relations between Men and Women*. New York: McGraw-Hill.
15. Kalpagam, U. (1994). *Labour and gender: survival in urban India*, New Delhi: Sage Publications.
16. Klasen, S., & Pieters, J. (2015). What Explains the Stagnation of Female Labor Force Participation in Urban India? <http://econ.worldbank.org>
17. Kulkarni, S., & Hatekar, N. (2013). Stereotypical Occupational Segregation and Gender Inequality: An Experimental Study. *Economic and Political Weekly*, 48(32), 112–120. <http://www.jstor.org/stable/23528035>
18. Ministry of Women and Child Development. (2021, December 17). GLOBAL GENDER GAP REPORT. Retrieved May 16, 2022, from pib.gov.in: Information was retrieved on May 16, 2022 from <https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1782628>
19. Price, V. (2016). Women in Non-Traditional Work Fields in book *The Wiley Blackwell Encyclopedia of Gender and Sexuality Studies*. 10.1002/9781118663219.wbegss546.
20. Roksana, K. (2018). *Women in Male-Dominated Industry: A Study of Women's Disinterest, Professional and Social Barriers, Walk out from Construction Industry*.
21. Sanchez, A.M., Nunez T.M. & Charlo, M. (2012). Women and Globalization In C. Wankel, & S. Malleck, *Ethical Models and Applications of Globalization: Cultural, Socio-Political and Economic Perspectives*. Hershey PA: Business Science Reference (Ann Imprint of IGI Global), USA.
22. Sinha, D. (2019). Unpacking Trends in Female Employment in India [unpublished manuscript]
23. Waite, L.J. and Berryman, S.E. (1985). *Women In Non- Traditional Occupations: Choice and Turnover*. California. RAND Corporation.
24. Wilkinson, W. C. (1998). Women in Non-Traditional Fields and Feminism: An Uneasy Connection. <https://researchrepository.wvu.edu/wvlr/vol91/iss1/6>
25. World Bank. (2011). *Globalization's Impact on Gender Equality: What's happened and what's needed*. Washington DC: World Development Report 2012: Gender Equality, World Bank.

Mathematics for Students with Special Needs in Inclusive Classroom

Adya Shakti Rai¹, Rajni Ranjan Singh²

Abstract:

Inclusive education offers significant benefits from an educational, social, economic, and human rights standpoint. However, implementing inclusive education effectively presents a considerable challenge for teachers. Creating a learning environment that caters to the diverse needs of all students within a single classroom requires significant effort and expertise. This challenge is particularly pronounced in mathematics instruction, where the need for clear conceptual understanding and a strong foundation in foundational skills is crucial for all learners.

This paper examines the multifaceted importance of mathematics for all individuals, delves into the inherent nature of the subject, explores diverse learning styles, and investigates the common perception of mathematics as a challenging discipline. The findings of this research suggest that the inherent complexity of mathematics, while undeniable, is not the primary obstacle to learning. Instead, the paper argues that pedagogical approaches and teaching methodologies play a crucial role in creating barriers to mathematical understanding. To address these challenges, the paper proposes a range of strategies to enhance the accessibility of mathematics for all learners. Furthermore, the paper emphasizes the significance of Universal Design for Learning (UDL) and the 5E learning cycle, grounded in constructivist principles, as effective frameworks for supporting diverse learning needs and fostering a deeper understanding of mathematical concepts.

Keywords: Mathematics for All, Accessible Mathematics, Nature of Mathematics, Inclusive Classroom, Universal Design for learning, 5 E model

Inclusive education is a process of strengthening the capacity of the education system to reach out to all learners. It involves restructuring school culture, policies & procedures in schools so that they can respond to the diversity of students. (Bhat & Geelani, 2017). Providing access to a comprehensive mathematics curriculum is fundamental to inclusive educational practice. However, for some students, particularly in the secondary years, access to the general mathematics curriculum continues to be an aspiration (Faragher, 2014). Mathematical competence is not only crucial for academic success but contributes to independence in daily life (Browder et al., 2018). Positive school experiences in mathematics influence post-secondary and vocational opportunities (Wang, 2013). Contemporary inclusive

education emphasizes a child-centered approach to learning, recognizing the diverse needs of students. This necessitates a critical examination of pedagogical strategies to ensure equitable access to education for all learners. In all academic domains and professional endeavors, mathematics as a foundational subject, is a crucial facilitator of the right to an inclusive education. As Lemessa (2023) quotes that Mathematics is a key enabler for the right to an inclusive education and support in all academic areas as well as in expanding other professions. The National Policy on Education in 1986 emphasized that *Mathematics must be visualized as the vehicle to train a child to think, reason, analyse and to articulate logically.*” This policy purported to provide equal access to high-quality education for all students. The National Curriculum Framework for School Education (NCFSE) published in 2000 also echoed the suggestions of the NPE (1986). As a result, The National Curriculum Framework (NCF), 2005 attempted to implement and direct the new curricula and textbooks in response to the recommendations of NEP, 1986. The National Council for Educational Research and Training, NCERT 2005, asserted that the textbooks provided a foundation for understanding how children actively create knowledge and participate in social and cultural practices. The NCF in 2005 position paper on the teaching of mathematics (NCERT, 2006) redefines the primary goal of mathematics education as “mathematisation of the child’s thought process”. By encouraging mathematical thinking and reasoning, we can empower children to view mathematics not merely as a set of rules and procedures, but as a subject for discussion, collaboration, and meaningful discourse. Furthermore, integrating students’ real-world experiences into mathematics education is crucial for making learning relevant and engaging.

The National Education Policy (NEP, 2020) placed a strong focus on the value of mathematics and mathematical thinking, emphasizing the experiential type of learning that comes from doing. The paradigm change from content-based learning to individual learning was suggested by NEP (2020). There is still a dearth of real achievement in students’ mathematical knowledge and abilities despite numerous interventions and attempts to enhance mathematics learning. The 2018 Annual School Education Report (ASER) for rural areas, focusing on children aged 5 to 16, revealed alarmingly low levels of literacy and numeracy. A significant proportion of students, approximately one-quarter, in Class 3 demonstrated poor foundational skills in these areas. Furthermore, the report highlighted that less than one-third of pupils in this grade could perform even basic mathematical operations. These findings are further compounded by the observation that nearly half of the students in Class 8 struggled to comprehend basic division concepts.

Nature of Mathematics:

There have been two distinct philosophies in mathematics since antiquity. One is connected to the utilitarian perspective of mathematics, which sees it as an aid to other subjects and has its status and self-identity. The other is the subject’s overly exalted status as a mystic shape, which is achieved by asserting its innate yet imperceptible beauty. In this regard, the words of two eminent figures hold significance. The first by Galileo, who

remarked that *"Mathematics is the language with which God has written the Universe"*. The renowned scientist Galileo (1653) may have provided the true meaning of the sentence after being enthralled with mathematical occurrences, yet it is very easy to understand—or misunderstand—mathematics as something that is unachievable since it seems to have been written by God. Russell's (1902) assertion that *"Mathematics, rightly viewed, possesses not only truth but supreme beauty"* highlighted the profound aesthetic value inherent in its capacity for abstraction. However, it is crucial to acknowledge that the perception of beauty, being inherently subjective, can vary significantly among individuals. History suffices to demonstrate that mathematics has always been viewed as either a problem-solving tool for everyday situations or as a support topic for other disciplines like science, engineering, etc. Math is now seen as both a process and a result because of the persistent work of contemporary math educators and the criteria established by the National Council of Teaching Mathematics (NCTM, 2000) publications. The unique nature of mathematics makes it wonderful, distinct, and stylish with special characteristics. From the above discussion, the nature of mathematics can be described as follows:

- Mathematics can be considered a unique and elegant language, characterized by its precision and systematic structure. The ability to recognize patterns and engage in rational thought are crucial for mastering this language. Mathematics is composed of symbols and abstract concepts, and it facilitates the conceptualization of ideas through a universal system of communication.
- The beauty of mathematics lies in its abstract nature. Children construct their understanding of concepts through their experiences, leading to the formation of cognitive structures. Mathematical abstraction should not be confined to the rote memorization of formulas, theories, and a rigid set of rules. Instead, it should prioritize the cultivation of critical thinking and problem-solving skills that are essential for effectively addressing real-world mathematical challenges.
- The abstract nature of mathematics is what makes it so beautiful. With experience, children may develop the notions that eventually lead to specific structures. A part of mathematics called abstraction should not be limited to formulas, theory, or a set of rules; rather, it should emphasise the development of mental skills necessary for resolving mathematical issues in the actual world.
- Mathematics is a human endeavour; hence, mathematical aptitude, which refers to the natural ability to understand and work with mathematical concepts, is innate in everyone. Consequently, as their cognition and language evolve, children are able to attach symbols and notations to objects intuitively.
- Mathematics, characterized by its demand for accuracy and precision, stands as a distinct and autonomous discipline. Often termed the "exact science," mathematics may be unique in its capacity to guarantee definitive outcomes. Even within the realm of approximations employed in mathematical calculations, a degree of precision is inherently maintained.

This unwavering emphasis on exactitude and accuracy distinguishes mathematics from other academic fields.

- Mathematics is common/uniform in all places and unaffected by feelings, religion, or location.
- It consists of a logical structure, including inductive and deductive reasoning. Mathematics is directive and affected by space, time, and situation, but some inherited features (described above) makes it unique and uniform.
- Generalisation in mathematics is obviously compared with other domains of thought and activity. When making schematic arrangements, it is easy to find instances of generalising conceptions. For instance, when we learn about the concept of a triangle, we can apply the same principles to any triangle, regardless of its size or orientation. •
- Brevity means any idea or concept that can be expressed in the shortest possible way. Mathematics holds several examples of such brevity. To achieve such compactness, the system employs an infinite set of symbols. For instance, the set of integers encompasses all whole numbers, both positive and negative, including zero.
- Logicism is a main characteristic of mathematics. Mathematical learning always starts with simple to complex steps. It gives us a new way of thinking with a logical structure.

Different Ways of Learning:

Every child has the capacity to learn, but the methods they employ vary depending on the subject and the stage of life they are in. While some students learn best by just listening to their teachers, others learn by working through activities, making use of visual aids, or participating in group discussions. As such, it is possible to differentiate seven distinct learning pathways:

1. Verbal or linguistic : Children use their memories, recollection, and written and spoken language to think and learn.
2. Logical or mathematical : Children use calculation and reasoning to think and learn. They can take exact measurements, identify abstract patterns, and work with numbers with ease.
3. Visual or spatial : Children need visual aids to think and learn. They enjoy art and have little trouble understanding charts, graphs, or maps.
4. Body or kinaesthetic : Children acquire knowledge and grow through play, drama, and movement.
5. Music or rhythmic : Children learn through sounds, rhyme, rhythm and repetition
6. Interpersonal : Children engage in cooperative activity in groups to learn. They form relationships and comprehend social situations with ease.
7. Intro-personal: Children absorb knowledge by focusing on themselves and reflecting on

their actions. They know their own emotions, strengths, and weaknesses and are capable of working alone.

Why Mathematics is considered as a Difficult Subject:

Mathematics is usually recognized as one of the most challenging disciplines and has a reputation of being studied by the students with above average intelligence. If we imagine an inclusive classroom where students with varying ability study together, we will find the connotation of mathematics as a difficult subject to be more pervasive.

No doubt, Mathematics is a very abstract and cumulative subject but researches show that problem in learning mathematics is not in the basic nature of Mathematics, but the way we teach mathematics to our students. Our approach to teach Mathematics makes it rather more difficult as we do not provide them an opportunity to relate mathematics to their real life. Learning often occurs best for students when it is relevant to real-world situations. They must be made to understand that mathematical concepts build upon one another. In mathematics everything builds on what came before. So, we must teach our students the basics before they move on to new topics. Child hears from others that 'math is hard' and teacher or parent do not make any effort to disprove the statement. They do not make teaching learning process as per the need and interest of students. Consequently, math becomes harder for students to assimilate. The basic reason for considering math as a hard subject is the stereotypes or preconceived ideas. There are existing beliefs that men are better than women at math. Many concepts are abstract so it may require more time and effort to understand them but teacher fails to make mathematics more concrete and give extra time to comprehend. We consider mathematics as a final answer is right, which concept needs to be changed and make mathematics learning more process oriented than product oriented. However, the NCF also enumerates the difficulties that our schools have in teaching mathematics, including:

1. The majority of children have fear of math and feel that they're not good at it.
2. A curriculum that simultaneously depresses the non-participating majority and a talented minority.
3. Rigid methods of assessment that enforces students for mechanical computation, which makes mathematics more product oriented.
4. Lack in training and skills in teachers needed to support learners in learning mathematics.
5. Stereotypes concepts prevailed in society regarding Mathematics education like 'boys are better at Mathematics than girls', 'students who learn mathematics possess extraordinary intelligence' etc.

Mathematics learning should be for all. But for attaining this specific objective, the mystification and glorification of mathematics should be minimized. Menon (2013) work on analysis of textbooks concerning mathematizing mind, it was found that textbooks reflect mathematisation only in a horizontal way. Horizontal way means the mathematical thinking

can be developed through these books. It would be quite important to discuss the Yashpal Committee Report (1993) focused on reducing the burden of school bags. This report explicitly described that mathematics learning should help in enhancing the child's ability to think and reason, visualize, and handle abstractions and formulate and solve problems. As a result, certain areas were emphasized upon like: Despite the emphasis on child-centered approaches to learning, including activity-based learning, joyful learning, learning by doing, play-way methods, and a focus on the child's individual needs, the reality of mathematics education in many Indian schools appears far from ideal. The report paints a concerning picture, highlighting significant gaps in foundational mathematical skills among students. Oyebanji & Idiong (2021) found that the school administrator need to make provision for adequate resources for the implementation of effective curriculum which involves provision of adequate personnel for the training and re-training of in-service and pre-service teachers who will be able to develop key skills within a broad content areas, using individualized education programme, variety of assessment tools as well as multi-disciplinary approaches in the education of students with special needs.

Some Adaptation Strategies to make Mathematics Accessible

The ultimate goal of teaching is to facilitate meaningful learning. This can be achieved by implementing pedagogical approaches that are responsive to the unique needs and learning styles of individual students. For making mathematics accessible, some adaptation strategies in all components of teaching -learning process is required. Adaptation strategies in curriculum environment, Curriculum and instruction are as follows.

Classroom Environment	Curriculum Adaptation Strategies	General Instruction Strategies
Establish physical and psychological environment conducive for all.	Make curriculum need specific	Establish Prior knowledge. Always Review prerequisite skills or concepts before starting teaching
Ensure that classroom is accessible to all students.	Altering learning outcomes and goals	Use a variety of teaching and learning styles
Reduce auditory and visual distractions	Provide sufficient guided and independent practice	Always give positive feedback/ comments before negatives.
Recognize the value in all students.	Plan lessons with structured and achievable objectives.	Vary types of instruction and evaluation.
Believe that children come in all shapes, sizes, and ability levels and welcome all.	Density of concepts and ideas should be reduced or made accessible	Use step-by-step procedures Proceed from simple to complex.
Make seating arrangement according to student's needs, e.g., attention, hearing, vision.	Complex concepts should be broken into small steps for ease of understanding.	Reinforce abstract concepts with concrete examples.

Establish clear set of rules and expectations.	Adjust the level of difficulty by reducing the complexity of the tasks	Incorporate sensory elements-visual, auditory, tactile across the disciplines.
Emphasize abilities, not limitations.	Change context to make it more familiar or appealing to students	Use real-life and meaningful examples
Avoid giving excessive praise or attention to a student with special needs.	Modifying nature of activity, assignment or any task to suit the needs	Use mnemonic strategies
Always address student by his/her name.	Make provision of individualized curriculum	Gradually transition from tangible to abstract instruction.
Plan activities that encourage ALL children to work as a team.	Give students graphic organizers to aid in concept understanding and idea organization.	Make use of cooperative learning environments.
Encourage students to support each other.	Provide Templates for tables, graphs, writing, and other tasks	Give regular feedback.
Use a mix of whole class, small group, paired and individual work.	Teach problem-solving and meta cognitive strategies	Supply technological tools include portable projectors, overhead projectors, and tape recorders, calculators, keyboards, and computer software

Table: Dimensions in which adaptation is necessary for making mathematics more accessible

1.5 Practices to make the Math classroom more Inclusive:

In order to make mathematics classroom more inclusive, it is imperative to bring about a change in the teaching learning process. The goal of mathematics education should be to foster critical thinking and problem-solving skills in students, rather than simply creating a sense of dread and burden. As National Curriculum Framework (NCF) 2005 remarks that the main goal of Mathematics education in schools is the 'mathematization' of a child's thinking. Hence, it should be taught in such a way that students develop the ability to think mathematically. According to Dowker, Sarkar, and Looi (2016), students experience anxiety when speaking in math classes because they believe their professors are primarily concerned with getting the answers right. To remove fear and anxiety from student's mind and motivate them to learn mathematics with fun and joy, the educator will have to modify their approach to teaching. Teachers must become acquainted with innovative methods of teaching that meet the demands of every student. All educators must be equipped with the appropriate knowledge to provide the necessary accommodations so that every student, regardless of ability or disability, may take an active role in the educational process.

Have Positive attitude:

Primarily, fostering a positive and supportive learning environment is crucial. Teachers must cultivate a growth mindset in students, emphasizing that everyone possesses the capacity for learning with appropriate experiences and tailored support. It is imperative to critically examine and address any preconceived notions, beliefs, and emotional reactions, both within oneself and among parents and other educators, regarding the mathematical abilities of students with special needs. Negative attitudes towards their potential must be unequivocally discouraged.

Making Math Relevant

Motivate learners in teaching- learning process by showing them mathematics in real world situations. Make sure students understand math concepts, reassure them that math is more than just arithmetic, and encourage them to experiment with diverse methods to problem solving. Studying mathematics entails putting previously learned information to work in a variety of real-world scenarios.

Use multi-sensory approach.

In inclusive classroom we have students with varying sensory, physical, mental abilities. So, it would always be better to use multi-sensory inputs in teaching. Only verbal explanations and showing work on the board will not be beneficial for all.

Training for teachers:

Inadequate preparation and training to teach mathematics to students with special needs is a major obstacle in learning Mathematics. Teachers have very limited knowledge about methods and adaptations for students with special needs. So proper training must be arranged for teachers to equip them with ability to make mathematics learning accessible to all learners.

Drill Mathematical Vocabulary, Mathematical signs, and symbols in Advance:

It can be simpler and quicker for many students—particularly those who have literacy difficulties—to follow a lesson, read a textbook, or comprehend an assignment when they have the chance to practice reading, spelling, and typing arithmetic terminology and definitions.

Allow access to Aids, Appliances and Accommodations.

Children with special needs especially visually disabled students, dyscalculia, dyslexia or dysgraphia etc. can be good achievers in Mathematics if teaching emphasis is on concrete experiences. Therefore, if they are provided with materials and equipment and other mathematical devices, their learning will automatically improve.

Action and Activity Oriented teaching learning process:

As a teacher we must try to make teaching -learning process fun by applying principles of constructivism in teaching. Playing mathematical games surely promotes creativity. A

Teacher must encourage Mathematics talk and add interest and fun in question asked by students.

Encourage Peer Learning

Active and engaged student participation in mathematics significantly enhances the learning experience and fosters positive self-esteem in all students, including those with special needs. Ensuring that every student, regardless of their individual learning needs, feels valued and included in the classroom discourse is crucial for effective mathematics instruction..

Relevance of Universal Design for learning in Mathematics Classroom:

National Research Council, 2001 published a valuable document titled as “Adding It Up: Helping Children Learn Mathematics”. This document described five attributes associated with proficiency in mathematics:

1. Conceptual understanding— understanding of associations, operations, and concepts in mathematics
2. Procedural fluency— The ability to carry out operations in a flexible, correct, efficient, and appropriate manner.
3. Strategic competence— The capacity to create, represent and solve mathematical problems
4. Adaptive reasoning— the ability to think, analyze, explain, and justify logically
5. Productive disposition— an ingrained tendency to view mathematics as reasonable, practical, and valuable along with self-efficacy and diligent beliefs.

The research on the human brain has identified three key cortical networks crucial for effective learning: the recognition network, responsible for identifying and processing information ("what" is being learned); the strategic network, governing the cognitive processes involved in learning ("how" to learn); and the emotional network, driving motivation and engagement ("why" learning matters). This understanding has significantly influenced the development of Universal Design for Learning (UDL). UDL provides a flexible framework that caters to the diverse needs of all learners by offering multiple means of engagement, representation, and action and expression.

UDL focuses on the three main principles to provide multiple means of representation, action and expression, and engagement. These three main principles are well-aligned with the five attributes associated with proficiency in mathematics. Therefore, if we apply the principles of Universal design for learning in mathematics lesson, mathematics can be made accessible to all in inclusive classroom. According to Bedir (2022), the implementation of Universal Design for Learning (UDL) practices has been shown to enhance individual differences in education, promote high-level efficiency, equalize educational opportunities, cater to all learners, facilitate versatile learning, ensure permanence, facilitate access to

information, elevate the standard of education, and enhance self-expression skills. Frolli (2015) asserts that UDL is a workable approach to inclusive and accessible education. Expanding UDL can lead to the creation of a unique instructional approach.

The table below shows the association between five attributes associated with proficiency in mathematics as discussed in National Research Council (2001) and principles of Universal Design for Learning. It also suggests strategies for enhancing learning in mathematics.

Attributes Associated with Proficiency in Mathematics	Network Responsible for Learning/ Principles of UDL	Strategies for Enhancing Learning
Conceptual understanding	(Recognition Networks) Multiple Means of Representation: Provides learners with various ways of acquiring information and knowledge	• Connecting prior knowledge • Define Vocabulary and Symbols • Decode mathematics Notation • Customize how information is presented • Illustrate Key Concepts with different Representations • Highlight Critical Features, Big ideas and Relationships
Procedural fluency Strategic competence Adaptive reasoning	(Strategic Networks) Multiple Means of Expression: Provides learners with alternatives for demonstrating what they know	• Provide Varied Ways to Interact and Respond • Provide Scaffolds for Practice and Performance • Support students to select, apply and adapt strategies to solve a novel problem • Enhance Capacity for monitoring progress
Productive disposition	(Affective Networks) Multiple Means of Engagement: Taps into learners' interests, challenges them appropriately, and motivates them to learn	• Provide students with choices of content that increase their interest and enthusiasm. • Reduce Threats and distractions • Vary levels of challenge and support • Provide appropriate feedback

Murray and Brookover (2014) affirms that by applying the principles of UDL to math instruction and assessment, teachers can create flexible learning environments that supports conceptual understanding, procedural fluency, strategic competence, and adaptive reasoning, while at the same time showing students that math is useful subject that they can master upon. Universal design for learning (UDL) is a framework for instructional design that identifies barriers in the learning environment and curriculum that prevent meaningful access and increases opportunities for learning by providing multiple options to reach and measure goals (Meyer, Rose, & Gordon, 2014). UDL is a valuable way to help students to become successful in learning math.

Use of Constructivist approach of Learning Mathematics through 5 E Model

The 5E model is one of the most well-known and widely used constructivist education models in the world among many other models. Mathematical learning cannot occur without mathematisation as already discussed above; it is a special kind of thought process. Such thought process needs a special mental construct where a student develops a mental schema where he/she can act- react, prove, argue, synthesize experiments, discussions and reflections back to weave any mathematical idea. Teachers are able to adapt classes as per the need of their students by using the 5E planning guide. Furthermore, this learning model is also capable to teachers to engage the students with topics they may not have much interest in or prior knowledge about (Duran & Duran, 2004). The use of the 5E learning paradigm in social studies instruction has a favourable impact on students' academic performance. The application of this technique in other classes would be beneficial and have a favourable impact on the learning process. (OTELES, 2020). This model follow given below steps:

1. Engage - Students are involved in the class by asking questions on demonstrations/ observations/making predictions etc.
2. Explore: Students interact with their classmates about observations, predictions, and demonstrations.
3. describe: Using the teacher's explanation as a guide, students describe the idea.
4. Elaborate: Students provide more details to support their opinions, and teachers help them connect their previous learning to their current understanding.
5. Evaluate: Through questioning and work inspection, the instructor conducts informal assessments of the students.

Here is an example of 5-E lesson plan in Inclusive Classroom

Topic- Profit and Loss

Class: 4

Instruction Objectives: Students will able to

1. describe the meanings of cost price, selling price, profit, and loss.
2. explain how CP and SP relate to profit and loss.

3. use the idea of profit and loss to solve problems.
4. compare between profit and loss.
5. determine if the deal was profitable or not.

Constructivist Approach (5E Model)

Method: Problem-solving, explanation, and demonstration

Time	Steps	Teachers Activities	Students Activities	TLM
2 min	Engage	Students "A" and "B" are given the task to demonstrate selling a product with a Rs. 100 price tag. If Student 'B' is the buyer and Student 'A' is the vendor. It is requested that other pupils observe. What was the price that 'A' paid for the item? What may 'B' have paid for the item? (greater than or equal to Rs 100).	Students will observe the given TLM as per their specifics needs	Items with price tag, flash card written in braille, chart paper explain the concepts, ppt on Profit and Loss, Concept Map of the concept Profit & Loss and many more as per the needs of the students in Class.
5 min	Explore	Additionally, a few additional objects with price tags are given to the class, and the students are asked to estimate the selling price and calculate the amount that the seller (shopkeeper) may have brought the item cost. writes down what they saw during the demonstration	writes their observations during the presentation.	
10 min	Explain	Students describe the price tags on the products and make a guess as to what the store owner could have paid for them. discusses with a peer to determine the answers to the key questions.	Discusses with peer to get the answer to the leading questions	

20min	Elaborate	The following questions are posed to the students: 1. Why does the seller sell things for more than he may have paid for them? 2. What happens if the seller sells something for less than he may have paid for it? How may the additional money the seller made from selling the item be calculated? Using the student's response as a starting point, the teacher explains terms, provides a workable formula, and works through issues.	explains what they have seen, picks up new ideas, defines words, uses formulas, and solves problems.	
5min	Evaluate	Responses and replies from students are checked.		

Conclusion:

Mathematics has always been considered as a difficult subject and has a reputation of being studied by the students with an above average intelligence. Mathematics has its own language which consists of various terms, formulae, theories, principles, signs etc. Peculiar language and symbol of Mathematics makes it different from another subject. It is abstract in nature, having logical reasoning, scientific attitude, and exactness, reliable, clear and accurate. In an inclusive classroom, students come with varying capacities and abilities. There is a need to orient the teachers in using teaching strategies that serve all students. Even with the mystification, beautification, and exaltation of mathematics, only a selected few individuals have access to both the quantity and quality of mathematical instruction. By recognizing and enhancing their mathematical abilities, students may elevate their current arithmetic proficiency and become more self-aware. Numerous challenges impede effective mathematics education, including math anxiety, low achievement, limited real-world application, and a lack of student engagement. While these issues are significant, they may ultimately stem from a deeper, more fundamental issue: a flawed understanding of the foundational principles of mathematics and its learning process.

Addressing these challenges effectively requires a shift in focus. By prioritizing a positive learning environment, emphasizing the relevance of mathematics to students' lives, incorporating multi-sensory learning approaches, providing teachers with the necessary training

to cater to diverse learning needs, and allowing sufficient time for concept comprehension, we can create a more inclusive and effective mathematics learning experience for all students. Furthermore, pedagogical frameworks such as Universal Design for Learning (UDL) and the 5E learning cycle, grounded in constructivist principles, offer valuable strategies to support diverse learners and foster a deeper understanding of mathematical concepts.

¹Faculty of Special Education

Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Lucknow

raiadya@gmail.com

²Faculty of Education (CIE)

University of Delhi, Delhi

rrsinghcieedu@gmail.com

References:

1. Annual Status of Education Report ASER (2018)
2. Bedir, G. (2022). Teachers' view on the practices of universal design for learning. *International Journal of Curriculum and Instruction*, 14(2), 1324–1342. Retrieved from <https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1340721.pdf>
3. Bhat, M. U. D., & Geelani, S. Z. A. (2017). Inclusive education in India: Issues, challenges, and prospects. *The Communications*, 25(1), 138–142.
4. Browder, D. M., Spooner, F., Lo, Y. Y., Saunders, A. F., Root, J. R., Ley Davis, L., & Brosh, C. R. (2018). Teaching students with moderate intellectual disability to solve word problems. *The Journal of Special Education*, 51(4), 222-235.
5. Cologon, K. (Ed.). (2014).
6. Dowker, A., Sarkar, A., & Looi, C. Y. (2016). Mathematics anxiety: What have we learned in 60 years? *Frontiers in Psychology*, Retrieved from <https://doi.org/10.3389/fpsyg.2016.00508>
7. Duran, L.B., & Duran, E(2004), The 5E Instructional Model: A Learning Cycle Approach for Inquiry-Based Science Teaching, *The Science Education Review*, 3(2), 2004 Retrieved from <https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1058007.pdf>
8. Faragher, R. (2014). Learning mathematics in the secondary school: Possibilities for students with Down syndrome. In R. Faragher & B. Clarke (Eds.), *Educating learners with Down syndrome: Research, theory and practice with children and adolescents* (pp. 174–191). London: Routledge
9. Frolli, A., Cerciello, F., Esposito, C. & Sica, L.S. (2022). Universal Design for Learning: a new educational approach. *International Day of Persons with Disabilities. Inclusion, Autonomy, Technology*, Retrieved from <https://eur-ws.org/Vol-3371/paper7.pdf>
10. Lemessa, R. (2023). Challenges Encountered by Students with Visual Impairment in the Exclusion of Mathematics Education. *Ethiopian Journal of Education Studies* , 2(1). Retrieved from <https://journals.hu.edu.et/hu-journals/index.php/ejes/article/view/645>
11. Menon, U. (2013) Mathematisation – Vertical and Horizontal, Presented at epiSTEME-5 Mumbai., Jan 2013. Nagarjuna G., Jamakhandi, A. and Sam, E. (eds.). (2013). *epiSTEME 5 International Conference to Review Research on Science, Technology and Mathematics Education*, Conference Proceedings. India: Cinnamonteal. p 260-267
12. Meyer, A., Rose, D. H., & Gordon, D. (2014). Universal design for learning: Theory and practice. CAST
13. Murray, E., Brookover, J., (2014). Universal Design for Learning in the Mathematics Classroom. In Eds. Hall, T., E., Meyer, A., Rose, D.H. *Universal Design for Learning in the Classroom Practical Applications*, The Guilford Press, Newyork

14. National Council of Teachers of Mathematics. (1995a). Mathematics anxiety. [Supplemental Brochure]. Reston, VA: Author.
15. National Research Council (2001) Adding It Up: Helping Children Learn Mathematics. Washington, DC: The National Academies Press. Retrieved from <https://doi.org/10.17226/9822>.
16. NCERT (2006). Position paper National Focus Group on Teaching of Mathematics. New Delhi,
17. National Policy on Education (N.P.E.) (1986) Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/npe.pdf
18. National Education Policy (2020) Ministry of Human Resource Development, Government of India, Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
19. Oyebanji, M.S. & Idiong, U.S. (2021). Challenges of Teaching Mathematics to Students with Visual Impairment. *Malikussaleh Journal of Mathematics Learning (MJML)* Vol. 4, No.1, pp. 1-6, doi: <https://doi.org/10.29103/mjml.v4i1.2538>
20. OTELES, U.U. (2020) A Study on The Efficiency of Using 5e Learning Model in Social Studies Teaching. *International Online Journal of Educational Sciences*, 2020, 12 (4), 111-122
21. Wang, X. (2013). Why students choose STEM majors: Motivation, high school learning, and postsecondary context of support. *American Educational Research Journal*, 50, 1081– 1121. doi:10/3102/002831213488622

Reproductive Colonisation of Women in Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale*

Anshul Dhankar¹, Devendra Kumar Sharma²

Abstract:

Even though Feminist scholarship has become diverse and dynamic over the years, the discursive corporeality of the female body has received very little attention. Women and their bodies are frequently devalued in patriarchal settings, with their worth limited to recreational utility, an essential component of women's lived experiences. Contextualizing the hindsight, Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale* reiterates how the body is used as an instrument to be trained, constructed, and confined, and how universal male entitlement of female bodies is perceived as inherently natural. Atwood satirizes the socio-cultural discourses that colonize women to their biological functions, perpetuating the essentialist notions about woman and womanhood, mother, and motherhood as defining aspects of their identity. The objective of this paper is to examine the pervasive cultural and biomedical forces that relegate women to their anatomical realities.

Keywords: Body, Female Body, Objectification, Motherhood, Reproductive colonization

Introduction

Throughout millennia, the synchronic and diachronic examination of the body has traversed various perspectives and paradigms. The body, as a source of temptation and sin, a symbol of mortality and decay, a medium of sensuality and pleasure, a source of creative energy and inspiration, and a site of ambiguity and uncertainty, has served as a focal point of intellectual, philosophical, and socio-pragmatic contentions. Until recently, the body has been a subject of cultural debate, labeled a biological entity, a center of cultural production, a material encumbrance, a vessel for the soul, and a psychosexual construct. In contemporary society, the body is at the focal point of discussions surrounding gender, sexuality, race, ethnicity, identity, and other related topics. As a result, the body is more than just a brute fact of nature; it is intricately entwined with culture and serves as a site of meaning-making. Following the Cartesian geometry, the dialectics of the body have oscillated between accepting and rejecting the dualistic paradigms, mind/body, reason/emotion, and nature/culture. As the mind takes precedence in determining subjectivity, the body ultimately performs a lesser role in this dichotomy. The most used analogy to illustrate this notion was analogizing the human body to a machine with the mind functioning as the

engineer regulating the engine, thus signifying intellectual supremacy over the corporeal flesh (Ehrenreich & English 108). As a result of this, there is always a foregrounding of the mind and a backgrounding of the body.

Within the confines of a heterosexist culture, many feminists argue whether the body of a woman is an anatomical phenomenon, a rhetorical figure, an aesthetic outcome, or a cultural relic. From time immemorial, it has been the subject of artistic representation purportedly to honor the beauty of the female form, but also to fetishize, dismember, and imprison women within the shackles of the repressive state apparatus. Feminists have repeatedly pointed out that women have been enslaved largely due to their physical bodies, and that gender ideologies and sexist reasonings stem from the notion of inherent biological disparities between men and women, upheld by dualistic frameworks present in Western metaphysics from ancient Greece to the Enlightenment. Thereby what it means to be a woman and what constitutes her body and consciousness has been a matter of primordial concern.

Women's embodied existence has been defined by generations of patriarchal and fundamentalist ideologies that associate women synonymously (and negatively) with the body, from Aristotelian posturing about feminine 'hysteria' triggered by the wandering womb to the Descartes' dualisms that have plagued the socio-pragmatic realities of contemporary times. As a direct consequence, the distinction between *res cogitans* (intellectual capacities and sites of selfhood) and *res extensa* (machine-like physical material) has been an indispensable phenomenon within the feminist tradition of knowledge. Susan Bordo in *Unbearable Weight: Feminism, Western Culture, and the Body* (1993) supports this idea by expressing that the body is looked upon "as animal, as appetite, as a deceiver, as the prison of the soul and confounder of its projects: these are common images within western philosophy" (3). As a consequence, women are often viewed as being closely tied to the body, perceived as animalistic, driven by appetite and aggression, and devoid of rationality and morality. Bordo alludes to this as the transition from Cartesian thought to a body devoid of subjectivity, "For if, whatever the specific historical context of the duality, the body is the negative term, and if woman is the body, then women are that negativity" (5). This negative perception concerning women and their bodies has had a significant impact on their role in society, primarily because the association of women to the body and men to the intellectual pursuits has culminated in the construction of a dichotomy where men are perceived as whole and representative of the norm, while women are related to the status of the lacking Other, a dualism that is as primordial as consciousness itself. Keeping up with this sexist reasoning, even Judith Butler in *Bodies That Matter: On the Discursive Limits of Sex* (1993) illustrates how "the feminine position is constituted as the figural enactment of that punishment (castration, penis envy), the very figuration of that threat and, hence, is produced as a lack only in relation to the masculine subject" (102). Unfortunately, this lack signifies not only a lack of the genital tract but also a lack of rationality. In addition to this, Emily Martin argues in her article "The Egg and the Sperm" (1991) about the biomedical metaphors that perpetuate and reinforce societal stereotypes of masculinity and

femininity. She asserts that oogenesis, or the ovum's production, is commonly portrayed as an unnecessary process, menstruation as a failure, and fertilization as the conquest or rescue of an ineffectual ovum. These portrayals propagate misleading perceptions of biological mechanisms that strengthen gender stereotypes. In addition, attributing agency to gametes has the potential to inadvertently favor the zygote's rights over those of the pregnant mother. Now since women are perceived as inseparable from their bodies in ways that men are not, thereby biologically disposed to a status of inferiority across domains that value rationality. This biological body of women is consequently laid down as a passive canvas on which cultural interpretations and significance are imposed, "the body is neither brute nor passive but is interwoven with and constitutive of systems of meaning, signification, and representation" rendering it a product plagued by social, political, and cultural forces (Butler 18). Thus, looking at the way the body is formed within specific temporal and spatial contexts, Elizabeth Grosz in *Volatile Bodies* (1994) employs the metaphor of a blank page for the body, where one can actively paint and inscribe the meaning of the subject, "The body has figured as a writing surface on which messages, a text, are inscribed ... the blank page on which engraving, graffiti, tattooing, or inscription can take place" (117). It therefore becomes essential to examine how the body is manipulated to objectify women, a process influenced by both biological and cultural values.

Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale* (1985) investigates the mechanization of the body through many fascist, fanatical, and religious systems from history which emphasizes the body's docility and enforces its utility. She envisions a future in which women are continually viewed in the light of their plight but socially stay on the pedestal through their biological structures and reproductive potential, whereby she is deemed to be liable primarily for ovulation and fertilization. Consequently, her entire being is reduced to nothing more than a uterus with limbs. Butler (1993) maintains this association of women with the servitude of maternity by asserting that "The classical association of femininity with materiality can be traced to a set of etymologies which link matter with mater and matrix (or the womb) and, hence, with a problematic of reproduction" (31). A similar idea is echoed by Plato in his text *Timaeus* (360 BC) where he talks about chora, a term used in Greek tradition implying how a woman is considered as a container or vessel that passively allows the seed of the man to develop inside her. Even Aeschylus in *Eumenides* (458 BC) emphasized this notion by stating a substantial difference between the generative capacity of the two sexes. He claims:

Not the true parent is the woman's womb/That bears the child; she doth but nurse the seed/
New-sown: the male is parent; she for him,/As stranger for a stranger, hoards the germ/Of
life; unless the god its promise blight./ And proof hereof before you will I set./Birth may
from fathers, without mothers, be:/See at your side a witness of the same,/Athena, daughter
of Olympian Zeus,/ Never within the darkness of the womb/Fostered nor fashioned, but a
bud more bright... (Lines 12-17)

This shows how women are reduced to the reproductive process and are thus simply regarded as chora, a temporary vessel for the offspring to grow until they are ripe. This degraded

female identity constructed around her biology is also echoed by Simone de Beauvoir in *The Second Sex* (1949) where she asserts, “Woman? Very simple, say the fanciers of simple formulas: she is a womb. An ovary; she is female” (41). Being pregnant, bearing a child, and giving birth are important activities that imprison women in their bodies and gender. As Donna Haraway in *Primate Visions* (1989) writes: “Ontologically always potentially pregnant, women are both more limited in themselves, with a body that betrays their individuality, and limiting to men’s fantastic self-reproductive projects” (353). Similarly, the Handmaids in Gilead are regarded exclusively for their viable ovaries and wombs, with little regard to their essential worth beyond their physiology. Their bodies are obligated to operate as birthing engines made of female flesh. Offred’s following remark emphasizes the gravity of the situation:

We are all for breeding purposes: We are not concubines, geisha girls, courtesans. On the contrary: everything possible has been done to remove us from that category. There is supposed to be nothing entertaining about us. We are two-legged wombs, that’s all: sacred vessels, ambulatory chalices. (Atwood 109)

Thus, we see how the patriarchal society of Gilead staunchly contends that a woman’s instinctive possession of wombs and ovaries ties her inextricably to performing her reproductive obligations, a belief that is fiercely guarded to the point of utmost consequence. Offred perfectly expresses this idea of being merely a dehumanized vessel for a baby when she says, “We are containers, it’s only the inside of our bodies that are important” (Atwood 107). Being defined purely by the functions of her uterus, Offred struggles to attain self-realization or nurture her individual, social, and cultural capabilities. Instead, she accepts patriarchally enforced responsibilities, acknowledging that her worth is primarily contingent upon her nature. Immanuel Kant stipulates in his text *Groundwork of the Metaphysics of Morals* (1785) that humanity has been reduced to the level of the body, a degradation that can be paralleled with objectification, “The characteristic feature of humanity is an individual’s capacity for rationally setting and pursuing her ends. A being with humanity is capable of deciding what is valuable, and of finding ways to realize and promote this value” (42). Deploying a similar Kantian phenomenon, Ronald Dworkin, in the article “Liberty and Pornography” (1991), addresses the idea of objectification:

Objectification occurs when a human being, through social means, is made less than human, turned into a thing or commodity, bought, and sold. When objectification occurs, a person is depersonalized, so that no individuality or integrity is available socially or in what is an extremely circumscribed privacy. (14)

Offred’s experience of sexual intercourse clears the objectification of her body “I used to think of my body as an instrument, of pleasure, or a means of transportation, or an implement for the accomplishment of my will” (Atwood 83). Offred no longer matters, even to herself, in this captivated circumstance. Her body is important only due to the ‘central object’, her uterus, which enables her to bear a child. This can be paralleled to the notion of “sexuality of dominance and submission” postulated by Catherine Mackinnon in “Sexuality from Toward

a Feminist Theory of The State” (1989) that sexualizes the patriarchal hierarchy by placing men at the top as subjectivized beings whilst placing women at the bottom as objectified beings. Offred endeavors to explain the plight of a woman who feels herself incarcerated by her own body, which predominantly serves the whims and needs of others, “I resign my body freely, to the use of others. They can do what they like with me. I am object” (Atwood 218). She leverages her body in a manner that degrades her individuality, not as a goal in itself, but as a means to an end. This condition of Offred and handmaids in general depicts the exploitation of the four ethical elements of reproductive rights, bodily integrity, diversity, equality, and personhood enunciated by Sonia Correa and Rosalind Petcheskey in “Reproductive and Sexual Rights: A Feminist Perspective” (1994). Stripping away all her humanistic beliefs and abilities, the state of Gilead dictates, influences, and stifles her sense of being and becoming, leading her to descend into degradation, negation, and alienation. Moreover, Offred’s bath scene emphasizes how employing female bodily functions as a political instrument undermines women’s body image and self-esteem, causing significant harm. As she explicates:

“My nakedness is strange to me already. My body seems outdated...Shameful, immodest. I avoid looking down at my body, not so much because it’s shameful or immodest but because I don’t want to see it. I don’t want to look at something that determines me so completely” (Atwood 54).

The key to female emancipation lies in regaining absolute control over their bodies. However, Offred experiences a strong aversion towards her body, which she perceives as nothing more than a womb, a vessel for reproduction. This imposition of a fertile identity upon her leads to self-rejection, and self-loathing, and reinforces her sense of inferiority. This fragmentation and alienation are echoed in Offred’s perception:

I sink down into my body as into a swamp, fenland, where only I know the footing. Treacherous ground, my own territory. I become the earth I set my ear against, for rumours of the future. Each twinge, each murmur of slight pain, ripples of sloughed-off matter, swellings and diminishing of tissue, the drooling of the flesh, these are signs, these are the things I need to know about. Each month I watch for blood, fearfully, for when it comes it means failure, I have failed once again to fulfil the expectations of others, which have become my own. (Atwood 83)

In this way “she moves from experiencing her body as an object to a relation in which the body is lived in terms of what it can do” (Budgeon 49). Thus, fertile women in Gilead are not only containers because their bodies possess the ability to carry a fetus, but asserting that they are containers signifies a degrading lack of agency, portraying them solely as instruments for reproduction with no recognition of their broader capabilities or autonomy. This notion of marginalization of women confirms Michel Foucault’s earlier observation in *The History of Sexuality: Volume 1* (1979) about the power-sex correlation; as man holds the sanctified reigns of authority in society at large, he rules, allocates roles, and directs the societal,

religious, and universal ideologies that fulfill his pursuits. The dehumanizing objectification of fertile women in Atwood's Gilead serves to emphasize and reflect the historical and ongoing biomedical and socio-cultural portrayal of women's bodies, specifically their reproductive biology.

Furthermore, the concept of motherhood (reproduction) is intricately linked with perceptions of nationhood, adding complexity to the feminine identity, and highlighting how motherhood is an essential pre-cultural truth. The ability of women to give birth isn't merely a biological prerequisite for sustaining life but has also taken on an additional dimension due to political agendas, especially in the context of the social reproduction of labor under the capitalist system. In Gilead, reproduction is no longer a matter of choice; it is enforced as law. Atwood weaves a narrative of how the accumulation of capital expands beyond natural resources to include what is commonly viewed as the natural resource of free female labor, the child. This can be associated with Foucault's idea of the 'biopolitics of population' dealt with in his seminal work *Discipline and Punish: The Birth of The Prison* (1975) which examines how populations are perceived as national resources to be governed, and potentially exploited by the state. Following this rationale, Offred and her fellow Handmaids are effectively viewed as national resources because they are women with viable ovaries in a world beset by widespread sterility. As a result, they are involuntarily inducted into the regime's initiative aimed at addressing the precipitous drop in the Caucasian birthrate. This dehumanizing conceptualization, which relegates women's bodies to mere instruments of reproduction, enables the State to first commodify and then seize control of fertile women under the pretext of public healthcare and ecological crisis management underneath a violently sexist socio-political economy, as astutely noted by Luce Irigaray in *Sex Which is not One* (1985) that women are at once "utilitarian objects and bearers of value" (175). Their moral unity and personal autonomy is forfeited because "Women-as-commodities are subject to a schism that divides them into the categories of usefulness and exchange value; into matter-body and an envelope that is . . . not susceptible to appropriation by women themselves; into private use and social use" (176). This depiction deprives women of their legal liberties and bodily autonomy, constructing a scenario wherein forced surrogacy is perceived as a viable solution to a fertility crisis. Corea Gena in "The Mother Machine" (1985) asserts that in surrogate motherhood "the woman is again seen as the vessel for a man's seed, just as she was under Aristotelian/Thomistic biology" (221). This inhumane objectification of fertile women in Gilead both reflects and magnifies the societal and biomedical representations of women's bodies, particularly their reproductive biology within Western culture that highlights how women have been relegated to a centralized, panoptic model of containment, degrading them to objects of reproduction.

The impetus behind this study is to examine how ideological apparatuses such as religious manipulations, indoctrination, repression of individuality, biological destiny, and ubiquitous surveillance, all contribute to the enslavement of women, resulting in self-alienation, self-rejection, and a diminished sense of self-worth. The misogynist ideology of Gilead objectifies

the body of the Handmaids by assigning them biologically determined roles, reducing them to a mere receptor of the seeds of the commanders, relegating them to the status akin to livestock or breeding animals. Subjected to ritualized rape in the name of fulfilling societal and biological roles, the objectification and degradation of the Handmaids undoubtedly emphasize the gender politics at play wherein the female body is colonized exclusively for reproduction. The study thus, concludes that the concept of the body, in its most literal interpretation, is fundamental to comprehending female epistemology thus, procreation, the female body, and motherhood are inextricably linked, morphing into a lethal weapon for the oppression and persecution of women and causing a major catastrophic collapse in women's integrity and autonomy.

Department of English and Modern European Languages

Banasthali Vidyapith, Rajasthan

¹anshuldhankar@gmail.com

²devendra999iitr@gmail.com

References:

1. Aeschylus. Eumenides. Translated by E. V. Rieu. London: Penguin Classics, 1954. <https://classics.mit.edu/Aeschylus/eumenides.html>
2. Atwood, Margaret. *The Handmaid's Tale*. Vintage Books, 1985.
3. Bordo, S. *Unbearable Weight: Feminism, Western Culture, and the Body*. Berkeley: University Of California Press, 1993.
4. Budgeon, S. "Identity as an Embodied Event". *Body & Society*, Vol.9, No. 1, 2003, p. 37–57.
5. Butler, J. *Bodies That Matter: On the Discursive Limits of Sex*. New York: Routledge, 1993.
6. Corea, Gena. "The Mother Machine" in *Reproductive Technologies from Artificial Insemination to Artificial Wombs*. New York: Harper & Row, 1985.
7. de Beauvoir, Simone. *The Second Sex*. Picador: London, 1949.
8. Dworkin, Ronald. *Liberty and Pornography*. New York Review of Books, 1991.
9. Ehrenreich, Barbara and Deirdre English. *For Her Own Good: 150 Years of the Experts' Advice To Women*. New York: Doubleday, 1978.
10. Foucault, M. *Discipline and Punish: The Birth of The Prison*. Trans. Sheridan A, Vintage Books, 1975.
11. _____. *The History of Sexuality: Volume 1*. New York: Vintage Books, 1979.
12. Grosz, Elizabeth. *Volatile Bodies: Toward a Corporeal Feminism*. Bloomington and Indianapolis. Indiana UP, 1994.
13. Haraway, Donna. *Primate Visions*. Oxford: Routledge, 1989.
14. Kant, Immanuel. *The Metaphysics of Morals*. Cambridge: Cambridge University Press, 1996.
15. Kristeva, Julia. *Stabat Mater*. Stockholm: Natur och kultur, 1995.
16. Mackinnon, Catherine "Sexuality from Toward a Feminist Theory of the State" in *Feminist Theory: A Reader*. New York: McGraw-Hill, 1989, pp. 415-425.
17. Martin, Emily. "The Egg and the Sperm: How Science Has Constructed a Romance Based on Stereotypical Male-Female Roles." *Signs*, Vol. 16, No. 3, 1991, pp. 485–501. JSTOR, <http://www.jstor.org/stable/3174586>. Accessed 2 Apr. 2024.
18. Rose, Hilary. "Victorian Values in the Test-Tube: The Politics of Reproductive Science and Technology" in *Reproductive Technologies. Gender, Motherhood and Medicine*. Minneapolis: The University of Minnesota Press, 1987.
19. Ruddick, Sara. *Maternal Thinking. Towards a Politics of Peace*. New York: Ballantine Books, 1989.

Is the Problem of Subjectivity a Pseudo-Problem?

Madhu Mangal Chaturvedi

Abstract:

The hard problem of consciousness is to explain the subjective character of consciousness, which makes it recalcitrant to scientific explanation. Although, in the literature, there is no clear agreement on what this subjective character of consciousness is. However, it is the feature that resists the ontological reduction (Searle, 1992) of consciousness into brain processes. Following Kriegel (2005), this paper defines subjective character as the inner awareness of mental states. Further, the present paper aims to argue that the problem of subjectivity is to explain how inner awareness accompanies our mental states. Moreover, against the deflationary approach to the problem of subjectivity, an attitude in the analytic philosophy of mind inspired by Wittgenstein, the paper argues in line with Popper's (Popper, 2010) view that genuine problems require an interdisciplinary approach and that the problem of subjectivity is not a pseudo-problem but a genuine problem requiring philosophical synthesis of empirical data emerging from research in neurocognitive science, physics, and artificial intelligence.

Keywords: Consciousness, Kriegel, Subjectivity, Deflationary, Wittgenstein, Artificial Intelligence

Introduction

The hard problem of consciousness (Chalmers, 1996) is to explain the subjective character of consciousness that makes it ontologically irreducible (Searle, 1992) to brain processes. A phenomenon X is ontologically reducible when it can be explained without any residue in terms of some underlying phenomenon Y. For example, water is ontologically reduced to H₂O. In other words, water and H₂O are one and the same thing. We can contrast the ontological reduction with casual reduction. A phenomenon X is causally reduced to another phenomenon, Y, when the causal connection between X and Y is established. A phenomenon can be causally reducible without being ontologically reducible because cause and effect maintain their ontologically independent separate status. That is to say, we can say that consciousness is caused by the brain process, thus claiming that it is causally reducible to brain processes but not ontologically reducible. However, in the case of consciousness, its ontological and causal reduction to brain processes is hard to explain due to its subjective character. Like any natural phenomenon, brain processes are not intrinsically perspectival. In other words, it is possible to describe brain processes in non-perspectival, third-person terms (Baker, 2013). In contrast, it is the subjectivity of consciousness which gives it its

perspectival character. That is to say, the description of consciousness is incomplete without perspectival or first-person terms. Thus, the hard problem of consciousness is the problem of subjectivity. The question is, however, what is this problem of subjectivity of consciousness?

My aim in this paper is to address the following two questions:

- 1) What is the problem of subjectivity of consciousness?
- 2) Is the problem of subjectivity a pseudo-problem?

In answering the first question, I wish to argue that the problem of subjectivity is to explain how our neurophysiological process generates an inner awareness of mental states in general and not just of phenomenal states—experiences¹ with qualitative character. As Zahavi puts it: “Not only is what it is like to perceive red different from what it is like to *perceive* black, but what it is like to perceive *red* is different from what it is like to remember or imagine red. Moreover, we should not forget that we, in perceiving or imagining an object consciously, are aware of the object as appearing in a determinate manner to *ourselves*” (Zahavi, 2007, p. 67) (emphasis original).

As to the second question, following Popper (2010), I argue that the problem of subjectivity is not a pseudo-problem as it requires an interdisciplinary and cannot be dismissed as a mere linguistic puzzle. To support this, I briefly discuss some interdisciplinary research to explain consciousness, especially its subjective character.

The Problem of Subjectivity

The *prima facie* fact of our life is that we are conscious of this world. Being conscious means that “there is something it is like” to be us (Block, 2007; Levine, 2001; Nagel, 1974). No one thinks there is something like being a rock or a table. We have conscious experiences of this world through perceptions, sensations, thoughts, beliefs, and emotions. Subjectivity is common to all of our conscious experiences. Subjectivity means that all our experiences and mental states belong to a conscious subject. There is something it is like to have an experience, i.e., being the subject or owner of the experience.

In contemporary literature, when philosophers or scientists claim that consciousness is subjective, they mainly refer to phenomenal consciousness. Phenomenal consciousness is experience, which means there is something it is like to be in for the organism (Nagel, 1974; Block, 2007). The phrase “something it is like to be”, popularised by Thomas Nagel, is also interpreted as a qualitative character, qualitative feel or phenomenal properties of experience. According to Ned Block (2007), phenomenal consciousness is experience, phenomenally conscious properties are experiential, and phenomenally conscious states have phenomenal properties (Block, 2007, p. 166). Further, he adds that “[t]he totality of the experiential properties of a state are “what it is like” to have it” (Ibid.). For example, when we touch a red-hot iron rod, eat ice cream or listen to a melody, we experience a burning sensation and pain, a cold and sweet taste, or feel the harmony of the song in our ear or even the emotions,

¹Here we use the term ‘experience’ in the broadest possible sense.

respectively. Block also includes “thoughts, wants, and emotions” among the examples of phenomenal consciousness (Ibid.). Philosophers call conscious experience with qualitative character *phenomenal consciousness* (Block, 2002). This qualitative feel, technically called *qualia*, is the subjective entity that makes phenomenal consciousness irreducible and hence not amenable to scientific inquiry. This is what David Chalmers (1996) has termed “the hard problem of consciousness”. “The Hard Problem of consciousness”, according to Block, “is how to explain a state of consciousness in terms of its neurological basis” (2007, p. 111). In other words, it is difficult to explain why neural processes should give rise to any particular experience, for example, pain, and not experience of taste, or, for that matter, no experience at all.²

This idea of the irreducibility of qualitative character has an epistemological and ontological aspect. In its epistemological sense, the qualitative character of experience is irreducible because it is not accessible to anyone other than the subject of the experience. Access to our qualitative conscious experience is limited to us and exclusively from the first-person perspective. Since scientific methodology relies on the third-person description of the phenomenon under investigation, which includes the enhancement of powers of observation, description in third-person terms of the phenomenon, accessible only from the first-person perspective, is a challenge. On the one hand, the motivating factor for scientists’ attempt to naturalize phenomenal consciousness is the invariable link between phenomenal experience and brain processes, which is empirically verifiable and observable.

On the other hand, from an ontological point of view, subjective and qualitative experience ontologically seems to be so different from the brain, a lump of neural electrochemical matter, that it is difficult to accept that conscious experience is produced. This is the ontological aspect of the irreducibility of consciousness’s subjective and qualitative character. The irreducibility of phenomenal consciousness in its ontological sense challenges the worldview endorsed by the natural sciences. If natural science aims at a comprehensive theory of reality, it must also provide a suitable explanation for the phenomenon of consciousness. Despite various philosophical accounts of phenomenal consciousness, there is still something mysterious about this subjective character of consciousness that makes it difficult to analyse it with the help of the scientific method, which involves observation and experiment. Inevitably, philosophers and scientists interested in understanding the phenomenon of consciousness cannot ignore its essential feature: *subjectivity*.

Many contemporary philosophers argue that a mere physical description of reality may not be sufficient because it does not accommodate the subjective nature of consciousness. The problem of subjectivity, therefore, is precisely this: How can phenomenal consciousness

²Therefore, the sciences face a challenge to explain phenomenal consciousness by showing it as a subject-independent phenomenon. This is why B. Allan Wallace (2000), while enumerating the differences between science and religion, contends that “Science may be identified by its methodology of depersonalizing phenomena. That is, science attempts to account for a given phenomenon independently of the particular subject who observes it” (Wallace, 2000, p. 7). Hence, it is intriguing, especially when we try to explain the phenomenon of subjectivity without reference to the conscious subject. The natural Sciences, especially Physics, in the process of attaining objectivity, study the basic principles underlying all phenomena without emphasizing the role of the observer, thus making the observation and explanation of the phenomena completely objective. This emphasis on objectivity no doubt led the sciences to witness a great advancement and global consensus to their theories.

occur in the universe and yet remain irreducible to its fundamental physical constituents? In short, subjectivity is one last hurdle in providing a complete physicalist description of the world.

However, philosophers who argue for a representational theory of subjectivity believe that natural explanations of subjectivity are possible. These representational theories are naturalist theories, which may not directly reduce phenomenal consciousness's subjectivity to physical terms. It is to be noted that unless the representational theories provide a natural explanation of subjectivity, they cannot claim to have resolved the problem of phenomenal consciousness.

We can express the problem concerning the subjectivity of phenomenal consciousness by considering the following two questions:

1. What exactly do we mean by the subjectivity of phenomenal consciousness?
2. Can we explain the subjectivity of phenomenal consciousness in terms of non-mental features of the world?

In this paper, we shall not be concerned with the question (2). Rather, our focus will be on question (1). We observe that there are two different answers as a response to the first question:

- a. Subjectivity is a property of conscious experience, i.e., the qualitative character, or qualia, for short.
- b. Subjectivity is the subject's self-awareness³ of conscious experience.

Based on whether one supports the answer (a) or (b), as mentioned above, we can classify the contemporary theories of phenomenal consciousness into two groups:

- 1) Theories that characterize subjectivity concerning the subject of experience.
- 2) Theories that characterize subjectivity concerning the property of the experience, viz., its qualitative character.

Modern philosophers, such as Descartes (1984, 1996) and Kant (1781/1998), and the contemporary higher-order representationalists, such as David M. Armstrong (1968), William G. Lycan (1996), David M. Rosenthal (1986), Rocco J. Gennaro (1996; 2011), Peter Carruthers and Uriah Kriegel (2009), fall under the first group. On the other hand, the anti-reductionist philosophers, like Thomas Nagel (1974) and David Chalmers (1996; 2002), and the first-order representationalists, such as Fred Dretske (1995) and Michael Tye (1995; 2000; 2009), can be classified as belonging to the second group. However, the anti-reductionist theorists can be further classified into two subgroups. This classification is based on whether they support a reductionist or anti-reductionist view of subjectivity.

For instance, some philosophers from the second group, especially Nagel and Chalmers, claim that subjectivity as the qualitative character of experience cannot be reducible to the

³In this paper, we use 'self-awareness' and 'self-consciousness' as interchangeable terms.

physical. According to Nagel and Chalmers, the qualitative character makes consciousness irreducibly subjective. Against this view, I argue that subjectivity is not merely to be treated as having qualitative character because intentional states⁴ are also subjective in the sense that they belong to a conscious subject; in other words, the subject is aware of being in that state. For instance, Mary, the protagonist of Jackson's knowledge argument, lacks qualia all the while in her black-and-white room. However, she has intentional states, such as beliefs and thoughts, which she is aware of. Her beliefs and desires are still subjective because she is self-aware of being in them.

Nonetheless, while the first-order representationalists, like Dretske and Tye, agree that subjectivity is the qualitative character of experience, they argue for the claim that qualitative character is reducible in representational terms. First-order representationalists argue that all conscious mental states are representational, and their qualitative character is the same as their corresponding representational content. The strategy adopted by representational theorists is to show that subjective qualitative character is not something in the head but is identical with some external content to the mind. Thus, these theorists make the qualitative character property of the object in the external world. For example, the phenomenal experience of colour is the same as the surface reflectance property of the object being represented through visual perception.

Contrary to the first-order representational theorists, higher-order representationalists differentiate between qualitative character and subjective character and define subjective character as *self-awareness*. On the one hand, first-order representationalists consider only qualitative character as a subjective feature. On the other hand, higher-order representationalists provide separate theoretical explanations for qualitative character and subjectivity. Following Karen Neander (1998), we can call this strategy of higher-order representationalism the "division of phenomenal labour" (Neander, 1998, 412). Rosenthal, Lycan, Carruthers, and Gennaro advocate higher-order theories of subjectivity, with variations in their respective higher-order representational theories. Uriah Kriegel has further advanced the representational theories of subjectivity in developing a self-representational account of the subjectivity of phenomenal consciousness. The higher-order representationalists explain the subjectivity of mental states by an intentional relation between two numerically different mental states in which a higher-order mental state is directed at the first-order mental state. According to self-representationalists, however, the intentional relationship is built into the mental state. Thus, they argue that conscious mental states are self-directed, intentional mental states.

Based on the above discussion, we can say that the subjectivity of consciousness cannot be just a qualitative character of experience because intentional states such as beliefs and desires are also subjective. So subjectivity, as the ubiquitous feature of all conscious mental states, cannot just be confined to being a qualitative character. It is inner awareness which seems to make conscious mental states subjective. Further, as the higher-order theorists

⁴Some might want to point out that intentional states are dispositional states and are not always conscious. Whereas, subjectivity is a feature of conscious mental states only. In response, one can say that in case of intentional states like any other mental states, the question is how from among a huge number of unconscious mental states only a few become conscious.

⁵See Patricia Churchland (2002); Paul Churchland (1989, 1994); Dennett (1991); Penrose (1989).

have pointed out, first-order representationalism does not explain how some representations become conscious and subjective and others do not.

Is the problem of subjectivity a pseudo-problem?

This question is of the utmost importance since there is a tendency among philosophers and scientists to describe philosophical problems as pseudo-problems. It is common among philosophers and scientists to assume that the present philosophical problems are either conceptual muddles or are to be solved by the growing empirical knowledge of reality. This attitude is very much prevalent in the case of the mind-body problem. Most thinkers believe that the growing knowledge of neuroscience and cognitive science, or even a complete theory of physics, holds the key to solving the problem of consciousness. In this context, the following comment by Robert Kirk is worth pondering:

Nevertheless, if science alone will not solve all the problems, philosophy alone will not do it either. Some philosophical problems arise only because of our acquaintance with scientific and technological achievements. An example is provided by the work of Ludwig Wittgenstein, who died in 1952. Although research in artificial intelligence had started before Wittgenstein stopped working, and although Alan Turing had already published a significant non-technical paper on these matters in 1950, developments in computing were very far from the stage they have reached today. Those developments in both hardware and software raise possibilities which Wittgenstein just did not consider... (2003, pp. 5-6)

Kirk's point seems to be that empirical research is always a work in progress, and it is always possible to discover such facts about the functioning of our universe, including our mind, which might give rise to new philosophical problems. For instance, progress in artificial intelligence raises the question of whether any complex information processing system, such as a computer which displays intelligence akin to humans yet better, is conscious. Or is it ethically right to create humanoids which are conscious and thus can feel pain? In other words, progress in science and philosophical problems might go hand in hand. Whereas it is possible that scientific discoveries might generate philosophical problems, philosophical problems might have scientific solutions.

However, it has become fashionable in post-Wittgenstein analytic philosophy to argue that philosophical problems result from linguistic nonsense. This way of doing philosophy involves contrasting common linguistic uses of terms with their philosophically problematic uses. According to the analytic school of thought, the task of philosophy is to dissolve the so-called philosophical problems by pointing out the misuse of language. This exercise is supposed to enlighten those confused minds who think they are dealing with some real ontological problem but are simply misusing concepts. For example, when Wittgenstein says, "[t]he human body is the best picture of the human soul" (*Philosophical Investigations* 25), what he is referring to is that the concept of the soul does not figure in our attitude towards others in our everyday dealings. We assume there must be something more than the body to which we ascribe psychological predicates. However, nothing in our mundane affairs warrants such a view.

Consider, for example, Wittgenstein's analysis of our use of the verb 'to know'. According to Wittgenstein, using the verb 'to know' is not valid in the case of one's mental state. Any knowledge claim makes sense only when there is some scope for doubt or error. However, since there is no possibility of doubt or error through misidentification as far as knowledge of one's mental state is concerned, there is no question of making a knowledge claim. To say that 'I know I am in pain' is useless. First-person experiences are immune from error through misidentification; hence, there is no need to make a knowledge claim.

It would be wrong to call the problem of consciousness merely a philosophical problem. However, at the same time, it is not only a problem for the sciences. The problem of consciousness is interdisciplinary. Any problem is interdisciplinary because one can resort to resources available in any discipline other than the discipline under which the traditionally conceived subject matter of the problem falls. The interest shown by some distinguished Nobel Laureate scientists, e.g., Francis Crick, Gerald Edelman and John Eccles, in the problem of consciousness is ample proof that it is not just a philosophical or conceptual problem. However, philosophers can provide genuine contributions in bridging the gaps between interdisciplinary research and consciousness. A philosopher can point out conceptual confusion and bad arguments.

The problems of consciousness and subjectivity are genuine because these are not just philosophical problems but also concern other disciplines like neuroscience, physics, artificial intelligence, psychology, and even sociology. This is why interest in the problem has not diminished over the years. As Karl Popper suggests, "*Genuine philosophical problems are always rooted in urgent problems outside philosophy, and they die if these roots decay*" (Popper, 2010, p. 95; italics original). The problem of consciousness, in Popper's sense, is a genuine problem since it requires a complete understanding of the secrets of the whole universe. This means that any problem with which any discipline deals with the unfolding of nature's secrets forms the 'root' of philosophical problems like consciousness. Moreover, Popper suggests that philosophers take a holistic, pragmatic approach to solving philosophical problems like the problem of subjectivity. He writes:

In their efforts to solve them, philosophers are liable to pursue what looks like a philosophical method or technique or an unfailing key to philosophical success. However, no such methods or techniques exist; in philosophy, methods are unimportant; any method is legitimate if it leads to results capable of being rationally discussed. What matters is not methods or techniques but a sensitivity to problems and a consuming passion for them, or, as the Greeks said, the gift of wonder. (Popper, 2010, p. 95)

The problem of subjectivity requires us to pause for a moment and wonder about the nature of our existence in this world. It is also noteworthy that, as Popper says, there might not be a fixed methodology for solving the problem of subjectivity. However, to discuss it rationally, we must look at it without bias. For instance, the recent work by Solms and Friston (2018) and Solms (2019, 2021) also suggests that an interdisciplinary approach might work to explain the subjective character of consciousness. They believe that the physicalist approach

of causal reductive explanation is not appropriate. Their approach to the problem is based on a combination of neurophysiological and thermodynamical considerations of self-organizing living systems. To put it very briefly in simple terms, their basic idea is that conscious living systems maintain their homeostatic boundaries by free energy minimization, which is the measure of surprise in the environment where they have to survive by predicting the plausible causes of their sensory experience to take necessary action in return. The different feelings of pleasure and unpleasure associated with sensory experiences are subjective aspects of neurophysiological mechanisms in the upper brainstem as the function “decreases and increases in expected uncertainty..., respectively” (Solms, 2019, p. 1).

Conclusion

In concluding this paper, it is essential to reaffirm that the problem of subjectivity is not a pseudo-problem but a significant and genuine philosophical challenge. Our exploration has illuminated the intricate relationship between consciousness and its subjective character, emphasizing that understanding how inner awareness accompanies our mental states is crucial for a comprehensive account of consciousness. Like any genuine problem, the solution to the problem of subjectivity needs the synthesis of insights from neurocognitive science, physics, and artificial intelligence, which is vital for addressing the complexities of subjectivity. This synthesis will not only enrich our understanding but also reinforce the notion that subjective experiences are integral to the human condition. As we move forward, it is imperative to continue this dialogue across disciplines, fostering collaboration that may one day bridge the gap between the subjective nature of consciousness and objective scientific inquiry. The quest to unravel the enigma of subjectivity remains an essential endeavour, one that challenges us to rethink our assumptions about consciousness and its place within the broader framework of reality. Thus, rather than dismissing the problem as a mere linguistic puzzle, we must embrace it as an opportunity for deeper philosophical exploration and scientific inquiry.

School of Philosophy & Culture
Shri Mata Vaishno Devi University
vijai.madhu@smvdu.ac.in

References

1. Armstrong, D. M. 1968. *A Materialist Theory of Mind*. London: Routledge and Kegan Paul.
2. Baker, L.R. 2013. Can Subjectivity be Naturalized? *International Studies in Philosophy*. Vol.1 No. 2. Pp. 15–25.
3. Block, N. 2002. Concepts of Consciousness in David Chalmers (ed.). *Philosophy of Mind: Classical and Contemporary Readings*. New York: Oxford University Press.
4. Block, N. 2007. *Consciousness, Function, and Representation: Collected Papers vol. 1*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
5. Block, N., O. Flanagan, and G. Güzelde, eds. (1997). *The Nature of Consciousness*. Cambridge, MA: The MIT Press.
6. Carruthers, P. 2000. *Phenomenal Consciousness: A Naturalistic Theory*. Cambridge: Cambridge University Press.
7. Carruthers, P. 2005. *Consciousness: Essays from Higher-order Perspective*. Oxford: Clarendon Press.
8. Chalmers, D. J. 1996. *The Conscious Mind: In Search of a Fundamental Theory*. Oxford: Oxford University Press.

9. Churchland, Patricia S. 2002. *Brain-Wise: Studies in Neurophilosophy*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
10. Churchland, P. M. 1984. *Matter and Consciousness*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
11. Churchland, P. M. 1994. *The Engine of Reason, the Seat of the Soul: Philosophical Journey into the Brain*. Cambridge Mass: The MIT Press.
12. Dennett, D.C. 1991. *Consciousness Explained*. Tavistock: Penguin Books.
13. Descartes, R. 1984. *The Philosophical Writings of Descartes* vol. 2 John Cottingham et al. Cambridge: Cambridge University Press.
14. Descartes, R. 1996. *Meditations on First Philosophy: With Selections from the Objections and Replies* translated and Edited by John Cottingham. Cambridge: Cambridge University Press.
15. Dretske, F. 1995. *Naturalising the Minds*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
16. Dretske, F. 1993. Conscious Experience. *Mind* 102: 263–283.
17. Gennaro, R. 1996. *Consciousness and Self-consciousness: A Defense of HOT Theory of Consciousness*. Amsterdam: John Benjamins.
18. Gennaro, R. 2011. *The Consciousness Paradox: Consciousness, Concepts, and HOTs*. Cambridge, Massachusetts: A Bradford Book/The MIT Press.
19. Kant, I. 1998. *Critique of Pure Reason* Paul Guyer and Allen W. Wood (Trans.). Cambridge: Cambridge University Press.
20. Kirk, R. 2003. *Mind and Body*. Chesham: Acumen Publishing Limited.
21. Kriegel, U. 2009. *Subjective Consciousness*. New York: Oxford University Press.
22. Lycan, W.G. 1990. What is the “Subjectivity” of the Mental *Philosophical Perspectives*, Vol. 4, Action Theory and Philosophy of Mind, pp. 109–130.
23. Lycan, W. G. 1996. *Consciousness and Experience*. Cambridge, MA: MIT Press.
24. Nagel, T. 1974. What Is It Like to Be a Bat? *Philosophical Review* 83: 453–450.
25. Neander, K. 1998. The Division of Phenomenal Labour: A Problem for Representational Theories of Consciousness. *Philosophical Perspectives*, 12, 411–434. <http://www.jstor.org/stable/2676156>
26. Neisser, J. 2017. What Subjectivity Is Not. *Topoi* 36(1):41–53. DOI 10.1007/s11245-014-9256-5
27. Penrose, R. 1989. *Emperor’s New Mind: Concerning Computers, Minds and the Laws of Physics*. Oxford: OUP.
28. Popper, K.R. and J.C. Eccles. 1977. *The Self and Its Brain*. Berlin: Springer International.
29. Popper, K. R. 2010. *The Logic of Scientific Discovery* (Special Indian Edition). London and New York: Routledge.
30. Rosenthal, D. M. 1986. Two Concepts of Consciousness. *Philosophical Studies* 49:3: 329–359.
31. Searle, J. 1992. *The Rediscovery of Mind*. Cambridge, Mass: The MIT Press.
32. Solms, M., and Friston, K. 2018. How and why consciousness arises: some considerations from physics and physiology. *J. Conscious. Stud.* 25, 202–238.
33. Solms, M. 2019. The Hard Problem of Consciousness and the Free Energy Principle. *Frontiers in Psychology*. vol. 9:2714. pp. 10–16. doi: 10.3389/fpsyg.2018.02714
34. Solms, M. 2021. *The Hidden Spring: A Journey to the Source of Consciousness*. London: Profile Books.
35. Tye, M. 1996. *Ten Problems of Consciousness*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
36. Tye, M. 2002. Representationalism and the Transparency of Experience. *Noûs* 36 (1):137–51.
37. Tye, M. 2009. *Consciousness Revisited: Materialism Without Phenomenal Concepts*. Cambridge, Mass.: The MIT Press.
38. Wallace, B. A. 2000. *The Taboo of Subjectivity: Toward a New Science of Consciousness*. New York: Oxford University Press.
39. Wittgenstein, L. 2001. *Tractatus Logico-Philosophicus*, D. F. Pears and B. F. McGuinness (Trans.) (London and New York: Routledge).
40. Wittgenstein, L. 2001. (1958/1986), *Philosophical Investigations*, G. E. M. Anscombe (Trans.) Oxford: Basil Blackwell.
41. Zahavi, Dan 2007. Subjectivity and the First-Person Perspective. *The Southern Journal of Philosophy* Vol. XLV. 66–84.

Integrating Digital Transformation, Enterprise Architecture and Digital Leadership for Sustainable Development in India's Higher Education System

Neelam Tripathi¹, Meenakshi Harraw Verma²

Abstract:

Education plays a significant role in shaping personalities, characteristics and behaviour of individuals. In recent times, the higher education sector has attained huge development due to rapid advancement in technologies. The digital transformation in higher education sector comprises the strategic adoption of digital technologies to uplift learning, teaching, administrative and research process. Though, effective digital transformation requires a holistic technique that aligns technology initiatives with firm goals and priorities. Enterprise Architecture (EA) provides a structured framework for planning and executing systems that supports institutions purposes. Additionally, digital leadership is necessary for driving digital transformation and ensuring sustainable growth in higher education. The problem lies in the previous studies, which mostly focused on isolated aspects of digital transformation, EA and digital leadership. Hence, the present study aims to address this research gap through assessing the factors influencing digital transformation in the higher education sector, evaluating the components of EA for aligning technology with institutional objectives and scrutinizing the role of digital leadership in adopting these technologies effectively. Applied a qualitative research methodology and analyses existing theories and literature. The outcomes revealed factors highlighting governmental reforms, intensive use of technology, open education resources and personalizing learning approaches as drivers for enhancing educational quality. Emphasized the components of EA driving organizational success and enabling effective governance. The study also identified the need for supportive culture, strong leadership, efficient management and faculty readiness to improve educational experience. Furthermore, the current study offers a valuable recommendation for achieving sustainable growth in India's higher education landscape.

Keywords: Digital transformation, Enterprise Architecture, Digital Leadership, Higher Education, Digital Revolution, E-Leadership.

I. Introduction

1.1 Theoretical Background

The rapid advancements in digital technologies have significantly transformed various systems leading to rapid growth. In the world, India has the largest higher education

structure (Joshi & Ahir, 2019). The digital India movement established by Indian government highlights the significance of digital knowledge and circulated digital tools to resolve the digital gap in education industry (Mir, 2019). The digital technologies are employed in higher education sector to augment students learning practice. The digital transformation has the capacity to nurture creativity and innovation in education industry (Mohamed Hashim, Tlemsani, & Matthews, 2022). The digital transformation has made the learning process amenable and simple (Shaikh, Umrani, Jumani, & Laghari, 2019). The digital advancements like AI (Artificial Intelligence), ML (Machine Learning) and VR (Virtual Reality) supports institutions to make cooperative and immersive learning circumstances. The E-learning platforms such as LMS (Learning Management System) has transformed the delivery of education in higher education sector. This digital transformation and innovation in learning and teaching procedure has emphasized the positive impact in higher education industry (Gupta & Gupta, 2020).

Enterprise Architecture (EA) is the activity that aligns the business purpose and institutions actions with digital technologies for achieving the vision (Tjong, Adi, Kosala, & Prabowo, 2019). Moderately, EA drives to the conception of data and investigation of information that can aid to make tactical decisions for Higher Education Institutions (HEI). Finally, for supporting sustainable learning and for satisfying varied educational requirements EA offers consistent infrastructure to HEI (Masoume Saraei, 2023). EA represents an amalgamation for various architectural structures like technology architecture, information system, information architecture and business architecture (Girsang & Abimanyu, 2021). The education infrastructure has to incorporate cloud computing resources, data centres and efficient servers to store, process and obtain large amount of data. The integration of Information and Communication Technology (ICT) structures like Student Information System (SIS), LMS and Enterprise Resource Planning (ERP) permits seamless administration of educational tasks, admissions, exam process and avail academic resources (Silva-López, Miguel, Rodríguez, Chávez, & Del Valle, 2017).

Digital leadership is regarded as the practice interfered by the usage of digital technologies to make changes in behaviour, attitude, performance and thinking of individuals and organizations (Soon & Salamzadeh, 2021). Digital leadership is considered as the utilization of technology and digital tools to encourage higher educational institutions development and augment its performance (Macatuno-Nocom, 2019), (Petry, 2018). The three core features in digital leadership are firm must be digitalized, leaders have to comprehend people and leaders must amass and drive tech trends (Brett & Brett, 2019). The chief elements to accomplish digital leadership are agility, participation, openness and network. As well, Digital leadership is regarded as a tool that encourages digital learning and enforces digital literacy in higher education sector (Ghamrawi & M. Tamim, 2023).

1.2 Significance of the Study

The present study embraces significant importance in providing crucial insights into digital transformation within higher education sector of India. This holistic approach mentions

factors influencing digital revolution in educational institutions to uplift the quality of education and administrative process. Since, digital technologies aids to learn concepts from anywhere and anytime. Subsequently, EA also paves universities to optimize educational sources and enhance the operational efficiency with a seamless amalgamation across various departments. This systematic approach permits universities to make informed decision about technology investments, emphasize initiatives and introduce a scalable and sustainable environment. This integrated approach accelerates the digital maturity of educational sector and nurtures culture of excellence, collaboration and constant improvement that drives better sustainable growth in India than prevailing cases.

1.3 Problem Identification

It is embraced that higher education sector has attained a significant transformation in enhancing further learning experiences for students. Hereby, one of conventional studies (Singh & Mansotra, 2019) has considered only cloud computing adoption in school education system of India. In that purpose, the comprehensive digital transformation in the higher education system of India is regarded in the present study. Many HEI were practicing EA in coordinating their vision, purpose and requirements within digital technologies to augment business process and to aid improved decisions. Another, traditional research (Alghamdi, 2021) has concentrated on processes, principles, success factors, agility and challenges of EA in higher education. Though, several components of EA for orienting the digitization with organizational purpose has been disregarded. The education sector requires digital leaders to guide and direct the members regarding the utilization of technologies for learning purpose.

1.4 Objectives Of The Study

The objective of the research is to evaluate the amalgamation of digital revolution, EA and digital leadership for a sustainable development of India's higher education system. The main purpose of the present study are as follows,

- To overview the factors influencing the digital transformation in the higher education sector
- To evaluate the components of the enterprise architecture for aligning the technology with the firm objectives
- To assess the digital leadership factors for the effective implementation of the digital technologies in the higher education

1.5 Paper Organization

Section 1 contemplates digital transformation, leadership and EA of higher education system of India. For that, theoretical background, significance, objectives of research's work are discussed. Section 2 reviews the preceding studies about research purpose. Section 2 describes the gaps from prior researches. Section 3 demonstrates the research methodology used in proposed study. Section 4 reveals the results of executed analysis. Section 5 elucidates a prompt review on prevailing researches and present study. In Section 6, the Study limitation

will be defined. Finally, Section 7 emphasizes conclusion, implication and future direction of the current study.

2. Literature review

2.1 Digital Transformation Factors In Higher Education Sector

The novel way of education incorporates advancement of Information and Communication Technology (ICT). Because, these digital transformation in education sector has huge impact on students, staffs and universities. The preceding study (Chatwal, 2019) comprehended digitization procedures in Indian education structure and their effect on institution. The data was gathered from 100 teachers employing in Delhi College and student's parents via online approach. The data has been congregated through structured questionnaire. The outcomes identified that, through digital transformation, money, effort and time of the Institutions can consumed lower.

While, adoption of digital technologies in education sector has revolutionized schooling standards. The prevailing study (Mohan) was based on an exploratory and diagnostic research. The data has been obtained from secondary sources via websites, journals, articles, magazines, books and literature review. The outcomes identified that, the education sector in India has evidenced the increased usage of technologies like VR, AI and Cloud Computing. Therefore it concludes, upcoming technologies in higher education can be enriched through using Chatbots, ML, and AI, big data, VR, AR, Block chain and IOT.

The landscape of higher education is changed due to implementation of digital learning technologies and its establishment within institution. Despite the increasing adoption, many somehow face challenges in integration. The conventional study (Alenezi, 2023) examined the role of digital learning technologies in improving teaching and learning experience. In addition, explored the influence of leadership on the successful implementation of digital initiatives on higher education. Employed qualitative approach and analysed case studies and existing literature. Found, successful digital transformation depends on effective leadership, culture which adopt innovation and robust infrastructure. Also highlighted institutions that do partnerships and offer comprehensive training for educators are more likely to achieve in digital initiatives.

2.2 Enterprise Architecture Components

EA is a technique that cause amalgamation and coherence in the procedure and practices of varied academic and minimizes the cost and enhances cost creating practices in the institution. EA plays a critical role in every organization with advanced innovations. The traditional study (Sandkuhl & Lehmann, 2017) has investigated the role of EA & portals in higher education industry. The study has adhered an explorative research design through integrating diverse results from several industries. Concluding, EA offers excellent support in enhancing advancements in higher education. Further, portals offers an appropriate aid at operating digital transformation.

EA is crucial for effective functioning and operation of institutions. The conventional research (Alamri, Abdullah, & Albar, 2018) has examined the importance for introducing EA in the higher education institutions. EA benefits, tools, frameworks, historical advancements and components were investigated. The study utilized SWOT to offer applicable EA for any learning sector in a simple way. The results revealed that, adoption in EA is beneficial practice and EA is effective with prime strategy usages in education sector. In accord with, it is suggested that Digital model has to be altered with appropriated requirements and practitioners has to build a unified, entire and simple, EA for any higher education organization.

The role of agile EA in supporting digital transformation initiatives are crucial within HEIs. The existing study (Sraruch, Wannapiroon, & Nilsook, 2023) examined how EA facilitates digital transformation in higher education as well as its factors. Employed qualitative and collected data using semi-structured interview question. Findings revealed agile EA has a significant role in enabling transformation through offering an adaptive and holistic framework. The factors are effective communication, skilled workforce, a collaborative culture and strong leadership. Concludes adopting EA in institution can improve responsiveness and agility to stakeholder needs.

2.3 Digital Leadership Factors

In digital landscapes, efficient leadership is necessary for nurturing improvement and verifying technology augmentation with administration, leaning and teaching. The prior study (Desmaryani et al., 2022) analysed the impact of private university through digital leadership and information system success model application. The study is based on quantitative design. The data was congregated from 323 agriculture learners. The outcomes proven that digital leadership's significant influence on information system success model has detected that service quality, system quality and information quality can have a crucial impact on users' fulfilment on digital learning structure.

The prevailing study (Antonopoulou, Halkiopoulou, Barlou, & Beligiannis, 2020) determined to explore the effective leadership in digital transformation and identify the association among leadership style used and outcomes. Utilized quantitative research approach and collected data from 28 heads of different department. Outcome of the study revealed, effective digital leadership results and transformational leadership (Collaboration, adaptability, inspiring and empowerment) has positive impact, the study highlighted the significance of transformational leadership to foster effective digital leadership with higher education institution.

Also, another conventional study (Msila, 2022) has examined the effective leadership tactics for efficient digital transformation in the chosen institutes. The study adopted qualitative research design. The data has been gathered from ten respondents from ten higher education organizations in South Africa. The data has been congregated via semi-structured interview questions. The results detected that digital vision, ability to manage,

leading change, consistent support aid, collaboration, innovativeness and digital literacy are core factors in digital leadership for higher education sector.

2.4 Research Gap

Although, the existing studies have concentrated in examining digital transformation in higher education sector, there exist a possibilities for further progress.

- For instance, the research (Chatwal, 2019) has focused commonly on education sector. The specific examination of primary, secondary and higher education were disregarded.
- On the other hand, the study (Mohan) has ignored the factors of digital transformation.
- Additionally, the study (Sandkuhl & Lehmann, 2017) examined the EA in higher education however, it has omitted EA components.

Despite the various strives of the conventional researches, the systems have negotiated significant research methods.

- The study (Desmaryani et al., 2022) utilized quantitative approach wherein, method disregards to perceptions and opinions from respondents.

Therefore, there require shed on opinions and thoughts for gaining distinct insights. Also, there are limited studies on enterprise architecture, digital transformation and digital leadership in higher education section of India. Thus proposed study investigates digital transformation & digital leadership factors and EA components in higher education sector of India.

3. Methodology

3.1 Study Area

The present study focus on integration of digital transformation, EA and digital leadership in higher education system of India for sustenance. The research congregates data through secondary sources. Study targeted to discover these elements that synergized to upshot innovation, effectiveness and efficacy within India's higher education system. The secondary data from prevailing research works, documents and theories are collected.

3.2 Research Design

The proposed study embraced qualitative research technique. Qualitative research design is regarded as multi-approach that incorporates interpretative and realistic approach. This technique utilizes various methods such as case study, interview, historical and interactional data and herein, themes and solutions are associated to research purpose. The data collection process is organized into three varied and comprehensible steps.

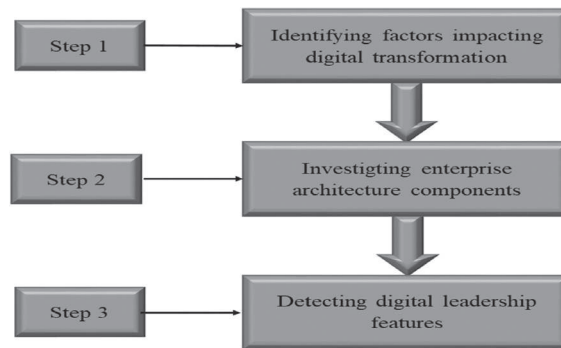


Figure 1. Research Methodology (Source: Author's own creation)

Figure 1 illustrates the methodology for proposed research. At first, factors for digital transformation in higher education industry is attained through comprehending reviews from relevant and prevailing studies. It enables the effect of digital revolution in educational sector. Then, detailed investigation is performed to explore enterprise structure's elements. For that, scholarly sources and theoretical foundations are used for in-depth sources that align technology within firm infrastructures. And, features of digital leadership for effective application from digital technologies involved in higher education sector is derived from theoretical perspectives and documented knowledge.

3.3 Qualitative analysis

The proposed study utilizes qualitative analysis, so it gathers data via interviews and observation from experiences, attitudes and opinions of subjects. Hence, data is investigated via classifying the data to the valuable insights. The present work performs qualitative analysis through thematic analysis upon the collected data in order to analyse the integration of digital transformation, EA and digital leadership for a sustainable growth of higher education system of India.

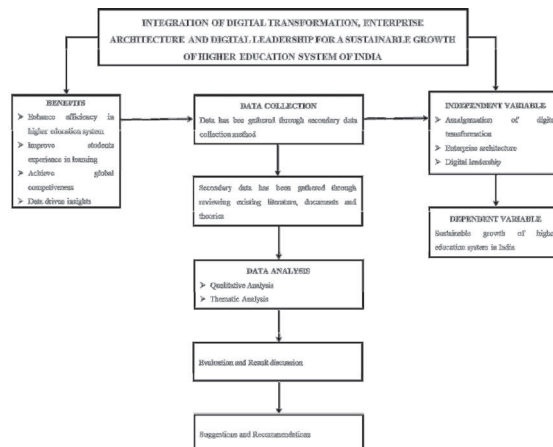


Figure 2. Research Design (Source: Author's own creation)

The Figure 2 illustrates the research design of study. Primarily, the data is collected through secondary data collection method via several secondary sources such as existing research works, documents and theories. Later, qualitative analysis is performed through thematic approach to inspect the congregated data. The results achieved through the investigation is inferred and deliberated. Finally, in accordance with study outcomes, relevant recommendation and suggestions will be offered.

3.4 Ethical Considerations

The data collected from secondary sources are ensured that is anonymised and does not include the privacy of individuals or institutions in the higher education sector. The gathered data are protected from unauthorized access, the sensitive information is secured to prevent misuse or data breaches. The cultural nuances and sensitivities are considered while collecting data related to the higher education system in India. The diverse perspectives are respected and ensured in present research.

4. Results

The results of the study are concise in three main areas: Synthesis of digital transformation factors for HEI, the components of EA in HEI and synthesis of digital leadership factors for digital transformation.

A. Synthesis Of Digital Transformation Factors For HEI

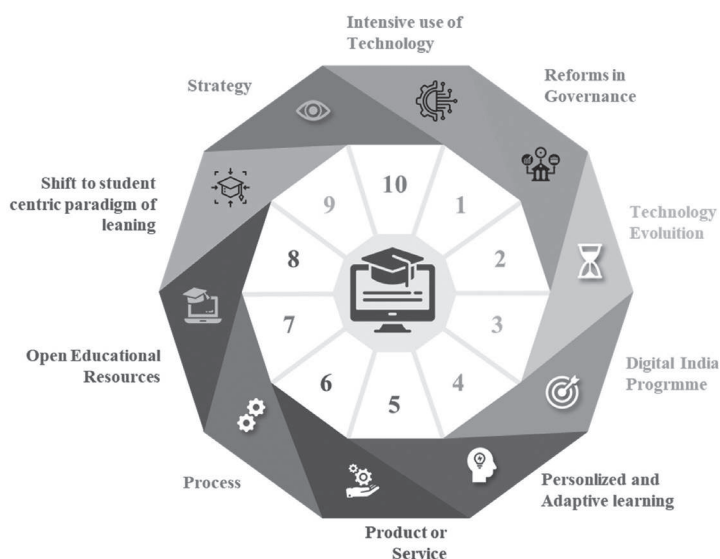


Figure 3. Factors for digital transformation in HEI (Source: Author's own creation)

The concept Synthesis of Digital Transformation is obtained from analysing 15 appropriate research works. The proposed study has identified the factors that impacted digital transformation in higher education sector. The outcome of this study unveils a multitude of factors that plays a crucial role in driving digital transformation within higher education sector. One of the chief features identified is the intensive use of technology (Iivari, Sharma,

& Ventä-Olkkonen, 2020),(García-Morales, Garrido-Moreno, & Martín-Rojas, 2021). The technology at learning and open educational resources demonstrated the use of digital technologies in education sector (Akour & Alenezi, 2022),(Abad-Segura, González-Zamar, Infante-Moro, & Ruipérez García, 2020). Governmental reforms also placed in digital transformation (Jackson, 2019),(ElMassah & Mohieldin, 2020). The shift personalized & adaptive learning, student centric paradigm also another causes for digital transformation in higher education sector (Giang, Hai, Tu, & Tan, 2021; Mohan). The Digital India programme has fuelled the need to enhance digitalization in the delivery of educational services. Furthermore, the process, strategy (Mohamed Hashim et al., 2022), product and services (Morakanyane, O'Reilly, McAvoy, & Grace, 2020), (Sousa & Rocha, 2019) are critical factors influencing the pace and extent of digital transformation in higher education (Chatwal, 2019). The open education resources are the factors the impacts digital transformation in HEI (Bonfield, Salter, Longmuir, Benson, & Adachi, 2020),(Huang et al., 2020). Resulting, institutions having challenges and chances in digitalization to enhance quality and educational relevance among students.

B. The Components Of EA In Higher Education Sector



Figure 4. Enterprise Architecture Development (Source: Author's own creation)

Seven research works who screened EA frameworks within institutions is elected. The study concentrated the efficiency in structuring technology systems to support and align with firm's mission. The framework explicates that, by having a structured architecture in place, firms can ensure technology systems aligning to strategic goals and objectives. Suggested that active engagement and coordination between IT teams, business units, and senior management are dependable. In order that, building EA encompasses vision, Business Architecture (BA), Information system architecture (IA), Technology Architecture (TA) (Pattij, van de Wetering, & Kusters, 2022) (Lan, Scrimin, & Moscardino, 2020). After, opportunities and solutions to be involved. Thirdly migration planning, which is a process of planning and implementing IT infrastructure, applications and data from one circumstances to another. Essentially, effective governance (Anthony Jnr, 2021), (Afarini & Hindarto, 2023) mechanisms are essential in overseeing the maintenance for architecture framework (Sandkuhl & Lehmann, 2017).. Its function is to aid and establish the executed EA as a flexible framework (Pattij, Van de Wetering, & Kusters, 2020).

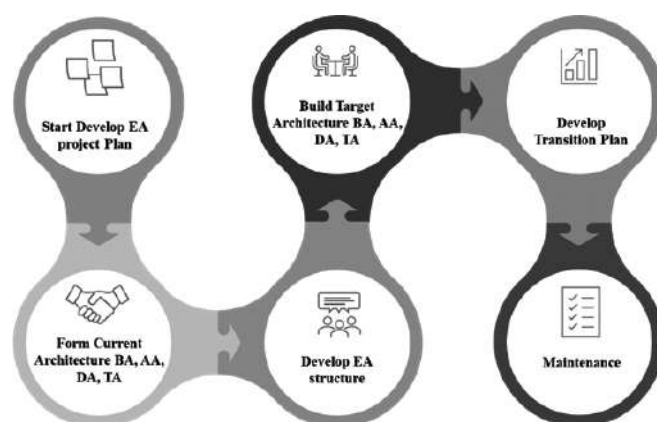


Figure 5. Enterprise Architecture in Higher Education Sector (Source: Author's own creation)

To build EA in higher education sector, constructing a plan and develop EA structure is to be done and it comprises goal, vision and mission. And, developing architecture is not exceptional in both business and informational aspects. It permits in acquiring ideas across system components and prevailing basis. Also unveils the concerns, opportunities and challenges in the framework. The study emphasized the need for continuous monitoring and evaluation of the EA (Alamri et al., 2018) whereas, results underscore the importance of well-structured EA in effective use on technology advances with strategic planning. By application, firms can drive betterment in business success.

C. Synthesis Of Digital Leadership Factors For Digital Transformation

Effective implementation on digital technologies in HEI involving Digital Leadership factors recognized from 11 suitable research documents. Strong leadership, vision, innovation are required for driving change in education sector (Benitez, Arenas, Castillo, & Esteves, 2022). Moreover, the study highlights the significance in faculty readiness and training by leveraging digital devices at teaching and learning procedures (de Araujo, Priadana, Paramarta, & Sunarsi, 2021). The proposed study found that a supportive and collaborative culture, characterized by open communication and a willingness to embrace change in institutions (Erhan, Uzunbacak, & Aydin, 2022) (Eberl & Drews, 2021) (Sarraz, Ivascu, Abdullah, Ozturk, & Tariq, 2022). The efficient management and digital literacy are key aspects on digital leadership that aligns digital innovation in higher education system (Turyadi, Zulkifli, Tawil, Ali, & Sadikin, 2023), (Anak Agung Sagung & Sri Darma, 2020). Studies have underscored the critical role of digital leadership in enhancing the educational experiences (Msila, 2022), (Abbu, Mugge, Gudergan, & Kwiatkowski, 2020).

5. Discussions

Proposed research demonstrates the integration of digital transformation, EA and digital leadership for sustainable growth in higher education sectors from India. The systematic

analysis reveals the exclusive depiction on digital transformation impact in higher education sector. The study revealed factors of digital transformation that efficiently encompassed in digital innovations at higher education sector.

The prevailing research (Tungpantong, Nilsook, & Wannapiroon, 2022) detected the components of digital transformation in higher education organizations through executing confirmatory factor analysis. The data has been collected from 300 individuals via online questionnaire regarding the factors impacting the victory of information systems. The results unveiled the factors as technology, data, people, product & services, process and strategy. In present study, factors are based with digital conversion in higher education sector. So, inclusive determinants were discovered. Herein, intensive use of technology, reforms in governance, digital India programme, personalization learning, strategy, process, products & services, open study resources and student centric approach are core factors that impacts digital transformation in the higher education sector.

The preceding study (Suryadi, 2023) evaluated the execution of digital leadership in world Class University in Malang city and performed quantitative research. The results exposed that, crucial differences in the implementing effective digital leadership. The academic community in Malang city has strongly accepted that their leaders required to offer information system to achieve digital leadership in world-class institutions. The current study specifically relied the factors with pointing higher education sector. From that, vision, management, digital literacy are a chief factors for digital leadership in effective implementation on higher education.

6. Limitations

Even though, research can be valued for indulging sustainable growth in higher education sector through digital methods. The study is limited through specific focus on India is concentrated throughout the research as indicating to higher education betterment. Hence so, it lacks in generalizability.

7. Conclusion

The convergence of digital transformation, EA and digital leadership has significant capacity for fostering sustainable growth and innovation within higher education structure of India. Reflecting on this synergy, it has become evident that through utilizing the power of digital technologies, implementing effective structure and robust leadership, institutions can improve their agility, competitiveness and relevance in the digital times. Digital transformation provides opportunities to shift learning and teaching practices, augment operation efficacy and enlarge access to education. The adoption of recent advancements allows universities to create personalised learning experience which keep pace with evolving market trends. Furthermore, a well-structured EA offers a cohesive framework that aligns people, processes and systems thereby improving interoperability across departments and functions. As we consider the results of the current study, it is clear that the implications extend beyond higher education, similar frameworks can be employed in various sectors.

Future studies can explore these application in diverse locations and context to deepen the understanding of how these principles can offer comprehensive knowledge and transformative change across different industries. This reflective approach invites current inquiry into the dynamic interplay among leadership, organizational structure and technology in shaping the future of education.

Department of Education and Humanities,
Jigyasa University Dehradun, Uttarakhand, India.

¹research.ugc.neelam@gmail.com

²heads.cwa1718@gmail.com

References:

1. Abad-Segura, E., González-Zamar, M.-D., Infante-Moro, J. C., & Ruipérez García, G. (2020). Sustainable management of digital transformation in higher education: Global research trends. *Sustainability*, 12(5), 2107.
2. Abbu, H., Mugge, P., Gudergan, G., & Kwiatkowski, A. (2020). *Digital leadership-character and competency differentiates digitally mature organizations*. Paper presented at the 2020 IEEE international conference on engineering, technology and innovation (ICE/ITMC).
3. Afarini, N., & Hindarto, D. (2023). The Proposed Implementation of Enterprise Architecture in E-Government Development and Services. *International Journal Software Engineering and Computer Science (IJSECS)*, 3(3), 219-229.
4. Akour, M., & Alenezi, M. (2022). Higher education future in the era of digital transformation. *Education Sciences*, 12(11), 784.
5. Alamri, S., Abdullah, M., & Albar, A. (2018). Enterprise architecture adoption for higher education institutions. *International Journal of Simulation: Systems, Science and Technology*, 19(5), 16.11-16.18.
6. Alenezi, M. (2023). Digital learning and digital institution in higher education. *Education Sciences*, 13(1), 88.
7. Alghamdi, A. (2021). *Enterprise Architecture in Higher Education: Processes, Principles, Challenges, Success Factors and Agility*. Université d'Ottawa/University of Ottawa,
8. Anak Agung Sagung, M. A., & Sri Darma, G. (2020). Revealing the digital leadership spurs in 4.0 industrial revolution. *Asri, AASMAN, & Darma, GS, Revealing the digital leadership spurs in*, 4, 93-100.
9. Anthony Jnr, B. (2021). Managing digital transformation of smart cities through enterprise architecture—a review and research agenda. *Enterprise Information Systems*, 15(3), 299-331.
10. Antonopoulou, H., Halkiopoulos, C., Barlou, O., & Beligiannis, G. N. (2020). Leadership types and digital leadership in higher education: Behavioural data analysis from University of Patras in Greece. *International Journal of Learning, Teaching and Educational Research*, 19(4), 110-129.
11. Benítez, J., Arenas, A., Castillo, A., & Esteves, J. (2022). Impact of digital leadership capability on innovation performance: The role of platform digitization capability. *Information & Management*, 59(2), 103590.
12. Bonfield, C. A., Salter, M., Longmuir, A., Benson, M., & Adachi, C. (2020). Transformation or evolution?: Education 4.0, teaching and learning in the digital age. *Higher education pedagogies*, 5(1), 223-246.
13. Brett, J., & Brett, J. (2019). The evolution of digital leadership. *Evolving Digital Leadership: How to Be a Digital Leader in Tomorrow's Disruptive World*, 63-74.
14. Chatwal, T. (2019). Digitalization of higher education in India: a boom or a bane. *Research Journal of Humanities and Social Sciences*, 10(4), 1083-1088.
15. de Araujo, L. M., Priadana, S., Paramarta, V., & Sunarsi, D. (2021). Digital leadership in business organizations. *International Journal of Educational Administration, Management, and Leadership*, 45-56.

16. Desmaryani, S., Kusriani, N., Lestari, W., Septiyarini, D., Harken, A., Burhansyah, R., . . . David, J. (2022). The role of digital leadership, system of information, and service quality on e-learning satisfaction. *International Journal of Data and Network Science*, 6(4), 1215-1222.
17. Eberl, J. K., & Drews, P. (2021). Digital Leadership—Mountain or molehill? A literature review. *Innovation Through Information Systems: Volume III: A Collection of Latest Research on Management Issues*, 223-237.
18. ElMassah, S., & Mohieldin, M. (2020). Digital transformation and localizing the sustainable development goals (SDGs). *Ecological Economics*, 169, 106490.
19. Erhan, T., Uzunbacak, H. H., & Aydin, E. (2022). From conventional to digital leadership: exploring digitalization of leadership and innovative work behavior. *Management Research Review*, 45(11), 1524-1543.
20. García-Morales, V. J., Garrido-Moreno, A., & Martín-Rojas, R. (2021). The transformation of higher education after the COVID disruption: Emerging challenges in an online learning scenario. *Frontiers in psychology*, 12, 616059.
21. Ghamrawi, N., & M. Tamim, R. (2023). A typology for digital leadership in higher education: the case of a large-scale mobile technology initiative (using tablets). *Education and Information Technologies*, 28(6), 7089-7110.
22. Giang, N. T. H., Hai, P. T. T., Tu, N. T. T., & Tan, P. X. (2021). Exploring the readiness for digital transformation in a higher education institution towards industrial revolution 4.0. *International Journal of Engineering Pedagogy*, 11(2), 4-24.
23. Girsang, A. S., & Abimanyu, A. (2021). Development of an Enterprise Architecture for Healthcare using TOGAF ADM. *Emerging Science Journal*, 5(3), 305-321.
24. Gupta, S. B., & Gupta, M. (2020). Technology and E-learning in higher education. *Technology*, 29(4), 1320-1325.
25. Huang, R., Tlili, A., Chang, T.-W., Zhang, X., Nascimbeni, F., & Burgos, D. (2020). Disrupted classes, undisrupted learning during COVID-19 outbreak in China: application of open educational practices and resources. *Smart Learning Environments*, 7, 1-15.
26. Iivari, N., Sharma, S., & Ventä-Olkkonen, L. (2020). Digital transformation of everyday life—How COVID-19 pandemic transformed the basic education of the young generation and why information management research should care? *International journal of information management*, 55, 102183.
27. Jackson, N. C. (2019). Managing for competency with innovation change in higher education: Examining the pitfalls and pivots of digital transformation. *Business Horizons*, 62(6), 761-772.
28. Joshi, K. M., & Ahir, K. V. (2019). Higher education in India: Issues related to access, equity, efficiency, quality and internationalization. *Academia*(14), 70-91.
29. Lan, X., Scrimin, S., & Moscardino, U. (2020). Emotional awareness moderates the association between discrimination and emotional-behavioral problems: a cross-informant study in Chinese rural-to-urban migrant youth. *The Journal of Early Adolescence*, 40(6), 857-879.
30. Macatuno-Nocom, N. (2019). Digital leadership practices of select deans in Philippine state universities and colleges: Implications on the 21st century education. *International Journal of Global Community*, 2(1-March), 1-22.
31. Masoume Saraei, O. A. H., Esdalah Khadevi. (2023). Construction and validation of academic Enterprise Architecture measurement tool. *International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)*, 12(4). Retrieved from [https://www.ijhssi.org/papers/vol12\(4\)/C12040916.pdf](https://www.ijhssi.org/papers/vol12(4)/C12040916.pdf)
33. Mir, S. A. (2019). ICT integrated higher education: Prospects and challenges. *International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)*, 8(2), 1-4.
34. Mohamed Hashim, M. A., Tlemsani, I., & Matthews, R. (2022). Higher education strategy in digital transformation. *Education and Information Technologies*, 27(3), 3171-3195.
35. Mohan, V. DIGITISATION IN HIGHER EDUCATION HELP TO IMPROVE THE QUALITY OF EDUCATION IN INDIA. *Internal Quality Assurance Cell (IQAC)*, 65.
36. Morakanyane, R., O'Reilly, P., McAvoy, J., & Grace, A. (2020). Determining digital transformation success factors.
37. Msila, V. (2022). Higher Education Leadership in a Time of Digital Technologies: A South African Case Study. *International Journal of Information and Education Technology*, 12(10), 1110-1117.

38. Pattij, M., van de Wetering, R., & Kusters, R. (2022). Enhanced digital transformation supporting capabilities through enterprise architecture management: A fsQCA perspective. *Digital Business*, 2(2), 100036.
39. Pattij, M., Van de Wetering, R., & Kusters, R. J. (2020). *Improving Agility Through Enterprise Architecture Management: The Mediating Role of Aligning Business and IT*. Paper presented at the AMCIS.
40. Petry, T. (2018). Digital leadership. *Knowledge management in digital change: New findings and practical cases*, 209-218.
41. Sandkuhl, K., & Lehmann, H. (2017). Digital transformation in higher education—The role of enterprise architectures and portals.
42. Sararuch, S., Wannapiroon, P., & Nilsook, P. (2023). The Development of Agile Enterprise Architecture for Digital Transformation in Higher Education Institutions. *Higher Education Studies*, 13(3), 69-83.
- Sarfraz, M., Ivascu, L., Abdullah, M. I., Ozturk, I., & Tariq, J. (2022). Exploring a pathway to sustainable performance in manufacturing firms: The interplay between innovation capabilities, green process, product innovations and digital leadership. *Sustainability*, 14(10), 5945.
- Shaikh, Z. A., Umrani, A. I., Jumani, A. K., & Laghari, A. A. (2019). Technology enhanced learning: a digital timeline learning system for higher educational institutes. *International Journal of Computer Science and Network Security*, 19(10), 1-5.
- Silva-López, R., Miguel, E. C., Rodríguez, J. H., Chávez, J. F., & Del Valle, J. H. (2017). Architecture framework of key processes of a *Higher Education Institution*. Paper presented at the INTED2017 Proceedings.
- Singh, J., & Mansotra, V. (2019). Factors affecting cloud computing adoption in the Indian school education system. *Education and Information Technologies*, 24(4), 2453-2475.
- Soon, C. C., & Salamzadeh, Y. (2021). The impact of digital leadership competencies on virtual team effectiveness in MNC companies in Penang, Malaysia. *Journal of Entrepreneurship, Business and Economics*, 8(2), 219-253.
- Sousa, M. J., & Rocha, Á. (2019). Digital learning: Developing skills for digital transformation of organizations. *Future Generation Computer Systems*, 91, 327-334.
- Suryadi, M., A. Q., & Praja, B. A. (2023). Analysis of digital leadership in higher education in creating a world-class university at state universities. Retrieved from <https://virtusinterpress.org/Analysis-of-digital-leadership-in-higher-education-in-creating-a-world-class-university-at-state-universities.html>
- Tjong, Y., Adi, S., Kosala, R., & Prabowo, H. (2019). Exploration on enterprise architecture component for higher education institution in Indonesia. *ICIC Express Letters. Part B*, 10(10), 945-952.
- Tungpantong, C., Nilsook, P., & Wannapiroon, P. (2022). Factors Influencing Digital Transformation Adoption among Higher Education Institutions during Digital Disruption. *Higher Education Studies*, 12(2), 9-19.
- Turyadi, I., Zulkifli, Z., Tawil, M. R., Ali, H., & Sadikin, A. (2023). The Role Of Digital Leadership In Organizations To Improve Employee Performance And Business Success. *Jurnal Ekonomi*, 12(02), 1671-1677.

Wellbeing of Adolescents in Kerala; Analysing EPOCH and PERMA Dimensions

Asha Mathew¹, Manish Kumar Verma²

Abstract:

Wellbeing, is a central theme of Positive Psychology. From previous studies it's evident that experiences and life during first stages of life plays major role in behaviour formation during later stages of life. Father of Positive Psychology, Martin Seligman developed PERMA model of wellbeing, which are five dimensions of wellbeing such as Positive Emotions, Engagement, Relationship, Meaning and Accomplishment, to attain wellbeing. Further Butler and Kern, developed PERMA profiler to measure wellbeing of adults. Later Margaret L. Kern and colleagues developed EPOCH measures of adolescent's wellbeing to assess adolescent's wellbeing in each dimensions such as Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness. As an important stage of life, this study focus on dimensions of well-being during adolescence. Aim of this study is to investigate adolescent's wellbeing and to analyse dimensions of wellbeing. A comparative analysis of PERMA profiler and EPOCH measures of adolescent wellbeing is also been conducted in this study. A sample of 100 students aged 13 and 14 belongs to early adolescence, from various CBSE schools in southern part of Kerala were selected for this study. Qualitative literature review is used to study the relation between PERMA and EPOCH variables and used quantitative measures to justify the findings. PERMA Profiler and EPOCH Measures of adolescent's wellbeing were administered scored and compared in this study.

The results shows that in PERMA Dimensions of wellbeing, adolescents obtained more score in Relationship and lesser score in Accomplishment compared to other dimensions such as Meaning, Engagement and Positive Emotions. Scoring of EPOCH Measures shows that adolescents has a comparatively higher score in Connectedness and lesser score in Perseverance compared to other dimensions of wellbeing such as Engagement, Optimism and Happiness. It's also been found out that there is high correlation between PERMA Profiler and EPOCH Measures of wellbeing in adolescents as well as there exist relationship between each dimensions of PERMA.

Keywords: Adolescents, Wellbeing, PERMA profiler, EPOCH Measures of Wellbeing.

1. Introduction

While focus of psychology was on disorders and illness, Martin Seligman, came up with the idea of Positive Psychology. Wellbeing is one of the central theme of Positive Psychology. Martin Seligman, father of positive psychology, proposed PERMA model

of wellbeing. PERMA is the acronym which denotes Positive Emotion, Engagement, Relationship, Meaning and Accomplishment. According to Seligman, these five dimensions act as a pillar for wellbeing. (Goodman et al., 2018). Later PERMA profiler was developed to assess wellbeing of adults. While PERMA Profiler focused on adults, Kern came up with the EPOCH model of wellbeing. Where there is five dimensions of wellbeing, which includes Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness (Zeng & Kern, 2019). These dimensions are similar to dimensions of PERMA, but developed by focusing on characteristics of adolescents. According to Hurlock, Adolescence is divided into three, early adolescence, middle adolescence and late adolescence. Where early adolescence typically ranges from 11 to 14, middle adolescents from 15 to 17 and late adolescence from 18 to 21 (Hurlock, 1981). Adolescence is the time where there will be too many issues arise. Those issues includes antisocial behaviours, drug abuse, and relationship problems, engaging in risky behaviours and having mental health problems like depression, eating disorders, problems regarding one's own identity, etc. (Plant, 2002). Thus, mental health and wellbeing of adolescents is an important area we should focus on. Thus this study focus on finding out correlation between PERMA profiler and EPOCH Measures of adolescent wellbeing as well as to understand the adolescent's wellbeing by focusing on each dimensions of wellbeing.

1.1. PERMA model of wellbeing

Martin Seligman proposed his PERMA model of wellbeing in 2011. Acronym PERMA stands for Positive Emotions, Engagement, Relationship, Meaning, and Accomplishment. These five dimensions act as pillars for wellbeing. Positive emotion is when an individual is having pleasant feelings such as happiness, feeling satisfied with one's life and while having feelings of being cheerful and happy. Engagement is when an individual feels absorbed or being in flow while involved in activities they are interested. Relationship refers to ones feeling of connected to the social environment and they will be having feelings of getting cared by others and do care for others also. One will feel satisfied about one's own social relationships. When an individual feel that his or her life is valuable as well as they will feel like connected to higher power or something greater, that feeling and state can be termed as Meaning. Accomplishment is when someone tries and make progress towards attainment of goals (Kern et al., 2015). PERMA Profiler developed by Butler and Kern is used for assessing individual's wellbeing.

1.2. EPOCH model of Adolescents Wellbeing

Based on PERMA model, Margret L. Kern and her colleagues, developed a model which is based on characteristics of youth, which may influence dimensions of PERMA during adolescence. In EPOCH, there are five dimensions which are similar to dimensions of PERMA. The dimensions of EPOCH model of adolescents includes Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness. Engagement is the state of flow, or the ability to get absorbed while doing activities which are interested to an individual. Perseverance is an individual's ability to finish what they started off, even during difficult

conditions. Optimism is one's ability to be hopeful about the future. They will consider negative things happening in their life as temporary and remain hopeful about future. Connectedness is about one's healthy relationship with others and they will care for others and will provide with love support to people around them. When a person is feeling satisfied with their own life and having positive feelings and mood, is called Happiness (Kern et al., 2016). Using EPOCH Measures of Adolescent wellbeing, developed by Margret L. Kern and other researchers, we can assess wellbeing and corresponding scores of adolescents for each dimensions of wellbeing.

1.3. Connecting EPOCH and PERMA

Applying PERMA model of wellbeing in youth, the researchers came up with EPOCH Measures of adolescent wellbeing which are more appropriate to adolescent population (Kern et al., 2016). Studies shows that for five PERMA dimensions there exist five corresponding EPOCH dimensions. For Positive Emotion in PERMA model, there exist Happiness in EPOCH dimensions of wellbeing. Engagement in both models describes the same. Relationship in PERMA model is corresponding to connectedness in EPOCH. Dimension of Meaning in PERMA model is equivalent to Optimism in EPOCH and accomplishment in PERMA is comparable with Perseverance in EPOCH dimensions of wellbeing (Láng, 2018).

1.4. Wellbeing and adolescents

Studies shows that wellbeing contributes to academic achievement, better health during adolescence and adulthood. It also lower the risk taking behaviour of adolescents (Caprara et al., 2000). It's evident that wellbeing should be taught in schools, it will help to enable adolescents to deal with the issues they face during their age period. Effective wellbeing intervention programs will help adolescents to deal with depression, for attaining life satisfaction and to develop creative thinking in them (Seligman et al., 2009). Studies also shows that wellbeing lead to better mental health and it is associated with better physical health of an individual (McDougall, 2011).

From studies using PERMA model with a dimension of Physical health, it's evident that use of the strengths in school students is depend upon the positive emotion, engagement, achievement and physical health and positive emotion as well as their engagement can predict their satisfaction with school life. Rather than relationship, all the other dimensions of PERMA can predict student's satisfaction with school life. Positive emotion, relationship and achievement are negatively associated with anxiety and depression among students (Lai et al., 2018).

Studies shows that connectedness plays a major role in predicting wellbeing of adolescents, greater connectedness in adolescents indicates greater wellbeing. It indicates that as the connection with significant others or better relationship with family, society, in school and with peers plays a major role in having better wellbeing and life satisfaction (Jose et al., 2012). Similarly from studies conducted in Iranian adolescents, it's evident that good

relationship as well as happiness plays major role in school children's. It can lead to better mental health and better performance in school. Thus happiness can predict psychological wellbeing of adolescents (Heizomi et al., 2015). Adolescents who experience flow or getting absorbed in activities which are interested to them have better life satisfaction, wellbeing and they can deal with their negative and positive affect effectively (Bassi et al., 2014). Similarly, Higher levels of optimism contributes to higher self-esteem and lower level of psychological distress compared to pessimist adolescents (Creed et al., 2002). Evidence from studies conducted in adolescent's shows that optimism, higher level of self-esteem and being hopeful are factors which can help adolescents to avoid use of substance (Carvajal et al., 1998). Adolescents who has positive expectations about future and having hope will avoid substance use. Thus, having optimism plays a major role in helping them to deal with substance use behaviour effectively. Similarly, Accomplishment and perseverance also contributes to better emotion regulation strategies in adolescents (Morrish et al., 2018). Thus all the dimensions and elements in PERMA and EPOCH plays a major role in adolescent development. Thus, this study provides much wider comparative analysis between both the models.

From previous studies, it's evident that wellbeing is an important factor during adolescence as well as an individual's whole life. An adolescent should have better wellbeing in order to deal with major issues during adolescence as well as to effectively transform towards adulthood and later stages of life. Thus, this study helps to understand wellbeing of adolescents in terms of various dimensions of PERMA and EPOCH dimensions of wellbeing. This study also aims to compare wellbeing of adolescents based on EPOCH and PERMA measures of wellbeing and to find out relationship between PERMA Profiler by Butler and Kern and EPOCH measures of adolescent wellbeing developed by Margaret L Kern, Lisbeth Benson, Elizabeth A. Steinberg and Laurence Steinberg.

2. Methods

Qualitative literature review is used to study the connection between EPOCH and PERMA. Quantitative approach is used to study wellbeing of adolescents. Samples are selected using purposive sampling method and self-report questionnaires were administered to the participants for data collection. Aim of the study is to find out the wellbeing of adolescents with respect to PERMA and EPOCH dimensions of wellbeing and to compare the wellbeing of adolescents based on participants mean score on each dimensions of PERMA and EPOCH measures of wellbeing. Researcher is also finding the correlation between EPOCH measures of adolescent wellbeing and PERMA Profiler.

2.1. Objectives of the study

1. To study wellbeing of adolescents.
2. To study wellbeing of adolescents with respect to PERMA dimensions of wellbeing.
3. To study wellbeing of adolescents with respect to EPOCH dimensions of wellbeing.

4. To find out correlation between PERMA Profiler by Butler and Kern and EPOCH measures of adolescent wellbeing developed by Margaret L Kern, Lisbeth Benson, Elizabeth A. Steinberg and Laurence Steinberg.

2.2. Sample

100 adolescents were selected from various CBSE schools of southern part of Kerala. Early adolescents of age 13 and 14, studying in 8th standard are selected using purposive sampling method for the study. Participants from other region of Kerala are excluded in this study.

Table 1. showing the demographic details of the participant

Demographic Variable		Frequency	Percent
Gender	Male	57	57.0
	Female	43	43.0
Age	12 years	7	7.0
	13 years	64	64.0
	14 years	29	29.0

Figure 1. Pie Chart showing the number of male and female participants in the study.

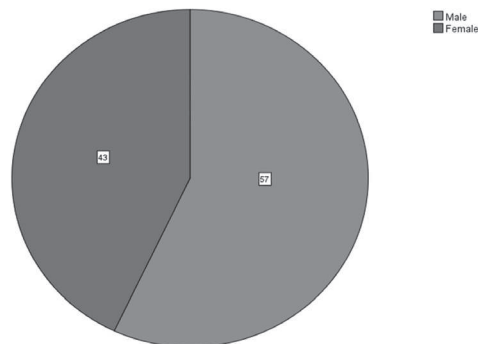
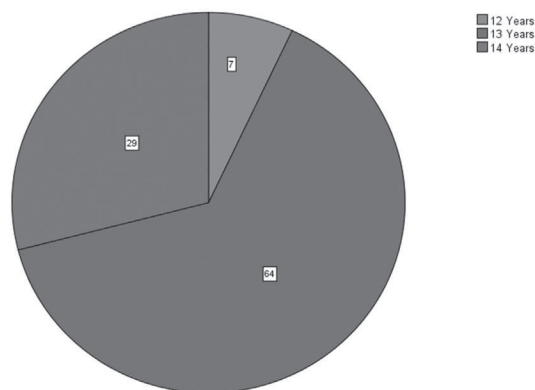


Figure 2. Pie Chart showing the frequency of age of participants in the study.



2.3. Measures

Quantitative method using questionnaires is used for data collection. PERMA Profiler developed by Butler and Kern, and EPOCH measures of adolescent wellbeing developed by Margaret L Kern, Lisbeth Benson, Elizabeth A. Steinberg and Laurence Steinberg are used in this study.

2.3.1. PERMA Profiler

In 2016, Butler and Kern developed PERMA profiler which consist of 23 items where 3 items per dimensions and they have added eight additional items to measure their overall wellbeing, perception about physical health, to assess negative emotions and items related to loneliness. The responses will be marked in a 10 point rating scale. It's been used wide across the world (Butler & Kern, 2016).

2.3.2. EPOCH Measures of Adolescent Wellbeing

EPOCH Measures of Adolescent wellbeing developed by Margret L. Kern and colleagues in 2016 is a 20 item questionnaire, which includes 4 items per dimensions such as Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness (Rose et al., 2017). . The respondents will be given response in a five point scale with responses from almost never to almost always and not at all like me to very much like me. And it can also be used across different cultures (Sobri et al., 2019).

2.4. Procedure

After obtaining parental consent, questionnaires including PERMA profiler and EPOCH measures of wellbeing are administered to adolescents. Proper instructions are given and responses were collected, scored, analysed and interpreted using scoring key and statistical methods.

2.5. Data analysis

Data is analysed using SPSS software. Descriptive statistics is used for summarizing and to describe the nature of data. Data is analysed using descriptive statistics, i.e. Mean and standard deviation to describe the scores of participants in PERMA and EPOCH dimensions of wellbeing. Then the mean scores of EPOCH and PERMA are plotted in bar. Person's correlation is used to find out the whether there is any relationship between PERMA Profiler and EPOCH measures of adolescent's wellbeing. Mean and standard deviation is used to study and compare scores of adolescents in dimensions of EPOCH and PERMA, Person's correlation is used to find out the relationship between PERMA Profiler and EPOCH measures of adolescent's wellbeing as well as the dimensions of both the measures.

3. Results and Discussions

Data is analysed by finding out mean and standard deviation for understanding the overall mean score of adolescents for each dimensions in EPOCH and PERMA as well as

to compare the overall mean scores for corresponding dimensions in each models. Later correlational analysis is used to compare and to find out relationship between EPOCH measures of adolescent wellbeing and PERMA Profiler.

Table 2. Number of Participants, Mean and Standard Deviation for EPOCH dimensions of wellbeing (Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness, and Happiness) and PERMA dimensions of wellbeing (Positive Emotions, Engagement, Relationship, Meaning, Accomplishment).

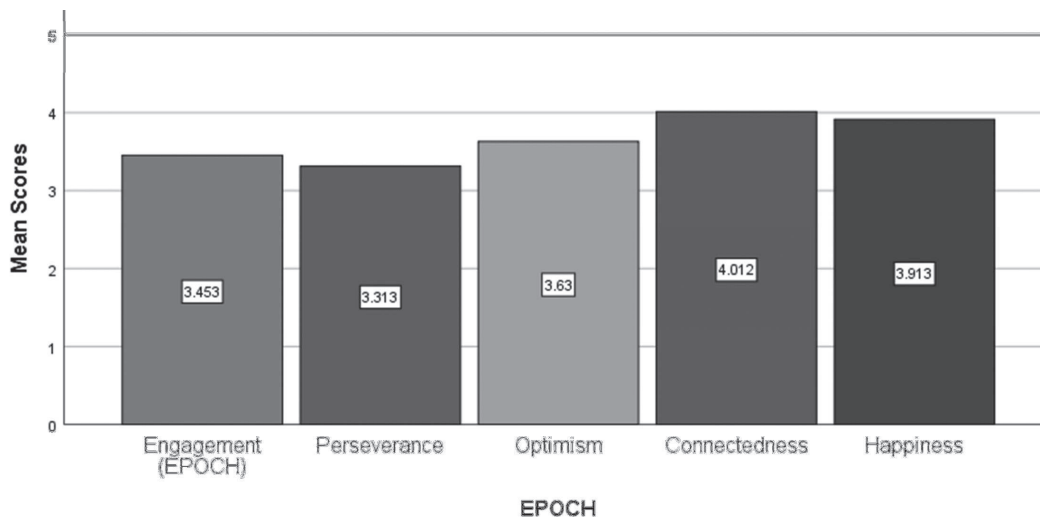
	N	Mean	Std. Deviation
Wellbeing (EPOCH)			
Engagement(EPOCH)	100.00	3.453	0.787
Perseverance	100.00	3.313	0.765
Optimism	100.00	3.63	0.773
Connectedness	100.00	4.012	0.748
Happiness	100.00	3.931	0.89
Wellbeing (PERMA)			
Positive Emotions	100.00	6.953	1.79
Engagement(PERMA)	100.00	7.124	1.654
Relationship	100.00	7.357	1.752
Meaning	100.00	6.850	1.749
Accomplishment	100.00	6.739	1.596

*Primary Source

Descriptive statistics (Table 2) shows the number of participants, mean and standard deviation for EPOCH dimensions of wellbeing such as Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness. It also shows the mean and standard deviation of adolescents for PERMA dimensions of wellbeing such as Positive Emotion, Engagement, Relationship, Meaning and Accomplishment.

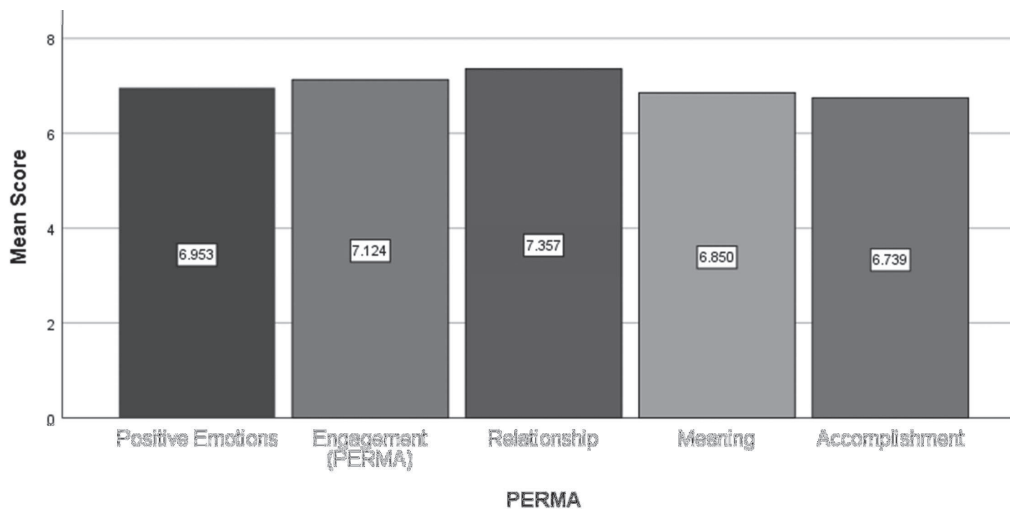
Table 2 showing mean and standard deviation of 100 participants for various dimensions of wellbeing (EPOCH) shows that the adolescents obtained a mean score of 3.453 and standard deviation of 0.787 for Engagement, mean of 3.313 and SD of 0.756 for Perseverance, mean of 3.63 and SD of 0.773 for Optimism and mean of 4.012 as well as SD of 0.748 and mean of 3.931 and SD of 0.89 respectively for connectedness and happiness. For PERMA dimensions of wellbeing, the mean score and standard deviation score for Positive Emotion are 6.953 and 1.79. For Engagement, mean score of 7.124 and standard deviation of 1.654. A mean score of 7.357 and standard deviation of 1.752 respectively in dimension of relationship. Participants obtained a mean score of 6.850 and standard deviation of 1.749 for meaning and mean score of 6.739 and standard deviation score of 1.596 respectively for accomplishment.

Figure 3. Bar diagram showing mean score of Wellbeing dimensions (EPOCH) such as Engagement, Perseverance, Optimism, Connectedness and Happiness.



From the figure 1, shown above, we can understand that participants has a comparatively higher mean score for connectedness than other dimensions of EPOCH wellbeing. Then the second highest mean score is for happiness and third highest mean score is for optimism. While comparing Perseverance and Engagement, the lesser mean score is for Perseverance. Thus we can understand that for EPOCH dimensions of wellbeing, comparatively higher mean score is for connectedness and lesser mean score is for Perseverance. Which indicates that adolescents have higher level of connectedness than other dimensions such as optimism, happiness and engagement and they have comparatively low level of perseverance than other dimensions.

Figure 4. Bar diagram showing mean score of Wellbeing dimensions (PERMA) such as Positive Emotions, Engagement, Relationship, Meaning and Accomplishment.



From figure 2, which shows the bar diagram form mean scores of wellbeing dimensions of PERMA shows that adolescents has comparatively higher score on dimension of Relationship and low mean score for Accomplishment. Adolescents are having comparatively higher level of Engagement than dimension of meaning. While comparing dimensions of meaning and Engagement, adolescents are having comparatively higher mean score for engagement. Adolescents are having comparatively higher scores for engagement than that of positive emotions and for accomplishment they have a comparatively lesser score than positive emotions.

While comparing figure 3 and 4, it's evident that the highest scored dimension in EPOCH measures of adolescent wellbeing is connectedness and in PERMA, its relationship. The second highest mean score in EPOCH is for happiness and in PERMA, its, Engagement. The third highest score is for optimism (EPOCH) and positive emotions respectively. In EPOCH, fourth highest score is for engagement, while in PERMA, it's for Meaning. The EPOCH dimension with least mean score is perseverance and comparatively lesser score in PERMA dimensions are accomplishment. When we examine the mean score of happiness in EPOCH measures is 3.913, for optimism, the mean score is 3.63 and for engagement, mean score is 3.453, thus, we can understand there is only a little difference in the mean scores obtained. For PERMA dimensions of wellbeing Engagement, the mean score obtained was 7.124, for positive emotions, mean score was 6.953 and for meaning is 6.850. It's evident that the exit only a comparatively little difference in the mean scores.

Higher scores in dimension of relationship in PERMA and Connectedness in EPOCH indicates the importance of relationship and attachment in adolescents. As the need to belongingness is fundamental and it has strong effect of health and wellbeing (Baumeister & Leary, 2000), studies shows that while reaching adolescence, you will strive for deeper relationship with the people they choose like friends and peers compared to family and parents (Karcher & Lee, 2002). Similarly, studies also indicates that the quality of attachment during adolescence determine their wellbeing (Armsden & Greenberg, 1987). Which indicates the importance of connectedness and relationship during adolescence over other dimensions.

The results suggest that adolescents have a lower level of perseverance compared to other dimensions in EPOCH and accomplishment in PERMA compared to other dimensions. According to Steinberg, he argues that the changes in prefrontal cortex of brain as part of maturation, is responsible for adolescents inability to maintain self-control and other executive functions as perseverance (Steinberg, 2008). Similarly, Negative school and community environment can lead to lower level of perseverance and motivation in adolescents, which can directly affect their motivation towards achievement (Eccles & Roeser, 2015), which may have resulted in comparatively low level of perseverance compared to other dimensions. Social persuasion and social feedbacks can act as a factor which helps to boost the self-efficacy and it plays a major role in contributing to their future success. Thus, we can enhance the perseverance in adolescents by using these social agents (Urdu & Pajares, 2006). Eccles, J. S., & Roeser, R. W. (2011), states that the school and community as well as the environment plays a major part in adolescent's development.

Table 3. Showing correlation between EPOCH measures of adolescent's wellbeing and PERMA Profiler.

Variables		EPOCH	PERMA
EPOCH	Pearson Correlation	1	.705**
	Sig. (2-tailed)		.000
	N	100	100
PERMA	Pearson Correlation	.705**	1
	Sig. (2-tailed)	.000	
	N	100	100

** . Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

From table 3, which shows the Pearson correlation, we can see that there exist a correlation of .705 exist between EPOCH measures of Adolescent wellbeing and PERMA Profiler. Correlation is of .705 is significant at 0.01 level. Which shows higher level of correlation. Thus we can understand that PERMA Profiler developed by Butler and Kern as well as EPOCH measures of adolescents wellbeing developed by kern et al. are related , i.e., there exist a relationship between PERMA and EPOCH wellbeing.

Table 4. Showing Pearson correlation between variables in EPOCH and PERMA, such as Relationship and connectedness, accomplishment and perseverance, meaning and optimism, positive emotion and happiness, engagement and engagement.

PERMA						
	Dimensions	Relationship	Accomplishment	Meaning	Positive Emotion	Engagement
EPOCH	Connectedness	.415**				
	Perseverance		.546**			
	Optimism			.517**		
	Happiness				.527**	
	Engagement					.515**

** . Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

Table 4. Shows the correlation between each dimensions of wellbeing of EPOCH and PERMA. Pearson correlation coefficient between connectedness and relationship was found to be .415**, between Accomplishment and perseverance is .546**, meaning and optimism is .517**, positive emotion and happiness is .527** and between engagement of EPOCH and Engagement of PERMA is .515**, indicating a significant positive relationship between variables at 0.01 level. Which supports the findings of Table 3 showing relationship between EPOCH and PERMA. Thus the variables have a positive relationship between each other. Thus, there is a significant relationship between dimensions of EPOCH and PERMA wellbeing.

4. Conclusion

Findings of this study shows that for EPOCH dimensions of wellbeing, adolescents has comparatively higher scores for connectedness than happiness, optimism, engagement and perseverance. They also possess more happiness than optimism, following Engagement and perseverance, where adolescents have a lower level of Perseverance than other dimensions. From studies conducted on 7th to 12th grade its evident that connectedness or better relationship related to family and in school environment leads to better wellbeing, that is, sense of belongingness is important protective factor for adolescents(Resnick et al., 1993). Studies also shows that positive emotions, happiness as well as positive affect can predict life satisfaction and wellbeing of children and it can act as protective factor which helps them to deal with the violence happens in daily life and traumas (Veronese et al., 2012). It's also evident that experience of flow in students can lead to better life satisfaction, commitment towards future and activities related to daily life. They also found to be possessing higher self-esteem, low level of anxiety and better coping strategies(Asakawa, 2010). Studies shows that having meaning in life has a positive relation with life satisfaction negative relationship with problems, both psychological and social problems in life. Findings suggests that if a person experience meaning in their life, it can lead to positive emotions and feeling, thus optimism and meaning in life can have significant effect in life satisfaction of adolescents (Ho et al., 2010). For Wellbeing (PERMA), adolescents has comparatively higher scores for Relationship, which indicates that adolescents have better level of relationship than other dimensions as well as compared to engagement, meaning and positive emotions, they have lower level of Accomplishment. PERMA Profiler of wellbeing and EPOCH measures of adolescents wellbeing are found to be highly correlated. Thus further studies should focus on positive psychological interventions for developing wellbeing of adolescents. These dimensions cannot be exempted, each and every dimensions of wellbeing should be focus of further studies. And findings also suggest that further PERMA profiler of wellbeing is similar to EPOCH measures of adolescent wellbeing, thus, both can be used simultaneously in adolescent population.

One of the limitation of the study is that it's cross-sectional in nature and the researcher used self-report measures of adolescents to assess their wellbeing. Further studies should focus on reports from significant others also. This study is confined only to a southern part of Kerala, further researchers should focus on larger population and sample should be drawn from wide population. Studies shows that each dimensions of PERMA are positively related to Emotion regulation strategies in adolescents. Positive emotions, Positive engagement, better social relationship, Meaningful life and accomplishments in life helps in having better emotion regulation strategies of adolescents. They are positively related to emotion regulation(Morrish et al., 2018).

Previous researches shows the importance of PERMA and EPOCH dimensions for adolescent's mental health and wellbeing. Adolescents need proper support from their family and peer to cope up with various stressors arising due to physical, social and psychological

changes (Nagabharana et al., 2021). Studies shows that peer relationship is a factor which predicts academic achievement in students (Shao et al., 2024). Similarly studies shows that family belongingness as a predictor of adolescent wellbeing. Thus indicating impact as well as importance of connectedness and relationship. Researches also focus on perseverance, as a component of grit and they states that perseverance is essential for adolescent's success and achievement in their life (Usher et al., 2019). Studies also shows that greater optimism has positive effect on physical health, success, social relation and engagement towards goal attainment (Carver & Scheier, 2014). While we consider the dimensions such as happiness and positive emotions, from broaden and build theory, it's evident that positive emotions such as happiness will contribute to better cognitive functioning, better social connection and resilience (Fredrickson, 2004). Studies shows that engaged students will perform better in academics and have other positive outcomes (Appleton et al., 2008).

Previous studies highlights the importance of school based positive psychology interventions in low and secondary income countries. These interventions will help in fostering wellbeing of adolescents and thereby enhancing their mental health (Cilar et al., 2020). Similarly class room activities can also enhance adolescent motivation and thereby has direct effect on their perseverance and accomplishment (Hulleman & Harackiewicz, 2009). Fredrickson's broaden and build theory also emphasis on importance of fostering positive emotions in adolescents, similarly, research findings also points out importance of promoting positive emotions in schools for better wellbeing (Park & Peterson, 2008). Studies shows that social and emotional learning programs which focus on student engagement will support healthy development in children (Durlak et al., 2011). Similarly, studies emphasis on the importance of school based mental health programs and interventions in Indian schools (Mehra et al., 2022). Adapting mental health programs in school, especially focusing on the dimensions of wellbeing will help the adolescents to have better mental health and wellbeing. There is a need for better mental health programs in Indian schools. Focusing on the highly scored dimensions of wellbeing such as relationship or connectedness as well as all the other dimensions will help the adolescents to lead a better life. Focusing on the improvement of lowest dimensions such as accomplishment and perseverance is a need for better future. As adolescents spend more time in schools (Mangal et al., 2020), school plays a major role in their health and wellbeing. Thus, focusing on wellbeing of adolescents in schools through various mental health and positive psychology programs should be a priority.

¹Department of Psychology,
REVA University Bangalore, Karnataka, India
asha.mathew@reva.edu.in

²Department of Psychology
Lovely Professional University Phagwara, Punjab, India
manish.23960@lpu.co.in

References:

1. Appleton, J. J., Christenson, S. L., & Furlong, M. J. (2008). Student engagement with school: Critical conceptual and methodological issues of the construct. *Psychology in the Schools*, 45(5), 369–386. <https://doi.org/10.1002/pits.20303>
2. Armsden, G. C., & Greenberg, M. T. (1987). The inventory of parent and peer attachment: Individual differences and their relationship to psychological well-being in adolescence. *Journal of Youth and Adolescence*, 16(5), 427–454. <https://doi.org/10.1007/BF02202939>
3. Asakawa, K. (2010). Flow experience, culture, and well-being: How do autotelic Japanese college students feel, behave, and think in their daily lives? *Journal of Happiness Studies*, 11(2), 205–223.
4. Bassi, M., Steca, P., Monzani, D., Greco, A., & Delle Fave, A. (2014). Personality and Optimal Experience in Adolescence: Implications for Well-Being and Development. *Journal of Happiness Studies*, 15(4), 829–843. <https://doi.org/10.1007/s10902-013-9451-x>
5. Baumeister, R. F., & Leary, M. R. (2000). *The need to belong: Desire for interpersonal attachments as a fundamental human motivation* (p. 49). Psychology Press.
6. Butler, J., & Kern, M. L. (2016). The PERMA-Profil: A brief multidimensional measure of flourishing. *International Journal of Wellbeing*, 6(3). <https://doi.org/10.5502/ijw.v6i3.526>
7. Caprara, G. V., Barbaranelli, C., Pastorelli, C., Bandura, A., & Zimbardo, P. G. (2000). Prosocial foundations of children's academic achievement. *Psychological Science*, 11(4), 302–306.
8. Carvajal, S. C., Clair, S. D., Nash, S. G., & Evans, R. I. (1998). Relating Optimism, Hope, and Self-Esteem to Social Influences in Deterring Substance Use in Adolescents. *Journal of Social and Clinical Psychology*, 17(4), 443–465. <https://doi.org/10.1521/jscp.1998.17.4.443>
9. Carver, C. S., & Scheier, M. F. (2014). Dispositional optimism. *Trends in Cognitive Sciences*, 18(6), 293–299. <https://doi.org/10.1016/j.tics.2014.02.003>
10. Cilar, L., Štiglic, G., Kmetec, S., Barr, O., & Pajnkihar, M. (2020). Effectiveness of school-based mental well-being interventions among adolescents: A systematic review. *Journal of Advanced Nursing*, 76(8), 2023–2045. <https://doi.org/10.1111/jan.14408>
11. Creed, P. A., Patton, W., & Bartrum, D. (2002). Multidimensional Properties of the Lot-R: Effects of Optimism and Pessimism on Career and Well-Being Related Variables in Adolescents. *Journal of Career Assessment*, 10(1), 42–61. <https://doi.org/10.1177/1069072702010001003>
12. Durlak, J. A., Weissberg, R. P., Dymnicki, A. B., Taylor, R. D., & Schellinger, K. B. (2011). The Impact of Enhancing Students' Social and Emotional Learning: A Meta-Analysis of School-Based Universal Interventions. *Child Development*, 82(1), 405–432. <https://doi.org/10.1111/j.1467-8624.2010.01564.x>
13. Eccles, J. S., & Roeser, R. W. (2015). School and Community Influences on Human Development. In *Developmental Science* (7th ed.). Psychology Press.
14. Fredrickson, B. L. (2004). The broaden-and-build theory of positive emotions. *Philosophical Transactions of the Royal Society of London. Series B: Biological Sciences*. <https://doi.org/10.1098/rstb.2004.1512>
15. Goodman, F. R., Disabato, D. J., Kashdan, T. B., & Kauffman, S. B. (2018). Measuring well-being: A comparison of subjective well-being and PERMA. *The Journal of Positive Psychology*, 13(4), 321–332. <https://doi.org/10.1080/17439760.2017.1388434>
16. Heizomi, H., Allahverdi pour, H., Asghari Jafarabadi, M., & Safaian, A. (2015). Happiness and its relation to psychological well-being of adolescents. *Asian Journal of Psychiatry*, 16, 55–60. <https://doi.org/10.1016/j.ajp.2015.05.037>
17. Ho, M. Y., Cheung, F. M., & Cheung, S. F. (2010). The role of meaning in life and optimism in promoting well-being. *Personality and Individual Differences*, 48(5), 658–663.
18. Hulleman, C. S., & Harackiewicz, J. M. (2009). Promoting Interest and Performance in High School Science Classes. *Science*, 326(5958), 1410–1412. <https://doi.org/10.1126/science.1177067>
19. Hurlock, E. B. (1981). *Developmental Psychology: A life-span Approach* (5th ed.). Mc Graw Hill Education (India) Private Limited.
20. Jose, P. E., Ryan, N., & Pryor, J. (2012). Does social connectedness promote a greater sense of well being in adolescence over time? *Journal of Research on Adolescence*, 22(2), 235–251.

21. Karcher, M. J., & Lee, Y. (2002). Connectedness among taiwanese middle school students: A validation study of the hemingway measure of adolescent connectedness. *Asia Pacific Education Review*, 3(1), 92–114. <https://doi.org/10.1007/BF03024924>
22. Kern, M. L., Benson, L., Steinberg, E. A., & Steinberg, L. (2016). The EPOCH measure of adolescent well-being. *Psychological Assessment*, 28(5), 586.
23. Kern, M. L., Waters, L. E., Adler, A., & White, M. A. (2015). A multidimensional approach to measuring well-being in students: Application of the PERMA framework. *The Journal of Positive Psychology*, 10(3), 262–271. <https://doi.org/10.1080/17439760.2014.936962>
24. Lai, M. K., Leung, C., Kwok, S. Y. C., Hui, A. N. N., Lo, H. H. M., Leung, J. T. Y., & Tam, C. H. L. (2018). A Multidimensional PERMA-H Positive Education Model, General Satisfaction of School Life, and Character Strengths Use in Hong Kong Senior Primary School Students: Confirmatory Factor Analysis and Path Analysis Using the APASO-II. *Frontiers in Psychology*, 9. <https://doi.org/10.3389/fpsyg.2018.01090>
25. Láng, A. (2018). Family Structure, Family Functioning, and Well-Being in Adolescence: A Multidimensional Approach. *International Journal of Humanities and Social Science*, 8(2), 24–31.
26. Mangal, A., Thakur, A., Nimavat, K. A., Dabar, D., & Yadav, S. B. (2020). Screening for common mental health problems and their determinants among school-going adolescent girls in Gujarat, India. *Journal of Family Medicine and Primary Care*, 9(1), 264. https://doi.org/10.4103/jfmnp.jfmnp_732_19
27. McDougall, T. (2011). Mental health problems in childhood and adolescence. *Nursing Standard (through 2013); London*, 26(14), 48–56; quiz 58–60.
28. Mehra, D., Lakiang, T., Kathuria, N., Kumar, M., Mehra, S., & Sharma, S. (2022). Mental Health Interventions among Adolescents in India: A Scoping Review. *Healthcare*, 10(2), Article 2. <https://doi.org/10.3390/healthcare10020337>
29. Morrish, L., Rickard, N., Chin, T. C., & Vella-Brodrick, D. A. (2018). Emotion Regulation in Adolescent Well-Being and Positive Education. *Journal of Happiness Studies*, 19(5), 1543–1564. <https://doi.org/10.1007/s10902-017-9881-y>
30. Nagabharana, T., Joseph, S., Rizwana, A., Krishna, M., Barker, M., Fall, C., Kumaran, K., & Krishnaveni, G. (2021). What stresses adolescents? A qualitative study on perceptions of stress, stressors and coping mechanisms among urban adolescents in India. *Wellcome Open Research*, 6, 106. <https://doi.org/10.12688/wellcomeopenres.16818.1>
31. Park, N., & Peterson, C. (2008). Positive Psychology and Character Strengths: Application to Strengths-Based School Counseling. *Professional School Counseling*, 12(2), 2156759X0801200214. <https://doi.org/10.1177/2156759X0801200214>
32. Plant, M. (2002). Risk-takers: *Alcohol, drugs, sex and youth*. Routledge.
33. Resnick, M. D., Harris, L. J., & Blum, R. W. (1993). The impact of caring and connectedness on adolescent health and well being. *Journal of Paediatrics and Child Health*, 29, S3–S9.
34. Rose, T., Joe, S., Williams, A., Harris, R., Betz, G., & Stewart-Brown, S. (2017). Measuring mental wellbeing among adolescents: A systematic review of instruments. *Journal of Child and Family Studies*, 26(9), 2349–2362.
35. Seligman, M. E. P., Ernst, R. M., Gillham, J., Reivich, K., & Linkins, M. (2009). Positive education: Positive psychology and classroom interventions. *Oxford Review of Education*, 35(3), 293–311. <https://doi.org/10.1080/03054980902934563>
36. Shao, Y., Kang, S., Lu, Q., Zhang, C., & Li, R. (2024). How peer relationships affect academic achievement among junior high school students: The chain mediating roles of learning motivation and learning engagement. *BMC Psychology*, 12(1), 278. <https://doi.org/10.1186/s40359-024-01780-z>
37. Sobri, N. A., Hashim, I. H. M., & Mohammad, T. (2019). Validity and Reliability of the Malay-Translated Version of the EPOCH Measure of Adolescent Well-Being Questionnaire. *Management Research Spectrum*, 9(1), 59–62.
38. Steinberg, L. (2008). A social neuroscience perspective on adolescent risk-taking. *Developmental Review*, 28(1), 78–106. <https://doi.org/10.1016/j.dr.2007.08.002>
39. Urdan, T., & Pajares, F. (2006). *Self-Efficacy Beliefs of Adolescents*. IAP.

40. Usher, E. L., Li, C. R., Butz, A. R., & Rojas, J. P. (2019). Perseverant grit and self-efficacy: Are both essential for children's academic success? *Journal of Educational Psychology*, 111(5), 877–902. <https://doi.org/10.1037/edu0000324>
41. Veronese, G., Castiglioni, M., Barola, G., & Said, M. (2012). Living in the shadow of occupation: Life satisfaction and positive emotion as protective factors in a group of Palestinian school children. *Children and Youth Services Review*, 34(1), 225–233. <https://doi.org/10.1016/j.childyouth.2011.10.002>
42. Zeng, G., & Kern, M. L. (2019). The Chinese EPOCH Measure of Adolescent Wellbeing: Further Testing of the Psychometrics of the Measure. *Frontiers in Psychology*, 10. <https://doi.org/10.3389/fpsyg.2019.01457>

Regulatory Framework Challenges in Managing the Gig Economy in India

Honey Soni¹, Pushpa Suryavanshi²

Abstract:

The gig economy has witnessed exponential growth in recent years, transforming the work and employment landscape. With its burgeoning digital infrastructure and entrepreneurial spirit, India has become a significant player in the gig economy. In light of the evolving nature of work, there is a need to propose a comprehensive policy framework that addresses the unique needs of gig & platforms workers, and the broader socio-economic ecosystem. Through an extensive review of existing policy frameworks and an in-depth analysis of the gig economy's impact on the Indian labour market, this qualitative research study aimed to identify regulatory gaps and challenges posed by the gig economy in the context of India. It has explored the dynamics of gig work, including its influence on job security, social protection, and worker income stability. The study has also analyzed the code on Social Security 2020 which has not been properly implemented to safeguard the rights and well-being of those engaged in it.

Keywords: Gig Economy, legal Framework, Worker's Rights, Platform Work, Social Security, Employment.

Introduction

Our lives and societies have transformed by the digital revolution with a speed and scale never seen before, bringing with it both enormous opportunities as well as challenging obstacles. "New technologies can make significant contributions to our lives and well-being but we cannot take positive outcomes for granted", (UNCTAD, 2019). The development of digital technologies and new business models has contributed to the rise of online platforms and the emergence of platform-mediated work in the digital age, such as "crowd work", "gig work", and other forms of on-demand labour, on the other hand regulating digital platforms is not yet in place. The majority of this work is carried out in some manner as non-standard work, often by independent self-employed or "own-account" workers, and sometimes only as part-time employment (FORDE et al., 2017). In recent years, the emergence of the gig & platform economy has transformed the landscape of labour markets worldwide. Characterized by short-term, flexible work arrangements facilitated through digital platforms,

the gig economy has brought both opportunities and challenges to the modern workforce. In India as well, high levels of digital penetration, accompanied by good digital skills and an acute shortage of formal jobs have driven youth to opt for gig work as a primary or supplemental source of income. As the lockdown was implemented in major cities, digital delivery platforms became all-purpose pick-and-drop services in response to surging demand (Kuriakose & Iyer, 2021). In the gig economy, there are no employer-employee relationship exists between workers and employers i.e. platform companies because the person who classified as an employee is usually paid fixed wages on a periodical basis and contracted labour for a longer duration of work. However, in the case of gig and platform workers usually hired and paid temporarily. The worker who falls under this category includes platform worker like Uber and Ola drivers, and food delivery partners like Zomato, Uber Eats, Domino's, and Swiggy (Dubey, 2022). The COVID-2019 pandemic has highlighted the critical importance of a growing platform economy and the vital role of platforms and the workers who scaffold it (Dubey, 2022). "On the other hand, India's gig workers have been hard hit by the COVID-19 pandemic, with 87% now earning less than INR 15,000 per month (USD 200). Overall, 81% have experienced a large decline in income", Digital-Hustle-India-Spotlight. While it has created new income streams for many, it has also raised concerns related to employment rights, social protections, and economic stability. "Over the past years, there have been reports of gig workers demonstrating against their work conditions- these include the Swiggy workers' strike in September 2020 and the Urban Company workers' protest in October 2021. Even internationally, in recent years gig workers have gone to court against some of the companies and won some rights", PUDR report. The COVID-19 crisis brought the woes of Indian platform workers into sharp focus, as the lack of labour rights, regulated work hours, minimum wages, data rights, and social protection exacerbated the precarity and insecurity of their work (Kuriakose & Iyer, 2021).

This article has considered the implications of the gig economy for labour regulation in India and the potential applicability of existing laws and regulations to gig work. The study begins by defining such work and reviewing existing research regarding its scope and composition and describes how the regulation of labour in the gig economy is complicated by the triangle of relations between workers, digital intermediaries, and final end-users. The study then discussed the applicability of existing labour regulations to gig work.

Literature Review

Several studies have reported the issues of gig workers raised due to the lack of regulatory frameworks and concern about their rights. Gig workers have limited recognition under the current Indian labour laws (Ganguly & Ramesh, 2023). However, the government has now attempted to include them through the labour codes with some excluded parameters but they are not effective enough. So, the need for a comprehensive legal rights framework for online gig workers remains urgent and relevant in the post-pandemic period in India (Selvi S. et al., 2021). In many developed nations, the labour force is being replaced by machines on a gradual basis, while in developing nations, workers must constantly upgrade and pick up new skills to survive (Francis Dia, 2021). However, some studies have highlighted that

due to technological advancements, and even artificial intelligence the availability of jobs is unstable in the organized as well as in the unorganized sector (Patel, 2021). Along with the instability of jobs, there is employment misclassification that has seen a substantive increase, and definitions of employees were handled in law and policy with a focus on advanced economic nations. Concerning worker well-being, minimum wage, workplace health, and safety regulations were taken into account (MacEachen et al., 2022). In India, the Unorganized Workers Social Security Act of 2008 is the only piece of legislation that addresses unorganized workers, but even though the law has a narrow scope it hasn't fully served the purpose for which it was enacted (Srivastava, 2021; Patel, 2021). Adding to this, several other studies argue that emerging and unconventional forms of employment need to be covered by a separate law (Srivastava, 2021). However, the central govt. has passed a code i.e. Code on Social Security, 2020 which has defined and interpreted various terms such as gig worker, platform worker, social security, aggregator, etc. (Dubey, 2022). Some studies provided a reasoned critique of the newly enacted Code on Social Security as the provisions therein aren't mandatory but merely recommendatory in nature (Srivastava, 2021). It is suggested that there is a need to underline potential areas of inquiry regarding the circumstances of gig workers, the effects of gig work on information, technology, and other related topics to our understanding of the organization and experience of work in the digitally enabled gig economy in a variety of national settings (Kaine & Josserand, 2019).

However, there is a significant research gap regarding the systematic review on adequacy and effectiveness of the current regulations and protections available to gig workers in India. This research has intended to fill this gap by conducting an in-depth analysis of the regulatory landscape and identifying the major problems of gig workers in India.

Objectives of the Study

1. To review the existing policy frameworks related to the gig economy in India.
2. To identify the key challenges and issues faced by gig workers in India.

Research Methodology

The primary objective of this study is to review the existing policy frameworks for regulating the gig economy and identify the key challenges faced by gig workers in India. For this purpose, a thorough literature review has been done to understand existing research, regulatory frameworks, and challenges related to the gig economy. This study has employed a qualitative research approach and is purely based on secondary data sources which the main sources are academic journals, government reports, policy documents, industry publications, and reputable websites.

Understanding the Nature of Gig Work

The newly business model known as the gig economy, consists of a two-sided market managed by online platforms that allow independent contractors to perform paid jobs or rent commodities (Koutsimpogiorgos et al., 2019). The gig economy is transforming the conventional employer-employee relationship. An individual is not hired as an employee

but instead is looked upon as a separate enterprise, whose skills are hired not to conduct tasks of a perennial nature, but instead for a particular project that is not indefinite but has a determined expiry date. The rise of the gig economy is incidental to the rise of technology (Francis Dia, 2021). In the gig economy, the nature of engagement of gig and platform workers is similar to short-term contracts or freelance work as opposed to permanent jobs. It often involves connecting with customers through an online platform such as delivery boys of app-based food, consultants, and bloggers. The platform work economy is sometimes referred to as the gig worker economy, but the gig economy is a broader term that includes platforms. The platform economy is also known as the digital economy. Here the distribution of, and access to work is made through websites and apps (Srivastava, 2021).

Figure: 1 Structural Conditions

Source- Compiled by author

The gig economy is a triangular phenomenon in which online platforms position themselves as intermediaries that match the demand and supply of labour, putting workers and clients in contact with one another. Clients, whether physical persons or companies, can post tasks, while workers can find those tasks that best match their skills and availability for doing work. In contrast, work on digital platforms is accessed online and executed online (Changing Demand for Skills in Digital Economies and Societies, ILO, 2021).

The Code on Social Security, 2020

The Indian government defined platform workers and aggregators for the first time under the new Code on Social Security Act 2020 (Kuriakose & Iyer, 2021). The Code on Social Security (CoSS), 2020 has been enacted to amend and consolidate the existing laws relating to social security with the wider goal of extending social security benefits to all employees and workers irrespective of belonging to the organized or unorganized sector. This Code (CoSS) not only seeks to provide social security and welfare for unorganized workers who were covered under the Unorganized Workers Social Security Act, 2008 but also specifically brought gig workers and platform workers under the ambit of social security schemes framed under CoSS. Thus, for the first time in India, the CoSS defines and provides social security for gig and platform workers along with workers in the unorganized sector (Srivastava, 2021). CoSS, 2020 subsumes nine central labour legislations to bring uniformity in labour laws. In this code, various terms are defined such as: a) Social Security which means the measures of protection afforded to employees, unorganized workers, gig and platform workers to ensure access to health care and to provide income security, particularly in cases of old age, unemployment, sickness, invalidity, work injury, maternity etc. b) Unorganised Worker, means a home-based worker, self-employed worker or a wage worker in the unorganized sector and includes a worker in the organized sector who is not covered by the Industrial Disputes Act, 1947 or Chapters III to VII of this Code. c) Aggregator, means a digital intermediary or a marketplace for a buyer or user of a service to connect with the seller or

the service provider. d) Gig Worker, means a person who performs work or participates in a work arrangement and earns from such activities outside of traditional employer-employee relationship. e) Platform Work, means a work arrangement outside of a traditional employer-employee relationship in which organizations or individuals use an online platform to access other organizations or individuals to solve specific problems or to provide specific services or any such other activities that may be notified by the Central Government, in exchange for payment. f) Platform Worker, means a person engaged in or undertaking platform work.

In today's context, the Code of Social Security does not provide the implementation of government schemes, and neither any worker is allowed to enforce this right from the court (Dubey, 2022). Thus, to improve the conditions of the gig labour class the state governments should take actions to safeguard them from the exploitation of platform companies and to formalize both the workers & businesses in this informal economy. However, in India, the government of Rajasthan has passed the Rajasthan Platform Based Gig Workers (Registration and Welfare) Bill, 2023. With this initiative, Rajasthan has made history by becoming the first state in India to pass legislation, which regulates the engagement of gig workers and aim to provide social security and other benefits to platform-based gig workers.

Problems Faced by Gig and Platform Workers Due to Lack of Regulations

Almost every worker has problems working in the gig economy due to lack of government regulations in India to manage the gig and platform work. Some of the issues are discussed here:

Classification as Employees: Being categorized as independent contractors rather than employees is one of the main challenges that platform workers confront. As a result, they are not eligible to receive workers' compensation, overtime compensation, or the minimum wage.

Insecurity of job: Workers engaged in employment where the terms of employment are just like contractual basis, there is no stability of job because workers are hired by the platforms only for short-term projects.

Inability to secure minimum wages: Many gig workers in India are earning less than the standard minimum wage because there is a large number of gig workers available in the labour market wherein, the demand for such work is comparatively less than the supply of workers. So a large pool of workers is willing to accept low wages for their work.

Undefined hours of Work: Gig and platform workers often work for many hours to earn the maximum wage per day to support their families and themselves.

Occupational hazards and health Issues: To earn extra wages or salary, gig workers often invest their maximum time in doing such work and this will lead to health issues for them. Platform companies are also not providing any benefits related to occupational safety and health risks for gig workers.

Non-applicability of social security measures: Gig and platform workers are not covered

under any labour law in India. Due to non-recognition, they are not entitled to take social security benefits from both the company and the government.

Grievance Redressal Mechanism: In India, for the regulation of the gig economy there is no labour code or law. Without a regulatory mechanism by the government, it is not possible to set a grievance redressal platform.

Conclusion

India has a growing population and an ever-present unemployment issue considering a significant proportion of the population continuing to work in informal sectors, which highlights the vulnerability of employees who use online platforms. Therefore, to safeguard these workers' rights, we need to classify the kind of jobs they perform on these online platforms as well as the regulations that can regulate them. As the gig economy continues to reshape the employment landscape, India must navigate these challenges effectively, fostering a fair, inclusive, and innovative environment for all stakeholders involved. In conclusion, this research paper delves into the intricate web of challenges posed by the gig economy in India, focusing specifically on the regulatory framework hurdles. Through a comprehensive analysis, it becomes evident that the evolving nature of work in the gig economy necessitates a dynamic and adaptable regulatory approach. By embracing a collaborative effort among policymakers, industry stakeholders, and workers, India can develop a regulatory framework that not only addresses the current issues but also anticipates and adapts to future changes in the world of work. Only through such collective efforts can the nation fully harness the potential of the gig economy while safeguarding the rights and well-being of its workforce.

Department of Commerce

Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar

¹honeysoni0545@gmail.com

²surya.nregs@gmail.com

References:

1. Behind the Veil of Algorithms: Invisible Workers A Report on Workers in the “Gig” Economy . (2021, December). Retrieved from Peoples Union for Democratic Rights (PUDR) website: <https://puvr.org/sites/default/files/2021-12/PUVR%20report%20on%20gig%20workers-%20Behind%20the%20Veil%20of%20Algorithms.pdf>
2. Digital Economy Report 2019. (n.d.). Retrieved from UNCTAD website: <https://unctad.org/publication/digital-economy-report-2019>
3. Dubey, P. (2022). Gig & Platform Workers: A Way Towards Formal Labour Recognition. *Multidisciplinary Law Review*, Volume I (Issue 2), 57-66.
4. FORDE, C., STUART, M., JOYCE, S., OLIVER, L., VALIZADE, D., ALBERTI, G., ... CARSON, C. (2017, November). The Social Protection of Workers in the Platform Economy. Retrieved January 6, 2025, from [https://www.europarl.europa.eu/RegData/etudes/STUD/2017/614184/IPOL_STU\(2017\)614184_EN.pdf](https://www.europarl.europa.eu/RegData/etudes/STUD/2017/614184/IPOL_STU(2017)614184_EN.pdf)
5. Francis Dia, A. M. (2021, October 15). Future of Work, Labour Policy & The Employer-Employee Relationship. Retrieved from National Law University of Delhi website: <https://nludelhi.ac.in/download/Labour%20Law%20Reforms%20Book%20NLU%20Delhi%202021.pdf>

6. Ganguly, A. L.-S., & Ramesh, A. K. (2023, January 25). India: Rules Governing the Gig Economy. Retrieved October 6, 2023, from Lexology website: <https://www.lexology.com/library/detail.aspx?g=0a14cdc3-5b43-472c-8974-5bcd43e74096#:~:text=Although%20the%20Code%20recognizes%20>
7. Gurumurthy, A., Chami, N., & Sanjay, S. (2020, September). The gig is up! Worker rights for digital day labour in India. Retrieved from <https://library.fes.de/pdf-files/bueros/indien/16516.pdf>
8. Kaine, S., & Josserand, E. (2019). The organization and experience of work in the gig economy. *Journal of Industrial Relations*, 61(4), 479–501. <https://doi.org/10.1177/0022185619865480>
9. Koutsimpogiorgos, N, van Slageren, J., Herrmann, A., & Frenken, K. (2019). Conceptualizing the Gig economy and its regulatory problems. *Policy & Internet*, 12(4), 525-545. <https://doi.org/10.1002/poi3.237>
10. Kuriakose, F., & Iyer, D.K. (2021). A case for worker-centric platform economy in India. *India in Transition*, Centre for the Advanced Study of India, University of Pennsylvania. (in press).
11. MacEachen, E., de Rijk, A., Dyreborg, J., Fassier, J. B., Fletcher, M., Hopwood, P., Koivusalo, M., Majowicz, S., Meyer, S., Ståhl, C., & Welti, F. (2022). Laws, Policies, and Collective Agreements Protecting Low-wage and Digital Platform Workers During the COVID-19 Pandemic. *New Solutions: a journal of environmental and occupational health policy*: NS, 32(3), 201–212. <https://doi.org/10.1177/10482911221133796>
12. Patel, D. (2021). Social Security Vis-À-Vis Future of Work: Issues and Challenges. Retrieved from <https://nludelhi.ac.in/download/Labour%20Law%20Reforms%20Book%20NLU%20Delhi%202021.pdf>
13. Selvi S, K., Maheswari K, U., & Kuriakose, F. (2021). Re-Imagining Labour Rights in the Online Gig Economy after COVID-19. SSRN. <https://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3921071>
14. Srivastava, P. S. C. (2021, October 15). Labour Law Reforms On Unorganized, Gig and Platform Workers Under the Code On Social Security: Issues and Challenges. Retrieved from National Law University Delhi website: <https://nludelhi.ac.in/download/Labour%20Law%20Reforms%20Book%20NLU%20Delhi%202021.pdf>
15. Value Creation and Capture: Implications for Developing Countries Value Creation and Capture: Implications for Developing Countries. (n.d.). Retrieved from https://unctad.org/system/files/official-document/der2019_en.pdf
16. United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD). (2019). Digital Economy Report 2019: Value creation and capture—Implications for developing countries (Overview). Geneva: United Nations. Retrieved from <https://unctad.org/publication/digital-economy-report-2019>.
17. <https://pudr.org/sites/default/files/2021-12/PUDR%20report%20on%20gig%20workers-%20Behind%20the%20Veil%20of%20Algorithms.pdf>
18. <http://flourishvent.wpengine.com/wp-content/uploads/2020/11/FV-Digital-Hustle-India-Spotlight.pdf>
19. https://labour.gov.in/sites/default/files/ss_code_gazette.pdf

Jhanda Satyagraha (With special reference to Sagar)

Naveen Gideon

Abstract:

The Bundela Revolt of 1842 and the first battle for independence come under the first phase of the freedom movement in Sagar district. The second phase of the freedom movement in Sagar district starts after 1861 AD. The Sagar District of Central Province and Barar have played a significant role in the freedom movement of India. Many social and educational institutions of this province have done important works in the development of political awakening. The impact of the political ideologies of both the moderate and the extremist parties of Congress was felt on this movement. The non violence movement of Gandhiji received a great support from the people of this province. Contrary to this, the activeness of the revolutionary activities was also seen in this province. The Bundelkhand region was the foremost in providing a strong leadership to the National Movement.

After the non cooperation movement was discontinued, a political vacuum was created in the country. During this time, the 'Jhanda Satyagraha' which was started in Jabalpur gave a new direction to the National Movement. This satyagraha was not restricted merely to this province, but rather its impact was felt on the other provinces of the country as well. The 'Jhanda Satyagraha', which originated and developed in Mahakoshal region, had a great contribution in connecting the people of the rural areas with the main stream of the National Movement. During the Flag Satyagraha, Bhai Abdul Ghani highlighted the situation of Sagar and said that the students also participated in the Flag Satyagraha movement with great eagerness. A student, Narayan Das Hardikar, son of Shri Govind Rao of Sagar, was expelled from the school for hoisting the flag. In addition to throwing special light on the developments of Jhanda Satyagraha, a daily newspaper published from Sagar, "Prakash", played an important role in motivating the people for Jhanda Satyagraha.

Keywords: Jhanda Satyagrah, Sagar, Sunder Lal, Abdul Ganni, Baldev Prasad, Prakash.

Jhanda Satyagrah in Jabalpur and Around

The Jhanda Satyagraha has its own special place in the history of the freedom movement in Madhya Pradesh. The helmsman of this historical Jhanda Satyagraha of Jabalpur city was Pundit Sunder Lal.¹ The Congress Satyagraha Inquiry Committee came on a tour to Jabalpur in February 1923. According to the proposal of the Chairman of Jabalpur City Corporation Kanchadilal Pathak, the City Corporation decided to give citations in honor of the members of the Satyagraha Inquiry Committee and to hoist the National Flag on the

Town Hall building on this occasion. The time decided for the public felicitation of the members of the Satyagraha Inquiry Committee was 5pm in the evening. But before the scheduled time, the felicitation program was cancelled by the Deputy Commissioner and the Town Hall was locked at 4 pm in the evening. The Government issued orders not to hoist the National Flag in public places. Unknowingly, the Government of the Central Province gave the very opportunity to the Satyagraha Inquiry Committee for which it had planned the nationwide tour.² On the day the citations were to be given, the police surrounded the Town Hall and kept vigilance on the entry gates. As a result, the City Corporation could not give the citations to the leaders on that day. There was immense anguish among the Congress workers and youth because they were not allowed to hoist the flag on the Town Hall building. According to them, the tricolor flag must be hoisted on the building of the City Corporation which was ruled by the citizens. This was a challenge for the people of Jabalpur. They accepted the challenge and planned a program to violate this order.³

The same evening, a huge public meeting was organized in the Tilak ground in which Rajaji and Rajendra Babu invoked the citizens to come forward to protect the honor of the National Flag. On this occasion, the Chairman of the Central Province Congress Committee declared to start a satyagraha to keep the honor of the National Flag and vowed that 'till he achieved the desired result, he would not eat grains, fruits or milk or any food made from these things. He was thus given the title 'Tapasvi'. The day of satyagraha was decided as 18 March, 1923.⁴

Due to the firm and fearless leadership of Pundit Sunderlal, a new energy became visible in the people. Pundit Sunderlal gave a concrete form to his concept of Jhanda Satyagraha.⁵ According to the program, a procession was taken out on 18 March, 1923 which reached the City Corporation building. Within no time, the 'tricolor flag' was hoisted there. The person who hoisted the National Flag on the City Corporation building was a young man called Premchand Jain from Damoh, who exhibited indomitable courage in hoisting the National Flag.⁶ Sitaram Jadhav, Parmanand Jain and Khushalchand Jain were among those who helped and assisted him.⁷

Probably, Jabalpur was the first place where the National Flag was hoisted on a public building. The Deputy Commissioner was infuriated at this event and ordered the policemen to immediately bring down the flag. The over enthusiastic policemen not only brought down the flag, but also stamped and trampled it under their feet. On seeing this scene, the people present on the scene got infuriated and eager to avenge the humiliation. As a result, the Jhanda Satyagraha began very soon.⁸ Violating the orders of the government, a procession was taken out in the leadership of Sunderlal. The flag of the procession was in the hands of Pundit Vishwambharnath Pandey. Mrs. Subhadra Kumari Chauhan, Nathuram Modi, Badriprasad Dubey, Todarmal Swarnkar, Devi Singh Jaat, Chhingnelal Swarnkar, Pyarelal Gopal Maharaj, Omkar Prasad Vishwakarma, Kanchhedilal Pathak, Makhanlal Chaturvedi, Devi Prasad Shukla, Chidambara Pillai etc. also too part in the procession and moved along shouting slogans. While they moved towards the City Corporation building, they were

stopped and Pundit Sunderlal was arrested and given six months imprisonment. As a mark of protest, all the members of the District Congress Committee resigned.⁹

The weekly magazine 'Karmveer' published from Jabalpur wrote about the satyagraha and its demonstration in its editorial. Similarly, due to the influence of the Jhanda Satyagraha, the publishing of the weekly magazines 'Uday' and 'Dainik Prakash' started. The people of the entire province were infused with awakening because of the activities of the local officers of Jabalpur. Very soon, the Jhanda Satyagraha of Jabalpur became province wide popular. After the arrest of Pt. Sunderlal, the Congress Committee of Nagpur took over the conducting of the Jhanda Satyagraha under the leadership of Jamnalal Bajaj. Thus, after Jabalpur, the Nagpur Congress Committee accepted this challenge. Now the center of this struggle moved from Jabalpur to Nagpur. The Mahakoshal Congress Committee sent its leaders to Nagpur. A huge party under the leadership of Thakur Lakshman Singh Chauhan reached Nagpur¹⁰ in which special contribution was given by Durga Prasad Mehta, Makhanlal Chaturvedi, Keshav Ramchandra Khandekar, Thakur Lakshman Singh Chauhan, Kashmat Hussain and Mrs. Subhadra Kumari Chauhan. Apart from these leaders of Mahakaoshal, Dr.Chandulal, Dr. Ghiya, Dr. Hardikar, Gopaldas Talathi, Mohanlal Pandya, Pardachari Ignesia, etc and other provincial leaders also took part in this satyagraha.¹¹

Jhanda Satyagrah in Nagpur and Around

In order to manage the satyagraha, Seth Jamnalal Bajaj established an institution in Nagpur and decided to start the satyagraha on 13 April, the day of the Jalianwala Bagh massacre.¹² But the Jhanda Satyagraha was declared as illegal in Nagpur by the government.¹³ The government used the policy of suppression to stop the progress of the satyagraha, but it did not succeed. Huge bands of volunteers started being sent to take part in the satyagraha from every nook and corner of Mahakoshal, Nagpur and Vidarbha, especially from Balaghat, Chhindwara, Baitool, Narsinghpur, Jabalpur and Sagar. In fact, the satyagraha began on 1 May, 1923, when Jamnalal Bajaj took out a procession in the entire city, holding the National Flag.¹⁴

In this way, this movement was initiated on 1 May, 1923 in Nagpur. This movement continued for 114 days in which 1263 satyagrahis from various Hindi speaking provinces took part. This movement became very wide spread. So, many national leaders like Sardar Patel, Dr. Rajendra Prasad, Devdas Gandhi, Rajgopalachari and T Prakasham etc. arrived at Nagpur to see the progress of the movement.¹⁵

This movement continued for almost two months. In the beginning, women were not allowed to participate in the movement. But, by the efforts of Mrs. Subhadra Kumari Chauhan, women were also given permission to participate in this satyagraha. On the arrest of Mrs. Subhadra Kumari Chauhan, Chakravarty Rajgopalachari, who was in Nagpur in those days, appreciated her and said, "This brave work of Subhadra Devi will be heard and appreciated in every house". Kasturba Gandhi and Sardar Patel also came to Nagpur to study the situation of the satyagraha.¹⁶

Jhanda Satyagrah at National Level

The progress of the movement soon brought it at an all India level. Many volunteers from not only Mahakoshal, Nagpur and Vidarbha, but also from other regions like Utkal, Bombay, Andhra, Bihar, Bengal, Gujarat, Karnataka, etc. took part in this movement and went through the tortures in the jail. On seeing the cooperation received from many provinces, on 18 June, this satyagraha was declared as an All India movement.¹⁷ The Congress Chairman Dr. Ansari published an appeal requesting to celebrate 18 June, 1923 as “Jhanda Satyagraha Diwas”, and appealed the Congress to extend their cooperation.¹⁸

On seeing the All India form of the satyagraha, the Indian Government was scared and on 17 June, 1923, the main leaders of the Satyagraha, Shri Jamnalal Bajaj, Mahatma Bhagwandin and Neelkanthrao Deshmukh were arrested. The camps of the volunteers were kept under guard. All the volunteers were arrested before the sunrise of 18 June, 1923. Apart from the minister of the Nagpur Provincial Congress Committee Abid Ali, Ganpatrao Tikekar and Jainendra Kumar were also arrested.¹⁹ On the same day, Jawaharlal Nehru, Purushottamdas Tandon and Makhanlal Chaturvedi along with the satyagrahis led the procession. They were also arrested along with 275 satyagrahis. The Provincial Legislative Council passed a proposal, demanding to lift the Prohibition Acts related to the Jhanda Satyagraha.²⁰

A meeting of the All India Congress Committee was organized in the beginning of July in which the proposal to celebrate 18 July as ‘Jhanda Diwas’ was passed. Also, a procession was decided to be taken out by every Provincial Congress Committee along with the citizens holding the National Flag. The day of 18 July was celebrated as ‘Jhanda Diwas’ in entire India. A procession with the National Flag was taken out in every city of the country.²¹ But before this, on 10 July, 1923, Seth Jamnalal Bajaj, Neelkanthrao Deshmukh and Abid Ali were sentenced to jail for one and half years. Also, Seth Jamnalal Bajaj was charged with rupees three thousand penalty and Neelkanthrao Deshmukh with rupees fifteen hundred as penalty.²²

On 22 July, 1923, the reins of this Satyagraha came into the hands of the Iron Man Sardal Vallabhai Patel. On 23 July, Vitthal Bhai Patel also came to Nagpur. The Mahakoshal Provincial Congress Committee gave two thousand rupees and the Marathi Central Provincial Congress Committee gave five thousand rupees as aid to the families of the satyagrahis.²³

The Nagpur Jhanda Satyagraha took a much larger form than expected. The people of the ‘Gaur-Mahar’ and other lower castes from Balaghat and Seoni also came to participate in this movement. Most of them called from outside.²⁴ In this way, the All India ‘Jhanda Diwas’ was celebrated by the satyagrahis who came from various provinces. As a result, more than 1000 satyagrahis were arrested. In the beginning, the number of satyagrahis arrested per day was six to eight, but later it rose to fifteen. The number of satyagrahis who were arrested from 1 to 16 August rose to 19.²⁵

Jhanda Satyagrah at Sagar Level

The revolutionary activities of Bengal became a headache for the British like the Bundela Rebellion of 1842 in Sagar & the revolution of 1857. To put a rein on them, Lord Curzon, in the guise of bringing administrative efficiency, divided Bengal in 1905. By this time, national awakening had developed all over the country. Therefore, soon the anti-partition movement of Bengal (Banga-Bhang) spread all over India. There was a Swadeshi movement all over India against the partition of Bengal.

The credit for bringing the anti-Banga-Bhang movement to Sagar district goes to Ashwini Kumar Dabha, a revolutionary leader of Bengal. He came to Sagar in 1907. Ashwini Kumar was a teacher in Warisal and a 'Swadesh Bandhav Committee' was established under his leadership. The main objective of this organization was to create public opinion in favor of the Bang-Bhang and Swadeshi Movement.

In 1913 AD, the Surya Vijay Akhara was established in Sagar. In 1913 AD, the political conference of Sagar district was held in Khurai. The political activities in Sagar district gained momentum with the arrival of Pt. Sunderlal, Pt. Makhanlal Chaturvedi and Ganesh Shankar Vidyarthi in the conference. A Congress sub-committee was formed for the Central Provinces and Barar. Dr. Hari Singh Gaur became the chairman of the Subcommittee of the Central provinces and Dr. Rai Bahadur R.L. Mudholkar became the chairman of the sub-committee of and Barar.

In addition to throwing special light on the developments of Jhanda Satyagraha, a daily newspaper published from Sagar, "Prakash", played an important role in motivating the people for Jhanda Satyagraha. The commencement of its publication was 11 June, 1923. Its editor was Master Baldev Prasad. Its publisher was Prem Narayan Sharma. It is known as the first daily newspaper of Bundelkhand and Madhya Pradesh.

After the arrest of the President of the Madhya Pradesh Congress Committee Pandit Sunderlal during the Flag Satyagraha, his disciple Bhai Abdul Gani in Sagar was very angry with the British due to the arrest of his guru. Bhai Abdul Ghani gathered many people from Khurai and left for Nagpur. Other prominent leaders who went to Nagpur from Sagar were Ramkrishna Pandey, Durga Prasad Sen, Buddha Imam Khan and Vasudev Rao Subedars.²⁶

Under the leadership of Vasudeva Rao Subedar, 30 satyagrahis willingly accepted to be arrested. 30 people were arrested including Bhai Abdul Ghani, Ramakrishna Pandey and Durga Prasad Sen. Sagar's Dhundhirajpant Halwa was arrested under section 120, 188 and 108 on July 13. He was imprisoned for one month.²⁷

During the Flag Satyagraha, Bhai Abdul Ghani highlighted the situation of Sagar and said that the students also participated in the Flag Satyagraha movement with great eagerness. A student, Narayan Das Hardikar, son of Shri Govind Rao of Sagar, was expelled from the school for hoisting the flag.²⁸

The main Satyagrahis of Sagar district who participated in the Flag Satyagraha were:

(1) Abdul Gani, 7 months' imprisonment in Khandwa jail in 1923 for participating in Flag Satyagraha.²⁹

(2) Durga Prasad Sen, 7 months' imprisonment for participating in Flag Satyagraha.³⁰

(3) Ramkrishna Pandey, 7 months' imprisonment for participating in Flag Satyagraha.³¹

(4) Buddha Imam Khan, 7 months' imprisonment for participating in Flag Satyagraha.³²

(5) Vasudeva Rao Subedar.³³

In the fight of Jhanda Satyagraha, truth was the shield and non-violence was the sword. No one had any doubt that the truth was on its side.

Conclusion

The Provincial Legislative Council passed the proposal to lift the prohibitions related to the Jhanda Satyagraha and to release the satyagrahis.³⁴ Ultimately, seeing the vastness of the movement and the opposition, the government also underwent some realization and awakening. Finally, on 18 August, 1923, a meeting was held under the chairmanship of Sardar Vallabh Bhai Patel in the Town Hall of Nagpur. Talks took place between the Governor and the leading National leaders Vallabh Bhai Patel and Vitthal Bhai Patel. Resultantly, the Act 144 was lifted. The satyagrahis were congratulated and the end of the 'Jhanda Satyagraha' was announced. Almost all the satyagrahis were released. On 18 August, 1923, about 100 volunteers were given permission to take out a procession with the National Flag. This procession was led by Pundit Makhnalal Chaturvedi, Vallabh Bhai Patel and Babu Rajendra Prasad.³⁵ In this way, a prestigious event ended with a significant success on 18 August, 1923.³⁶

From the above described facts, it is clear that the Central Province had a leading role in the Indian National Movement. The participation of the common people in the 'Bundela Revolt' of 1842 and the great insurgency proved that there was great and wide spread dissatisfaction against the British rule from the first half of the 19th century itself, which transformed itself in the form of powerful the emergence and development of the national movements. The discontinuation of the non cooperation movement did not lead to the decline in the willingness to continue the struggle, which is clearly evident in the 'Jhanda Satyagraha'.

News Paper 'Prakash' did an excellent job of inspiring people to throw themselves into the sacrifice of freedom. The power of Master Baldev Prasad's pen was doing a good job to awaken enthusiasm, patriotism and nationalist consciousness among the people.

Master Baldev Prasad was appealing to the people through his newspaper to send the flag to Nagpur for Satyagraha. He himself felt that he too should participate in this great yagna. He could not ignore his inner voice and left for Nagpur. In this way, Master Baldev Prasad who was born in 1888 in Sagar, gave a new direction to the Jhanda Satyagraha through his newspaper Prakash.

The Flag Satyagrah of 1923 was a non-violent Satyagraha in accordance with “Bapu’s” ideals in his absence. Therefore, even today, we should not forget his way of life in his absence, because this is the path following which we can stop the growing westernization of Indian civilization. Dr. Rajendra Prasad had described the Flag Satyagraha as "a movement that refines national life". In this way, the people of Sagar played an important role in the Flag Satyagraha also and Sagar's name once again came on the national scene.

Department of History
Govt. Auto. Girls P.G. College of Excellence, Sagar (M.P.)
naveengideon@gmail.com

References:

1. National Archives (Delhi), Note on Civil Disobedience Movement in CP and Barar: 31 December, 1930, p 26 and Home Political File No. 900 Part I/S.N., 1-2/1922-23.
2. National Archives (Delhi), Memoir/letter No. 441/PTR./MG/85: dated 11.10.1985: obtained from Shri Vishwambharnath Pandey who participated and suffered in the Jabalpur Satyagrah.
3. National Archives (Delhi), Note on Civil Diobedience Movement in CP and Barar: 31 December 1930, p 26.
4. Guru, Rameshwar Prasad & Shukla Shankarlal: Swatantra Sangram aur Jabalpur Nagar, Bhopal, 1958 p 20.
5. Ibid, p 184.
6. Birla D. C. : Civil Diobedience Movement in CP and Barar, Nagpur, 1930, p 26.
7. Guru, Rameshwar Prasad & Shukla Shankarlal: Swatantra Sangram aur Jabalpur Nagar, Bhopal, 1958 p 20.
8. Mitra S.K.: The Indian Annual Register 1923: Summery of Chief Events of 1923, Calcutta, 1923, p 1.
9. Mishra D. P. : The History of the Freedom Movement in Madhya Pradesh, Bhopal, 1956, p 322.
10. National Archives (Delhi), Home Political Department: File No. 25/April/1923: p 17.
11. Biyani Brijlal : Shukla Abhinandan Granth: History Section, Nagpur, 1955, p 149.
12. National Archives (Delhi), Home Political Department: File No. 25/April/1923, p 17.
13. Mitra S.K.: The Indian Annual Register 1923: Summery of Chief Events of 1923, Calcutta, 1923, p 1.
14. Ibid: Part 2: p 160.
15. Mishra D. P. : The History of the Freedom Movement in Madhya Pradesh, Bhopal, p 324
16. Ibid: p 326.
17. Seth Govind Das: Atmanirikshan-Part 2, New Delhi, 1962, p 194.
18. National Archives (Delhi), Home Political Department (Political): File Nu. 280/1923: p 39.
19. Biyani Brijlal : Shukla Abhinandan Granth : History Section, Nagpur, 1955, p 149.
20. National Archives (Delhi), Home Political Department (Political): File Nu. 280/1923: p 39.
21. Ibid: p 17.
22. Biyani Brijlal : Shukla Abhinandan Granth : History Section, Nagpur, 1955, p 149
23. National Archives (Delhi), Home Political Department: File No. 280/1923, p 17.
24. Ibid: File No. 24/1923, p 50.
25. Ibid: File No. 163/1923, Nagpur, 1 October, 1923.
26. Tiwari S.K. : Azadi Ke Diwane, Sagar, 1961, p 4.
27. Ibid, p 4.
28. Tiwari Balbhadra (ed.) Prajamitra, Bhopal, 1990, p 3.
29. Madhya Pradesh ke Swatantrata Sangram Sainik, Part-2, Directorate of Information & Publication, M.P., Bhopal, 1983, p 8.

30. Ibid, p 31.
31. Ibid, p 59.
32. Ibid, p 48.
33. Ibid, p 63.
34. Ibid: File No. 280/1923, p 17-18.
35. Seth Govind Das: Atmanirikshan-Part 2, New Delhi, 1962, p 194 & National Archives (Delhi), Home Political Department (Political): File No. 198/1923.
36. National Archives (Delhi), Note on Civil Disobedience Movement in CP and Barar: 31 December, 1930.

Emojis in Communication: Understanding Misunderstandings and Emotional Expression

Advitya Indu Mahajan¹, Rashi Taggar²

Abstract:

This study investigates the role of emojis as a form of kinesics in digital communication, examining their ability to convey emotions and expressions across genders and age groups. Using a quantitative approach, data from 232 participants yielded over 1800 emojis, categorized based on Unicode labels. Results revealed that female users displayed more variation in emoji usage, particularly in categories like Smileys & Emotions, People & Body, and Travel & Places, while males predominantly used Smileys & Emotions. Sentiment analysis and Artificial Neural Networks (ANN) underscored the importance of interpreting emojis accurately, with age and gender influencing communication patterns. The findings offer valuable insights for marketers, suggesting the potential of emojis to enhance customer interactions and promotional strategies. Businesses can create more authentic and engaging communication experiences by aligning emoji usage with demographic preferences. This study bridges the research gap in marketing by offering to add emojis as non-verbal cues and offers practical applications for improving digital communication strategies. The present study is a descriptive and cross-sectional study, so conducting longitudinal studies in the future is also recommended, offering more profound insights into the before and after use scenarios of emojis in marketing campaigns and consumer attitudes towards them. The study recommends using chatbots as relationship management tools and training them to add appropriate emojis to handle human emotions more effectively.

Keywords: Emojis, Computer-Mediated Communication, Artificial Neural Networks, Emotions, Chatbots

Introduction

The origins of human communication can be traced back approximately 35,000 years, when early individuals conveyed knowledge and experiences through symbols painted on cave walls. Ancient Egyptians utilized hieroglyphs to communicate ideas throughout their civilization (Rega, 2017). These hieroglyphs were composed of different pictograms, where distinguished pictures represent an object or related concepts (Kondrashov, 2024). Though there have been tracings of images carved on walls that date back to 12,000 years ago, Egyptian hieroglyphs have been the most famous mode of communication using pictures (Balogh, 2024). Carved on wood or, most famously, stones, these hieroglyphs served as a means to record history and ancient literature. Over the years, and primarily after the

emergence of the internet in the 20th century (Khorshiddoust, 2023), communication has transformed significantly, evolving from face-to-face interactions to computer-mediated communication (CMC) through smartphones and various messaging platforms. This shift did not occur overnight; initially, CMC was asynchronous, lacking the immediacy of real-time exchanges. However, synchronous communication methods emerged with technological advancements, including video conferencing and instant messaging.

As these alternative communication modes gained popularity, the challenge of conveying emotional nuances became evident. In non-verbal communication between individuals, facial expressions and hand gestures contribute significantly to meaningful communication. Kannan and Shreya (2017) suggested incorporating non-verbal cues could enhance emotional expression in digital interactions. The researchers recommended using one of the non-verbal cues, namely emoticons, in textual communication to make them more interactive, enhancing the communication between the sender and receiver. This foundation of symbolic communication paved the way for the widespread adoption of emojis, which have become universally recognized symbols for expressing emotions in online conversations.

Since the release of Unicode 14.0.0, which added 37 new emojis in September 2021, the total number of emojis has increased to 3,664 with the launch of Emojis 15.0 in 2023 (Molloy, 2023). Many brands have started incorporating emojis in their advertisements, showcasing their different products with emotional factors of emojis. However, the increased number of emojis and their frequent use also pose risks, as misinterpretation can negatively affect brand perception. For utilitarian products, a mismatch between the emojis used for their advertisements and their actual function may lead to an attenuated purchase intention of consumers towards that. Given the vast number of emojis available for use and the cruciality of choosing the appropriate emojis, this study aims to explore the motivations behind emoji usage and quantitatively find the criticality of emoji misinterpretation compared to demographic factors using a non-linear neural network technique. This study also examines demographic differences in emoji use for communication and self-expression. This study advances the present understanding of emoji usage. It helps brands develop effective communication strategies to enhance their brand-customer relationships, thus mitigating the risk of emoji misuse and improving their product presentation among customers.

Literature Review

The evolution of emojis can be understood through several communication theories. The Media Richness Theory, proposed by Daft and Lengel (1986), emphasizes that richer communication forms, such as face-to-face interactions, provide more non-verbal cues, allowing for instant personalization. Another pertinent theory is the Uncertainty Reduction Theory, developed by Berger and Bradac (1983), which examines how individuals seek to interpret messages within CMC. Emojis have been adopted as cues that aid users in navigating their interactions, helping them gauge the sender's emotions and intent.

Research by Park et al. (2014) found that users often rely on a limited set of emoticons, favoring positive representations to express happiness or agreement more than negative feelings. The interpretation of messages is significantly affected by the inclusion of emoticons. Derks et al. (2008) examined the role of emoticons in email communication and found that they enhance the emotional tone of messages, intensifying the sentiments expressed. Moreover, users' focus on emoticon features, such as facial expressions, suggests that these symbols can increase the authenticity of digital interactions, resembling in-person conversations (Kannan & Shreya, 2017).

The emotional impact of emojis has been explored, with studies such as Lohmann et al. (2017) indicating that the type of emoji influences the emotional responses of receivers. Gender differences also play a role in emoji usage in CMC. Research by Tossell et al. (2012) indicates that while females use emoticons more frequently, males tend to employ a wider variety of them, albeit less frequently. Age influence the frequency and type of emojis used, with younger individuals more likely to utilize emojis over traditional emoticons (Prada et al., 2018). The motivations for using emojis range from lightening the mood to enhancing clarity in digital interactions, indicating that emojis serve as essential tools for emotional expression and communication. However, emojis are not without pitfalls. Misinterpretations can arise, leading to negative interactions, particularly in emotionally charged conversations. Emojis can mitigate some misunderstandings by serving as visual substitutes for facial expressions (Thompson & Foulger, 1996), but they cannot entirely replace the richness of in-person dialogue.

Brands have recognized the importance of emojis in establishing emotional connections with consumers. An emotional bond with a brand is often articulated through admiration, trust, and respect (Ponzi et al., 2011). Consequently, brands are now analyzing consumer emoji usage to refine their communication strategies and foster long-term relationships with their audiences. In conclusion, while emojis and emoticons enhance emotional expression in CMC, understanding their implications is essential for effective communication. As technology continues to evolve, so will the ways in which consumers and brands leverage these visual tools to connect meaningfully in a digital landscape.

Researchers have shown an increased interest in the use of emojis by brands thereby establishing relationships with customers. However, very limited evidence has been found in the context of the misinterpretation of emojis and how important it is to include the misinterpretation of emojis brand-consumer communication.

Research Question 1: Is there any difference in the usage frequency of emojis among different age groups?

Research Question 2: Which categories of emojis are used most frequently by digital media users to use and include them more often in brand-consumer communication?

Research Question 3: Is there any difference in emoji sentiments (positive/neutral/negative) among different genders?

Methodology

This quantitative research analyzes emoji usage in online texting via users' smartphones as a foundation for studying the prospective brand-consumer communication process. Primary data on the usage of emojis was collected from participants. Through an online survey and purposive sampling technique, respondents from these particular age groups were acquired, leading to a clearer picture of the usage of emojis in online communication. A total of 340 surveys were used to collect respondents' required emoji usage patterns. Only 232 sets of relevant respondents' data were used for the study from the total distributed survey of 340. This constituted a respondent return percentage of 68.23%

Analysis

A total of 232 questionnaires collect data from various users engaged in online texting. This yielded over 1,800 emoji responses, comprising 229 unique emojis, which represent approximately 6.3% of all available emojis. The respondents, aged 18 to 45, included 117 females and 115 males, allowing for a balanced gender analysis of emoji usage. Both senders and receivers were asked if they had ever misinterpreted emojis in online communication, with responses recorded on a 5-point Likert scale. Table 1 presents the gender-wise responses. Participants provided various reasons for using emojis in their online chats. Text mining has emerged as a valuable technique for identifying frequent keywords from these responses (Van Den Rul, 2021), flow chart in Figure 1 highlights the procedure for forming word cloud. In the word cloud (Figure 2), larger font sizes indicate greater frequency.

Table 1. Emojis are misinterpreted between the sender and receiver in online texting.

Response	Female	Male	Female Percentage	Male Percentage
Strongly Agree	3	5	3%	4%
Agree	20	23	17%	20%
Neutral	62	51	53%	44%
Disagree	22	25	18%	22%
Strongly disagree	10	11	9%	10%
Total	117	115	100%	100%

Source: Compiled by Authors from the collected data

Table 2. Emojis Descriptive Analysis as per age group vis-à-vis gender

Age_Group/ Gender	Female	Male	Total
18-22	360	218	578
23-27	316	179	495
28-32	145	145	291
33-37	140	60	200
37-42	87	58	145
Above 42	65	44	109
Total	1114	704	1818

Source: Compiled by Authors from the collected data

Emoji Variance Analysis

Approximately 6.3% of the total emojis present in the comprehensive framework of the emojis world were recorded in the study. A total of 1818 emojis were entered in response to the question of the most frequent emojis used by the users daily. Out of 1818, the Male gender entered 876 emojis and 942 emojis by the female gender. The most frequently used emojis by the male gender are presented in Table 3, contributing to 50% of total emojis usage in a 24-hour day.

Table 3. Categorization of emojis entered by males

Unique Emojis	Count	Cumulative Percentage	Name	Sub-Category	Unique Sub-Categories	Categories
☺	74	8%	Face with tears of joy	Face-Smiling	Face-Smiling	Smileys & Emotions
🤪	42	13%	Rolling on the floor laughing	Face-Smiling	Emotion	People & Body
😓	36	17%	Grinning face with sweat	Face-Smiling	Hands-Fingers-Closed	Travel & Places
❤️	33	21%	Red Heart	Emotion	Face-Concerned	
👍	25	24%	Thumbs up	Hand-Fingers-Closed	Face-Affection	
😬	23	27%	Pleading face	Face-Concerned	Sky & Weather	
😏	22	29%	Slightly smiling face	Face-Smiling	face-neutral-skeptical	
😍	20	31%	Smiling face with hearts	Face-Affection	Smiley & People	
😎	20	34%	Beaming face with smiling eyes	Face-Smiling	Face-Glasses	
😴	20	36%	Smiling face with smiling eyes	Face-Smiling	Face-sleepy	
😘	19	38%	Face blowing a kiss	Face-Affection		
🔥	16	40%	Fire	Sky & Weather		

☹	16	42%	Smirking face	face-neutral-skeptical		
😊	15	44%	Smiling face with heart-eyes	Face-Affection		
😐	15	45%	Unamused face	face-neutral-skeptical		
🙌	12	47%	Folded hands	Smiley & People		
😎	11	48%	Smiling face with sunglasses	Face-Glasses		
🙄	10	49%	Man facepalming	Smiley & People		
😴	10	50%	Relieved face	Face-sleepy		

Source: Authors' compilation based on data collected

The most frequent emojis that account for 50% of total emojis usage by the female gender are presented in Table 4. All the subcategories of emojis contributing to 50% of total emojis usage contained facial expressions and are under Smileys and Emotions.

Table 4. Categorization of emojis entered by females

Emoji	Count	Cumulative Percentage	Name	Subcategory	Unique Subcategories	Categories
😄	58	7%	Face with tears of joy	Face-Smiling	Face-Smiling	Smileys & Emotions
❤	39	12%	Red Heart	Emotion	Emotion	
😂	37	17%	Rolling on the floor laughing	Face-Smiling	Face-Smiling	
😓	32	21%	Pleading face	Face-Concerned	Face-Concerned	
😊	30	24%	Smiling face with heart-eyes	Face-Affection	Face-Affection	
😘	23	27%	Face blowing a kiss	Face-Affection	Face-neutral-skeptical	
😐	23	30%	Unamused face	face-neutral-skeptical	Face-hand	

☐	20	33%	Beaming face with smiling eyes	Face-Smiling	Face-sleepy	
☐	20	35%	Smiling face with smiling eyes	Face-Smiling		
☐	19	38%	Smiling face with hearts	Face-Affection		
☐	19	40%	Grinning face with sweat	Face-Smiling		
☐	15	42%	Smirking face	face-neutral-skeptical		
☐	15	44%	Face with hand over mouth	Face-hand		
☐	15	46%	Relieved face	Face-sleepy		
☐	14	47%	Loudly crying face	Face-Concerned		
☐	13	49%	Face with rolling eyes	face-neutral-skeptical		
😊	13	50%	Smiling face	Face-Affection		

Source: Authors' compilation based on data collected

In the analyzed data, males entered 171 unique emojis, while females used 162. Although males utilized more emojis overall, they favored a smaller set of frequently used emojis compared to females, who exhibited a wider variety of emoji usage. The differences in usage patterns suggest that while males may explore a broader range of options, females engage with a greater diversity of emojis.

Sentiment Polarity Count Chart

An essential sentiment analysis task is finding the polarity of the sentence, text, or emoji. Sentiment polarity determines the orientation of the text. For text sentiment analysis, VADER (Valence Aware Dictionary for Sentiment Reasoning) model is used to analyze the emotion's polarity and intensity.

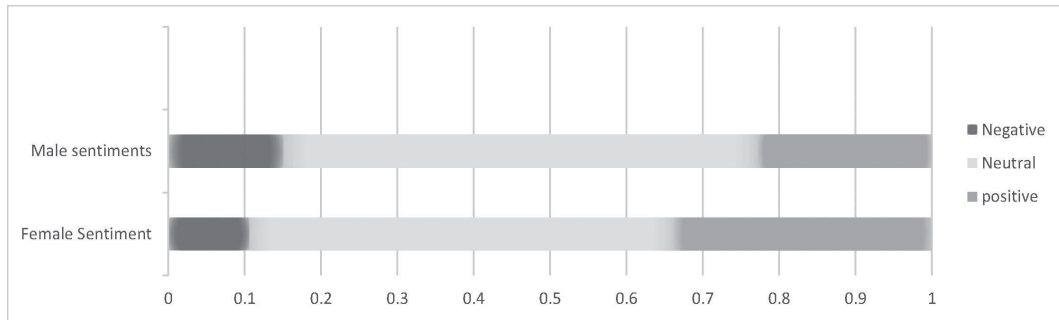


Figure 3. The sentiment polarity analysis compared between gender

All the unique emojis used by female and male gender were taken, and their sentiment analysis was done through Vader sentiment analysis to calculate the positive, neutral, and negative scores. In figure 3, these scores were arranged in corresponding ratios and arranged for comparing the two genders. It was found that males use more negative emojis than females, who use more positive emojis.

Artificial Neural Network (ANN)

Artificial Neural Networks (ANN), because of its capabilities to replicate the brain's activity, is gaining popularity as the primary data analytic tool (Florea & Roman, 2021). In various streams, neural networks are used for modeling input-to-output variables and predicting the output characteristics based on the input variables (Sutrisno et al., 2023). The applicability of ANN over the non-normal data distributions and non-linear relationships between the variables makes it an excellent choice for further analysis in the study (Teo et al., 2015). Demographic variables like gender, age group, and other valid variables were entered as input neurons in the network to predict the outcome, such as the probability of the individual's usage of emojis in communication.

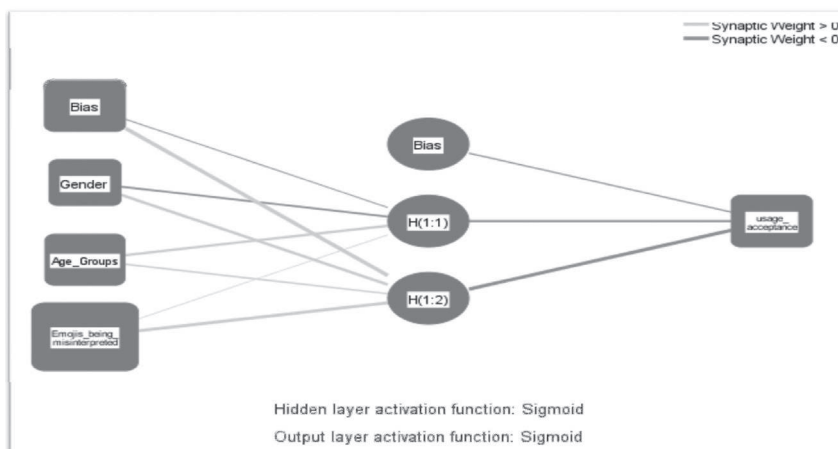


Figure 4. Artificial Neural Network Diagram

Source: Analysis by the Authors

Table 4. Root mean square of error values (RMSE)

Training			Testing			
N	SSE	RMSE	N	SSE	RMSE	Total Samples
167	1.927	0.107	65	0.501	0.088	232
166	1.368	0.091	66	0.900	0.117	232
152	1.347	0.094	80	0.874	0.105	232
164	1.794	0.105	68	0.443	0.081	232
150	1.789	0.109	82	0.448	0.074	232
157	1.355	0.093	75	0.905	0.110	232
161	0.900	0.075	71	1.32	0.136	232
148	1.752	0.109	84	0.416	0.070	232
160	1.771	0.105	72	0.466	0.080	232
164	1.342	0.090	68	0.905	0.115	232
Mean	1.535	0.098	Mean	0.718	0.098	
Standard Deviation	0.304	0.011	Standard Deviation	0.290	0.021	

Note: SSE = Sum of square errors, RMSE = Root mean square of errors, N = Sample size

Source: Analyzed and presented by Authors

In the study, three factors were input as neurons in the model to predict emoji acceptance. A 70:30 training-testing technique was earmarked to get an optimized model. To avoid the likelihood of overfitting the network model generated, a ten-fold rotation estimation procedure was utilized to obtain the values of the root mean square of errors (RMSE) (Ooi & Tan, 2016). As shown in Table 4, relatively small values of 0.098 and 0.098 for training and testing were obtained in the acceptable range of 0 to 1. The obtained values close to 0 admit the possibility of excellent model fit by the neural network.

In Table 5, sensitivity analysis for the input variable was conducted. Sensitivity in the model determines the strength of each neuron with the whole model's parameters. Normalized importance is used to predict the strength of each neuron compared to the other input neurons. Age, along with gender, were taken as two primary neurons. Both are the basic demographic user indicators used to target users over online media (Koch et al., 2022). These indicators were then mixed in a model along with emojis being misinterpreted neurons to test the normalized association between the three. The analysis showed that emojis being interpreted are the most significant predictor variable in emoji usage in communication, followed by age (68%) and last gender (23%).

Table 5. Sensitivity Analysis

Neural Network (NN)	Gender	Age Gap	Emoji being misinterpreted
NN1 Importance	0.12	0.30	0.57
NN2 Importance	0.14	0.25	0.60
NN3 Importance	0.28	0.33	0.39
NN4 Importance	0.02	0.53	0.46
NN5 Importance	0.01	0.53	0.46
NN6 Importance	0.08	0.22	0.70
NN7 Importance	0.11	0.26	0.63
NN8 Importance	0.04	0.51	0.46
NN9 Importance	0.18	0.21	0.61
NN10 Importance	0.22	0.41	0.37
Average Importance	0.12	0.36	0.53
Normalized importance (%)	0.23	0.68	1.00

Source: Analyzed and presented by Authors

According to the neural network analysis, the top predictor in detecting the usage pattern of the emojis is the misunderstanding of emojis. Apart from age and gender, respondents feel that misinterpretation of emojis in online communication is critical while studying its successful incorporation. Suciu (2021), in an article published in Forbes, discussed the usage of emojis by different age groups and found that identity patterns are different for every generation. The same has been seen in the study of consumer behavior while identifying these emojis to relate to particular situations. In the psycho-graphics aspects, age difference significantly impacts emoji usage while contributing to the specific tone of the conversation. For Generation X, while it was essential to enhance their message tone by using emojis, generation Z started utilizing them more frequently, mixing several emojis to fit into a particular context and raising communication to another standard. With these identity patterns not being the same, a barrier came between different generations where effective communication can only occur when its' done without a breakdown between the conversations' contexts. Thereby highlighting the misinterpretations of emojis as a critical factor when dealing with consumers from different age groups.

Discussions

Emojis frequently used belong to categories such as Smileys & Emotions, People & Body, and Travel & Places, accounting for 50% of male emoji usage. Meanwhile, for females, the main emoji category that emerged was smiles and emotions, with greater diversity in usage of subcategories falling under the smiley and emotions category. The interpretation of emojis emerged as a primary predictor of their effectiveness, emphasizing their role in conveying nuanced meanings. The findings of this study on emoji usage align with the Media Richness Theory, suggesting that emojis enhance communication richness

by serving as visual representations of emotions and contextual information. These findings support the notion that effective emoji usage relies on conveying and comprehending the richness of the communication medium to minimize misunderstandings and uncertainty.

The rising popularity of emojis in online communication has encouraged brands to integrate them into their interactions with consumers. This study focused on emoji usage among users of various digital social media platforms and understanding how brands can leverage these findings to enhance brand-consumer relationships. Such relationships can develop through social media advertisements, announcements of new products, and ongoing consumer engagement. This study similarly investigates the reasons behind emoji usage, confirming that expressing emotions and reducing misunderstandings are the primary motivations.

Laurenceau et al. (1998) highlighted that emotional expressions from both senders and receivers significantly impact perceived intimacy levels. The results of this study corroborate this notion, with data showing that females express more positive and fewer negative emotions through emoji usage than males, who tend to convey more negative emotions in CMC. Content creators and social media strategists emphasize using neutral emojis to set an appropriate tone in brand communications (Smith, 2023). As shown in Table 5, males use neutral emojis 62% of the time, while females use them 56% of the time. This higher usage correlates with the effectiveness of these emojis in creating a neutral environment conducive to effective communication. Brands can utilize neutral emojis, such as thumbs up or stars, to enhance their messaging. Organizations can use these findings when advertising their brand and products to target a specific gender group. They can utilize emojis from the smileys and emotions category, which is the most used emoji category by both genders, to resonate their brand meaning and also not challenge the mindset of their customer to misunderstand or misinterpret the meaning of their emojis concerning the brand or the product. Furthermore, younger participants were found to use emojis more frequently, with usage decreasing among older age groups. The inability to capture the meaning of the emojis in a conversation has been identified as the primary constraint among older generations. This pattern matches the identity patterns of different age group and their usage of emojis in a study by Suciu (2021). While Generation X utilized emojis for their email only, which involved the combination of different symbols, in later generations, the emojis were frequently used by users in SMS and other digital platforms. For Generation Z, also known as digital natives, the use of emojis is a daily routine due to their exposure to these emojis from a young age, giving emojis a vital space in their daily lives. Due to their exposure to emojis in daily CMC, younger generations are likely to appreciate brands that incorporate emojis in their communication. However, businesses should refrain from throwing random emojis at their audience and only utilize the ones that their audience can identify and relate their business to (Peek, 2024). Importantly, this research also addresses the potential for emojis to be misinterpreted. For brands to be effective in their campaigns, it is essential that they use appropriate and relevant emojis, as consumers will respond more favorably to messages that resonate with them.

Implications and Conclusion

Emojis, as a tool in communication, play a pivotal role in bridging misunderstandings and enhancing emotional expression. In today's hyper-connected world, marketers must innovate to engage customers effectively, particularly in customer-centric relationship management. The rise of artificial intelligence has led many large tech firms to adopt chatbots for customer interactions, offering instant and accurate responses. However, these tools often lack the empathy consumers desire. While chatbots are designed to enhance customer perceptions of brands, their inability to convey empathy can undermine their effectiveness.

The 55/38/7 formula, developed by Albert Mehrabian, emphasizes that 55% of communication is non-verbal (body language and facial expressions), 38% is vocal tone, and only 7% comes from words (Quinn, 2023). This insight highlights the importance of conveying attitudes and emotions in communication, which chatbots often struggle to achieve. Incorporating emojis into online interactions can help bridge this gap by adding an emotional layer to conversations. However, organizations must critically train chatbots to use emojis appropriately and maintain effective customer relations. Misuse of emojis, such as the evolving interpretation of the yellow-faced smiley emoji—now sometimes conveying sarcasm or frustration—can create confusion and negatively impact brand-customer relationships, particularly in sensitive contexts. Proper integration of emojis can enable chatbots to engage in more natural conversations and better recognize consumers' emotional states.

From a marketing perspective, the use of emojis has proven to significantly boost engagement. According to a survey by Wordstream, tweets containing emojis see a 25% increase in engagement, while Facebook posts with emojis can achieve a 57% boost in interaction. Even on professional platforms like LinkedIn, strategic use of emojis can help brands stand out. However, with over 3,000 emojis available, brands must carefully select those that align with their personality (Falguni, 2023), as inappropriate emoji use can lead to misinterpretations and damage credibility. Research by Koetsier (2017) cites a survey from Leanplum and App Annie, noting that app marketers increased open rates by 85% by incorporating emojis into push notifications, demonstrating their power to enhance digital interactions.

While emojis may seem like a minor aspect of communication, they significantly influence digital interactions. As emojis become more integrated into social and business communication, companies must adapt to these changes to remain relevant. Appropriate use of emojis can foster better audience understanding and strengthen customer relationships. Conversely, excessive or inappropriate emoji use risks alienating consumers. Striking the right balance is key to enhancing the emotional context of conversations and making interactions more effective. Thoughtful adoption of emojis can significantly benefit companies and their brands. By leveraging emojis to convey empathy and emotional depth, organizations can foster stronger customer connections and enhance overall engagement.

Future scope

The findings of this study are based on responses from participants at the time they completed the questionnaire, which may introduce limitations. Time constraints hindered conducting a broader study with a more diverse audience. Future research could involve longitudinal studies from cross-cultural perspectives to deepen understanding. Also, following the trend of the addition of new emojis in the emoji pool calls for further investigation in the field to explore the ability of these newly added emojis to enhance the communication process while simultaneously investigating the need for new emojis. Investigating the cultural independence of emojis is also a promising area for further study. This research primarily focused on quantifying whether CMCs are misunderstood; however, future studies could explore the patterns and reasons behind misunderstandings in CMC. Additionally, future research could assess consumer attitudes toward marketing campaigns and relationship management systems before and after incorporating emojis.

School of Business
Shri Mata Vaishno Devi University, India
¹advitya.indu.mahajan@gmail.com
²rashi.taggar@smvdu.ac.in

References:

1. Balogh, D. (2024, August 20). *From hieroglyphics to emojis: how communication has changed over time*. Ooma.com - Smart Solutions for Home and Business. <https://www.ooma.com/blog/hieroglyphics-to-emojis-communication-over-time/>
2. Berger, C. R., & Bradac, J. J. (1983). Language and social knowledge: Uncertainty in interpersonal relations. *Contemporary Sociology*, 12(6), 686. <https://doi.org/10.2307/2068062>
3. Broni, K. (2021). What's New in Unicode 14.0. *Emojipedia*. <https://blog.emojipedia.org/whats-new-in-unicode-14-0/>
4. Daft, R. L., & Lengel, R. H. (1986). Organizational information requirements, media richness and structural design. *Management Science*, 32(5), 554–571. <https://doi.org/10.1287/mnsc.32.5.554>
5. Derks, D., Bos, A. E. R., & Von Grumbkow, J. (2008). Emoticons and online message interpretation. *Social Science Computer Review*, 26(3), 379–388. <https://doi.org/10.1177/0894439307311611>
6. Desk, T. (2021, September 15). Unicode 14.0 brings 37 new emojis including Saluting Face, Biting Lip and more. *The Indian Express*. <https://indianexpress.com/article/technology/tech-news-technology/unicode-14-0-brings-37-new-emojis-including-saluting-face-biting-lip-and-more-7510918/>
7. Falguni. (2023). The subtle art of using emoji marketing for customer engagement. *MoEngage*. <https://www.moengage.com/blog/the-subtle-art-of-emoji-marketing-for-customer-engagement/>
8. Florea, A. R., & Roman, M. (2021). Artificial neural networks applied for predicting and explaining the education level of Twitter users. *Social Network Analysis and Mining*, 11(1). <https://doi.org/10.1007/s13278-021-00832-1>
9. Janssen, J., IJsselstein, W. A., & Westerink, J. H. D. M. (2014). How affective technologies can influence intimate interactions and improve social connectedness. *International Journal of Human-computer Studies*, 72(1), 33–43. <https://doi.org/10.1016/j.ijhcs.2013.09.007>
10. Kannan, S., & Shreya, N. (2017). Understanding Emoticons: Perception and usage of emoticons in WhatsApp. *Artha Journal of Social Sciences*, 16(3), 49–68. <https://doi.org/10.12724/ajss.42.4>
11. Khorshiddoust, M. (2023, January 17). The evolution of IT: from hieroglyphics to smartphones! *Medium*. <https://medium.com/@mahsashid/the-evolution-of-it-from-hieroglyphics-to-smartphones-29e83b959831>

12. Koch, T., Romero, P., & Stachl, C. (2022). Age and gender in language, emoji, and emoticon usage in instant messages. *Computers in Human Behavior*, 126, 106990. <https://doi.org/10.1016/j.chb.2021.106990>
13. Koetsier, J. (2017, February 27). Emojis boost push notification open rates 85%, study says. *VentureBeat*. <https://venturebeat.com/mobile/emojis-boost-push-notification-open-rates-85-study-says/>
14. Kondrashov, S. (2024, January 23). From Hieroglyphs to Emojis: *The History of Visual Communication*. <https://www.linkedin.com/pulse/from-hieroglyphs-emojis-history-visual-communication-kondrashov-icp7f>
15. Laurenceau, J., Barrett, L. F., & Pietromonaco, P. R. (1998). Intimacy as an interpersonal process: The importance of self-disclosure, partner disclosure, and perceived partner responsiveness in interpersonal exchanges. *Journal of Personality and Social Psychology*, 74(5), 1238–1251. <https://doi.org/10.1037/0022-3514.74.5.1238>
16. Li, L., & Yang, Y. (2018). Pragmatic functions of emoji in internet-based communication---a corpus-based study. *Asian-Pacific Journal of Second and Foreign Language Education*, 3(1). <https://doi.org/10.1186/s40862-018-0057-z>
17. Lohmann, K., Pyka, S., & Zanger, C. (2017). The effects of smileys on receivers' emotions. *Journal of Consumer Marketing*, 34(6), 489–495. <https://doi.org/10.1108/jcm-02-2017-2120>
18. Molloy, S. (2023). The power of emojis – yes, emojis – in brand communications. *Mumbrella*. <https://mumbrella.com.au/the-power-of-emojis-yes-emojis-in-brand-communications-794171>
19. Ooi, K., & Tan, G. W. (2016). Mobile technology acceptance model: An investigation using mobile users to explore smartphone credit card. *Expert Systems With Applications*, 59, 33–46. <https://doi.org/10.1016/j.eswa.2016.04.015>
20. Park, T. W., Kim, S., & Lee, G. (2014). A Study of Emoticon Use in Instant Messaging from Smartphone. In *Lecture Notes in Computer Science* (pp. 155–165). https://doi.org/10.1007/978-3-319-07227-2_16
21. Peek, S. (2024, January 19). Put a smiley on it: *Should you use emojis in business communications?* business.com. <https://www.business.com/articles/put-an-emoji-on-it-should-you-use-emojis-in-business-communication/>
22. Ponzi, L. J., Fombrun, C. J., & Gardberg, N. A. (2011). RepTrak™ Pulse: Conceptualizing and Validating a Short-Form Measure of Corporate reputation. *Corporate Reputation Review*, 14(1), 15–35. <https://doi.org/10.1057/crr.2011.5>
23. Prada, M., Rodrigues, D. L., Garrido, M., Cavalheiro, B. P., & Gaspar, R. (2018). Motives, frequency and attitudes toward emoji and emoticon use. *Telematics and Informatics*, 35(7), 1925–1934. <https://doi.org/10.1016/j.tele.2018.06.005>
24. Quinn, J. (2023). How much of communication is nonverbal? | UT Permian Basin Online. *The University of Texas Permian Basin* | UTPB. <https://online.utpb.edu/about-us/articles/communication/how-much-of-communication-is-nonverbal/>
25. Rega, J. (2017). Evolving emojis: Designing for the new face of messaging. *Toptal Design Blog*. <https://www.toptal.com/designers/ui/emoji-evolution>
26. Smith, B. M. (2023). Want More Likes and Shares? Don't be afraid to use Emojis. *www.linkedin.com*. <https://www.linkedin.com/pulse/want-more-likes-shares-dont-afraid-use-emojis-benjamin-munro-smith/>
27. Suciu, P. (2021, August 24). Generation Divide: Different Age Groups Use Emojis Differently And That Isn't Likely Going To Change. *Forbes*. <https://www.forbes.com/sites/petersuciu/2021/08/24/generation-divide-different-age-groups-use-emojis-differently-and-that-isnt-likely-going-to-change/?sh=61ae2a753577>
28. Sukheja, B. (2022, April 18). *Apple Rolls Out Pregnant Man Emoji To All iOS Users, Internet Not Happy*. NDTV.com. Retrieved August 2, 2023, from <https://www.ndtv.com/offbeat/apple-rolls-out-pregnant-man-emoji-to-all-ios-users-internet-not-happy-2897626>
29. Sutrisno, S., Khairina, N., Syah, R., Eftekhari-Zadeh, E., & Amiri, S. (2023). Improved Artificial Neural Network with High Precision for Predicting Burnout among Managers and Employees of Start-Ups during COVID-19 Pandemic. *Electronics*, 12(5), 1109. <https://doi.org/10.3390/electronics12051109>
30. Thompson, P. A., & Foulger, D. A. (1996). Effects of pictographs and quoting on flaming in electronic mail. *Computers in Human Behavior*, 12(2), 225–243. [https://doi.org/10.1016/0747-5632\(96\)00004-0](https://doi.org/10.1016/0747-5632(96)00004-0)
31. Tossell, C. C., Kortum, P., Shepard, C., Barg-Walkow, L. H., Rahmati, A., & Lin, Z. (2012). A longitudinal study of emoticon use in text messaging from smartphones. *Computers in Human Behavior*, 28(2), 659–663. <https://doi.org/10.1016/j.chb.2011.11.012>
32. Van Den Rul, C. (2021, December 12). How to generate Word Clouds in R - towards Data Science. *Medium*. <https://towardsdatascience.com/create-a-word-cloud-with-r-bde3e7422e8a>

Unveiling Reality: Sci-Fi, Upaniṣadic Wisdom, and the Post-Truth Paradigm

Vandana Rajoriya

Abstract:

Amid digital disinformation and algorithmic distortions, our shared foundations of knowledge are eroding, sparking a post-truth crisis. This paper examines how science fiction films—*The Matrix Trilogy*, *The Day the Earth Stood Still*, *Avatar*, and *Tenet*—challenge the blurry lines between reality and illusion in a digital age. By invoking Upaniṣadic ideas of *Māyā* (illusion) and *Avidyā* (ignorance), these films question our evolving grasp of truth. While Advaita Vedanta urges transcending illusion through self-realization, the films depict a world increasingly captivated by fabricated realities. The study argues that integrating ancient insights—embodied in sayings like —“*Brahma satyam, jagat mithyā*” (*Brahman* alone is real; the world is an illusion) and “*Tat Tvam Asi*” (Thou art That)—can guide us toward a renewed commitment to absolute truth and a more unified existence—a solution subtly proposed by the films under discussion.

Keywords: Post-truth crisis, Upaniṣadic wisdom, truth and illusion, *Māyā*, *Avidyā*, knowledge, and transcendence.

The post-truth era is defined less by an overabundance of falsehoods than by our quiet surrender to them. In today’s world, truth is not determined solely by objective facts but is shaped by emotions, beliefs, and digital manipulation. This has led to a fragmented reality where objective truth is elusive, driven by widespread digital disinformation, ideological echo chambers, and the erosion of shared ways of knowing. In response, contemporary science fiction films such as *The Matrix Trilogy*, *The Day the Earth Stood Still*, *Avatar*, and *Tenet* offer compelling critiques and alternatives to this fractured epistemic landscape. Through speculative narratives and visual allegories, they interrogate the blurred boundaries between reality and illusion, engaging with philosophical and existential questions about perception and the nature of truth, and ultimately proposing new ways to understand our increasingly subjective and fragmented reality.

These films explore distorted realities that challenge audiences to question the nature of truth and perception. *The Matrix* depicts a simulated world where humanity lives under illusion, while *Tenet* plays with time inversion, flipping cause and effect. Both draw on the Upaniṣadic concept of *Māyā*, presenting modern realities manipulated by technology and

media. *Avatar* critiques corporate exploitation and propaganda, and *The Day the Earth Stood Still* addresses humanity's denial of environmental crises. Together, these films expose how truth is shaped by power, urging reflection on the consequences of living in a world where reality is increasingly malleable and distorted. This paper explores how contemporary science fiction films—*The Matrix Trilogy*, *The Day the Earth Stood Still*, *Avatar*, and *Tenet*—engage with Upaniṣadic wisdom to address the challenges of the post-truth era, using speculative storytelling to examine the nature of truth and illusion. In *The Matrix Trilogy*, the simulated reality reflects the Upaniṣadic concept of *Māyā*, where the perceived world veils the ultimate truth, while *Avatar* critiques ideological conflicts and the illusion of superiority. *The Day the Earth Stood Still* mirrors the Vedantic struggle between ignorance (*Avidyā*) and higher knowledge, and *Tenet* symbolizes the fluidity of reality by disrupting linear time, highlighting the limitations of conventional epistemology. These films offer a lens for reassessing truth in an era of fragmentation and post-truth relativism. Science fiction, often a reflection of technological and societal transformations, has increasingly foreshadowed developments in contemporary digital culture. In light of this, this connection is significant because it suggests that our mediated world, rather than being an escape from truth, can function as a philosophical laboratory where the nature of reality is critically examined.

The central argument of this paper is that Advaita Vedanta, with its core concepts of *Māyā* (illusion) and *Avidyā* (ignorance), provides a robust framework to address the post-truth crisis, offering a unified vision of reality that counters the ideological and epistemic challenges of our fragmented, digitally mediated world. The turn toward Upaniṣadic and Advaita Vedantic wisdom in science fiction marks a deeper cultural shift: sci-fi, traditionally associated with technological foresight, now converges with ancient philosophical insights, suggesting that the empirical quest for knowledge is incomplete without an inquiry into the nature of existence itself. The significance of this cultural shift is further amplified when examined through the lens of science fiction—a genre historically focused on forecasting technological and social evolution. Sci-fi films have long anticipated developments, from artificial intelligence to virtual realities, underscoring the genre's role in uncovering the nature of truth. The increasing incorporation of Upaniṣadic and Advaita Vedantic wisdom in these films signals a pivotal moment in intellectual history. It suggests not only a fascination with Eastern philosophy but also recognition that empirical inquiry alone is insufficient for understanding the complexities of human existence. However, equating post-truth entirely with *Māyā* risks oversimplification. While *Māyā* is an ontological veil obscuring metaphysical truth, the post-truth condition is primarily epistemological, rooted in deliberate distortion rather than existential illusion. The former suggests a barrier to ultimate knowledge, while the latter reflects a calculated manipulation of perception. Nevertheless, both challenge the primacy of objective reality, urging individuals to question not only what they perceive but also the systems that shape those perceptions. This paper argues that the intersection of speculative cinema and Upaniṣadic thought marks a transformative moment in human civilization—one that reframes the post-truth condition not as a crisis, but as an opportunity

to rediscover timeless truths amidst modern anxieties. Speculative cinema, by reimagining the complexities of reality, identity, and illusion, offers a medium through which we can explore these philosophical themes. The Upaniṣads, with their timeless wisdom, provide the necessary philosophical frameworks for understanding the nature of truth, self, and the universe. Together, these forces offer more than just an intellectual escape; they present a path toward awakening—an invitation to confront our contemporary challenges while drawing on the ancient wisdom that can guide us in navigating them.

In the post-truth world, truth no longer succumbs to the weight of lies—it dissolves into irrelevance. As journalist and author Ralph Keyes observes, "In a post-truth world, facts are less important than feelings, and lies are often more convincing than truths." (The Post-Truth Era: Dishonesty and Deception in Contemporary Life 4-5). This paradigm shift characterizes a world where reality is no longer anchored in objective facts but is instead shaped by subjective perceptions, emotional responses, and ideological beliefs. As Japanese philosopher and strategist Miyamoto Musashi famously observed, "Truth is not what you want it to be; it is what it is, and you must bend to its power or live a lie". Science fiction films like *The Matrix*, *Tenet*, *Avatar*, and *The Day the Earth Stood Still* explore this condition, blurring the boundaries between truth and illusion and presenting characters who must navigate manipulated or distorted realities. These films serve as powerful metaphors for the complexities of a world where truth is contested and constantly in flux.

The Matrix introduces a seemingly familiar world that is, in fact, an elaborate computer-generated illusion. In this simulated reality, human beings unknowingly live as captives, subjugated by intelligent machines that exploit their bodies as an energy source. The protagonist, Neo, is awakened from this artificial reality and forced to confront the unsettling truth that everything he once believed was real is merely a fabrication. This scenario mirrors the post-truth world, where truth is not defined by objective facts but by narratives constructed and imposed upon us. At a crucial moment in the film, Morpheus asks, "What is real? How do you define real? If you're talking about what you can feel, what you can smell, what you can taste and see, then 'real' is simply electrical signals interpreted by your brain" (00:45). This statement underscores the subjectivity of reality and highlights how truth is constructed through perception—an idea central to the post-truth condition. In this era, external forces such as media manipulation and political agendas engineer perceptions, prompting individuals to question the very nature of reality. Philosopher Jean Baudrillard provides further insight into this phenomenon, stating, "The real is not what it used to be. It is now a hyperreal—nothing more than a sign that refers only to other signs" (Simulacra and Simulation, 7).

Similarly, *Tenet* presents a world where time is no longer linear, and actions from the past can affect the future in unpredictable ways. The protagonist must grapple with the fluidity of time and the subjectivity of truth as he navigates a reality in which perception and cause-and-effect are constantly in flux. In *Tenet*, the very understanding of truth is challenged at every turn—just as in the post-truth world, where individuals are presented

with different versions of reality shaped by their beliefs, ideologies, and experiences. The Protagonist, known only by that title, asserts, “What’s happened, happened. Which is an expression of fate. But what if it doesn’t?” (02:15), signaling the film’s central theme of manipulated time, altered events, and the uncertainty of truth. This notion mirrors the post-truth era, where reality can be bent, and traditional understandings of time and causality are disrupted—just as truth itself becomes subjective and influenced by perspective. The only way to respond, as Neil suggests, is to abandon rigid logic: “Don’t try to understand it. Feel it.” (01:15). This statement resonates with the post-truth world, where emotional responses and personal beliefs often override objective facts.

Both *Avatar* and *The Day the Earth Stood Still* explore the manipulation of truth in different contexts, reflecting the broader dynamics of the post-truth world. In *Avatar*, the Resources Development Administration (RDA) seeks to exploit Pandora’s natural resources by constructing a false narrative that portrays the indigenous Na’vi as savages unworthy of their land. Colonel Quaritch reinforces this deception with the hypocritical assertion, “We will fight terror with terror” (2:20:14), justifying the RDA’s violent actions by branding the Na’vi as terrorists. This deliberate distortion of truth repackages corporate greed as progress while dismissing the Na’vi’s deep spiritual connection to their environment as primitive superstition. Similarly, in the post-truth world, truth is often twisted to serve political and economic agendas, with powerful entities manipulating narratives to shape public perception. However, Jake Sully’s realization, expressed through the line “I see you” (02:30), directly counters this manipulation. His words symbolize an awakened understanding of reality that transcends the RDA’s fabricated lies, acknowledging the Na’vi’s culture and connection to their land as valid and meaningful. The contrast between Jake’s enlightenment and the RDA’s deception reinforces *Avatar*’s central message: truth is not an objective constant but a contested force, vulnerable to distortion and reinterpretation by those in power.

In *The Day the Earth Stood Still*, humanity’s rejection of objective truth leads to its potential downfall. The alien visitor Klaatu warns that Earth is dying and urges humans to change their ways or face annihilation. His dire message—“Your planet is dying. It is a system that is fundamentally flawed, and I have come here to save it.” (00:43)—is met with skepticism and hostility, illustrating a broader societal tendency to reject inconvenient truths. The film critiques humanity’s reluctance to confront uncomfortable realities, highlighting the dangers of dismissing facts in favor of maintaining a preferred or comforting narrative. This is evident in the exchange between Helen Benson and Klaatu:

Helen Benson: We can change. We can still turn things around.

Klaatu: We’ve watched, we’ve waited, and hoped that you would change.

Helen Benson: Please...

Klaatu: It’s reached the tipping point. We have to act. (*The Day the Earth Stood Still*, 01:13)

This conversation underscores humanity's vulnerability, revealing its failure to accept and act upon the truth, even in the face of an existential threat. The dialogue mirrors the post-truth condition, where denial, ideological biases, and subjective perceptions obscure objective reality—often with catastrophic consequences.

The endings of these films underscore the catastrophic consequences of living in a world where truth is fluid, contested, and manipulated. In *The Matrix* and *Tenet*, the protagonists must peel back layers of illusion to uncover the underlying truths of their realities, reflecting how individuals in the post-truth world must critically examine the narratives constructed for them. As emotional resonance, ideological beliefs, and manipulated perceptions take precedence over facts, the struggle to determine objective truth becomes increasingly complex. Similarly, *Avatar* and *The Day the Earth Stood Still* depict the devastating outcomes of societies where truth is obscured—whether by corporate greed or ideological denial. In *Avatar*, the exploitation of Pandora's resources is justified through the deliberate manipulation of truth about the Na'vi, while in *The Day the Earth Stood Still*, humanity's refusal to accept reality places its very survival at risk. Together, these films illuminate the core of the post-truth paradigm: the deliberate distortion of truth to serve specific agendas, the rejection of objective facts in favor of subjective beliefs, and the profound consequences of a world where truth is no longer an absolute but a construct shaped by those in power. By portraying realities that are engineered, distorted, or denied, these narratives serve as powerful allegories for the dangers of a society where truth is fluid and malleable, reinforcing the urgent need for critical awareness in an era of manufactured realities.

However, amidst the chaos of deception and uncertainty, these films also propose a path to clarity—one that resonates with Upaniṣadic philosophy. The Upaniṣhads emphasize *Satya* (truth) as the ultimate reality, urging individuals to look beyond illusion (*Maya*) and seek a higher, unchanging truth through self-awareness, knowledge, and spiritual awakening. In *The Matrix*, Neo's journey mirrors this philosophy, as he transcends the illusion of the simulated world and attains deeper awareness, akin to the Upaniṣhadic concept of breaking free from ignorance (*Avidya*). Similarly, in *Avatar*, Jake Sully's transformation reflects the Upaniṣhadic principle of unity with the universe (*Brahman*), as he sheds his old identity and embraces the interconnectedness of all life on Pandora. *Tenet* and *The Day the Earth Stood Still* also echo these themes by challenging characters to move beyond linear perceptions of reality and embrace a more enlightened understanding of existence. Ultimately, these films challenge viewers to question the narratives they accept and seek a deeper truth beyond surface-level perceptions. By aligning their solutions with Upaniṣhadic wisdom, they suggest that overcoming the post-truth condition requires inner transformation, self-inquiry, and a commitment to truth that transcends manipulation and illusion.

The Upaniṣadic framework not only offers a critique of illusion (*Māyā*) but also provides a prescription for transcending it, which aligns with the journeys of the protagonists in these films. Advaita Vedanta, particularly through the maxims *Brahma satyam, jagat mithyā* (Shankaracharya 1.5) ("The Absolute is real; the world is an illusion") and *Tat Tvam Asi*

("You are That") (Chāndogya Upaniṣad 6.8), suggests that beyond the shifting, deceptive appearances of the world, there exists an ultimate, unchanging truth (*Brahman*). Each of these films, while engaging with the dilemmas of post-truth, ultimately gestures toward the Upaniṣadic solution: the realization of a deeper, singular reality that dissolves all illusions.

The Matrix epitomizes *Brahma satyam, jagat mithyā*, (Shankaracharya 1.5) as it presents a world where the perceived reality is a grand deception. Morpheus' question to Neo—"Have you ever had a dream, Neo, that you were so sure was real?"(00:30)—parallels Vedantic inquiry, which challenges individuals to examine whether what they perceive as real is truly so. Just as the Upaniṣads urge seekers to look beyond empirical reality, Morpheus offers Neo the choice of the red pill, a metaphor for spiritual awakening. Neo's eventual realization—"The Matrix cannot tell you who you are."—aligns with *Tat Tvam Asi*, as he recognizes that his true nature is beyond the simulated world. His transformation from an ordinary individual to The One echoes the Vedantic journey of self-discovery, where one comes to see that individual identity (*Atman*) is not separate from the greater reality (*Brahman*).

In an era dominated by post-truth dynamics, where facts are often obscured by manufactured narratives, Neo's journey in *The Matrix* offers a counterpoint rooted in Vedantic wisdom. As he transcends physical and metaphysical dualities, Neo discovers a divine power that shifts his perception of reality, revealing that the world is an extension of his own being. This realization allows him to shape his environment, affirming the Vedantic belief in the unity of the self with the universal divine. Neo's transformation, especially in *The Matrix Revolutions*, highlights this shift in understanding. Despite physical blindness, he perceives reality through the soul, challenging the post-truth tendency to accept surface appearances as absolute truths. When faced with Trinity's death, he transcends the fear of death, symbolizing his liberation from the existential anxieties amplified in a world where objective certainties are eroded. Instead, by internalizing the permanence of the true self, he embraces self-denial as a gateway to spiritual liberation, as articulated in the *Īśa Upaniṣad*:

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

yasminsarvāṇi bhūtānyātmaivābhūdviajānataḥ |

tatra ko mohaḥ kaḥ śoka ekatvamanupaśyataḥ || 7 ||

("He in whom all beings are one with the Self—what delusion or sorrow can there be for him who sees the unity of all?")

The *Upaniṣadic* prescription for attaining *Brahman*—the ultimate reality—requires the renunciation of the illusory individual identity, a process that mirrors the post-truth imperative to question and deconstruct fabricated narratives. In recognizing that the body is not a discrete, confined entity but rather part of an all-encompassing totality, material limitations dissipate. This insight is vividly illustrated in the scene with the spoon boy in *The Matrix*:

SPOON BOY (SKINNY BOY): Do not try to bend the spoon.

That is impossible. Instead, only try to realize the truth.

NEO: What truth?

SPOON BOY: That there is no spoon.

NEO: There is no spoon.

SPOON BOY: Then you will see that it is not the spoon that bends. It is only yourself.
(01:15)

Here, the dialogue encapsulates a radical epistemological shift: reality is not an external, immutable fact but a construct shaped by one's inner perception. This understanding challenges the post-truth landscape, where truth is often manufactured rather than discovered through diligent inquiry. Moreover, Neo's trajectory, akin to the Upaniṣadic path to *Mokṣa* (liberation), underscores that genuine knowledge arises only when one transcends the deceptions of sensory experience. As the *Īśa Upaniṣad* proclaims:

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

Īśā vāsyamidam sarvaṁ yatkiñca jagatyāṁ jagat (Verse 1)

("All this, whatever moves in this moving world, is enveloped by God.")

By dissolving the duality between the self and the world, Neo not only repudiates the limitations imposed by a fragmented, post-truth reality but also actualizes the Advaitic principle that all distinctions are ultimately illusory. In contrast, Agent Smith embodies the peril of unchecked illusion—a relentless drive toward replication and consumption that mirrors the corrosive tendencies of post-truth ideologies, where the veracity of information is subordinated to self-serving narratives.

In summation, these cinematic narratives not only critique a fragmented epistemological landscape but also offer conceptual frameworks for transcending the pervasive illusions of contemporary existence. They align with the Upaniṣadic imperative that enlightenment arises through deconstructing deceptive dualities and recognizing an inherent, unified truth. In an age dominated by digital fabrications and ideological echo chambers, the pursuit of higher knowledge, as expressed in ancient Vedantic philosophy, remains a deeply relevant antidote. Similarly, *Tenet* explores the malleability of perception, resonating with the Vedantic idea that time-bound existence is illusory. Through its nonlinear narrative, the film challenges its protagonist to navigate the fluidity of time, mirroring Advaita Vedanta's view that past, present, and future are constructs of *Māyā*. Neil's line, "What's happened, happened. Which is an expression of faith in the mechanics of the world," reflects the Upaniṣadic acceptance of reality beyond linear causality, echoed in the *Bhagavad Gita*'s teachings on karma and destiny. By the film's conclusion, the protagonist realizes, "I realized I wasn't working for you. We've both been working for me," symbolizing a deeper understanding of his place in a larger cosmic order—paralleling the realization that *Atman* and *Brahman* are one. *Tenet* thus suggests that true knowledge lies beyond conventional perception and must be directly experienced. *Avatar* illustrates *Tat Tvam Asi* (*Chāndogya Upaniṣad* 6.8) through Jake

Sully's transformation, as he moves beyond the dualistic human-Na'vi divide to recognize the unity of all existence. The Na'vi's spiritual philosophy aligns with Advaita's emphasis on interconnectedness, particularly in Neytiri's words—"All energy is only borrowed, and one day you have to give it back." (01:20)—which echo the Vedantic idea that life is part of a continuous cycle beyond individual ego. Jake's eventual declaration—"I'm with her. She's real." (02:10)—marks his complete shift from the illusory world of human conquest to the deeper truth of Pandora's spiritual reality. His journey mirrors the Upaniṣadic teaching that true knowledge arises not from external power but from aligning oneself with the fundamental oneness of existence.

In *The Day the Earth Stood Still*, humanity's denial of impending catastrophe exemplifies the post-truth world's resistance to uncomfortable truths. Klaatu, much like a divine messenger, presents a stark ultimatum—"Your problem is not technology. The problem is you." (01:04)—which forces humanity to confront its own illusions of control and superiority. Helen's realization—"It's not your life he saves, it's your species."—mirrors the Upaniṣadic teaching that individual survival is secondary to universal truth. The film ultimately suggests that true transformation requires letting go of the false narratives that sustain self-interest and embracing a larger, more enduring reality. By challenging the primacy of personal interest, this insight calls for a shared awakening, inviting us to discard illusions and adopt a unified, transcendent perspective as the foundation for true change.

In conclusion, *The Matrix Trilogy*, *The Day the Earth Stood Still*, *Avatar*, and *Tenet* transcend mere visual spectacle to serve as profound critiques of our post-truth era. Through speculative narratives and striking visual allegories, these films challenge the conventional boundaries between reality and illusion, revealing how digital technologies and ideological silos distort our collective pursuit of truth. Rooted in Upaniṣadic concepts of *Māyā* (illusion) and *Avidyā* (ignorance), they compel us to reconsider our perception of reality. By invoking *Brahma satyam, jagat mithyā* (Shankaracharya 1.5), they suggest that what we accept as real is often a constructed illusion—mirroring the manipulated perceptions they portray. The teaching of *Tat Tvam Asi* (Chāndogya Upaniṣad 6.8) further reinforces the idea that true knowledge emerges from recognizing the unity between the self and an eternal, unchanging truth. This perspective reframes the crisis of post-truth as not merely a political or social dilemma but a deeper epistemological challenge that necessitates a transformation in perception. These films also illuminate how Advaita Vedanta offers a timeless remedy, asserting that truth is not a subjective construct but an eternal, unified reality beyond manipulation, deception, and fear. By urging us to transcend external certainties and seek inner realization, they act as catalysts for awakening—guiding us toward a higher, integrated understanding of existence that frees us from illusion and distortion. In an era where truth grows ever more elusive, they ultimately illuminate a path to reclaiming an authentic and unshakable relationship with reality.

Department of English and OEL
Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (MP)
vandanarajoriya@gmail.com

References

1. Adi Shankaracharya. *Chāndogya Upaniṣad*. Translated by Swami Swāhānanda, Divine Life Society, 1996.
2. Baudrillard, Jean. *Simulacra and Simulation*. Translated by Sheila Faria Glaser, University of Michigan Press, 1994.
3. Cameron, James, director. *Avatar*. Twentieth Century Fox Film Corporation, 2009. Film.
4. Derrickson, Scott, director. *The Day the Earth Stood Still*. Twentieth Century Fox Film Corporation, 2008. Film.
5. Keyes, Ralph. *The Post-Truth Era: Dishonesty and Deception in Contemporary Life*. St. Martin's Press, 2004. Hannon, M. *The Politics of Post-Truth*. *Critical Review*, 35(1–2), 40–62. 2023. <https://doi.org/10.1080/08913811.2023.2194109>
6. Nolan, Christopher, director. *Tenet*. Warner Bros. Pictures, 2020. Film.
7. Radhakrishnan, Sarvepalli. *The Principal Upaniṣads*. HarperOne, 1995. Print.
8. Reeves, Keanu, et al. *The Matrix Revolutions*. Directed by Lilly Wachowski and Lana Wachowski, Warner Home Video, 2004. Film.
9. Vyasa. *Shreemad Bhagavad Gita: With Hindi Translation and Commentary*. Translated by Swami Ramsukhdas, Gita Press, 2015.
10. Wachowski, Andy, and Larry Wachowski, directors. *The Matrix*. Warner Home Video, 1999. Film.
11. Wachowski, Lilly, and Lana Wachowski, directors. *The Matrix Reloaded*. Warner Bros., 2003. Film.

A Sociological Study of Nats in Bihar

Preeti Dwivedi

Abstract:

The present study is an endeavour to make a sociological investigation of *nat* community. For the same Sahawa village of Isuwapur block of Bihar state was selected purposively. In this village sixty *nat* families were living. Forty *nat* respondents including both male and female were selected randomly as respondents. Both qualitative and quantitative data were collected with the help of an interview schedule having open and closed ended questions supplemented with observation and focus group interview. Result of the study show that *nat* hamlet was situated at the outskirts of village. Most of the *nat* families were without different basic and essential amenities of life. The enrolment of *nat* children in school was found very. Generally school going *nat* children experienced caste based discrimination by other upper caste children. Most of the *nat* family preferred to take medical assistance from quacks or government hospital of their district instead of Primary Health Centre (PHC) of their village due to lack of medical facilities. The civic engagement of the *nat* community was found to be very low due to caste based discrimination. Despite of different constitutional provisions for SC/ST communities and different developmental programmes to uplift the downtrodden communities actually were found beyond the reach of them due to loopholes in administrative level. The government, local community leaders and administrators should take appropriate steps at administrative and social level. Only then the deprived groups of the society can be able to connect with the mainstream of the society.

Keywords: Discrimination, Downtrodden Communities, Marginalisation, Mainstream Society

Introduction

Nats, Sanskrit meaning is dancer, considered as downtrodden caste in Indian social system. Traditionally *nats* were professionally amuser and dancer (Moshabbir & Singh, 2021). They are living in lower strata of subsistence level and are a marginalised group (Alam and Singh, 2021). This community is mostly found in the states of Rajasthan, Uttar Pradesh, Madhya Pradesh, Gujarat and Bihar. They are also known as wandering folk artists or *ghumantoojatis* (Azeez, Toolsiram and Mishra, 2017). Sawarankar (2008) called this community as vagrant gypsy tribe who have nomadic lifestyle. According to Croke (1974), this community is involved in different traditional profession such as dancing, acrobat as well as prostitution. It is also seen that involvement of male nats in criminal offences and women nats in sex work stigmatised these community and thus exclude them at the margin of the society (Azeez, Toolsiram and Mishra, 2017). Due to associated stigma of criminality

and prostitution probably they do not get job in public as well as private sector (Jangir and Rajnat, 2020).

The valuable assets of society are education and health facilities that give socio – economic emancipation for any community. For socio – economic development of a country these facilities must be enjoyed by even marginalised community of the society (Sharma et al, 2014; Moshabbir and Singh, 2021). In contrary Nats are unable to afford better health services and education in Private schools (Kishwar, 2017). Their unavailability to reach private medical clinics and modern medical system often become reason for fatal (Sawarankar, 2008). Their number of enrolment for school education is shameful (Pal, 2016). Child labour is common among *nat* community. Due to economic involvement of *nat* children, they are unable to get formal education in school. In case of some who go to school face caste based discrimination (Pal, 2016). The *nat* community is also outreach from different beneficiary government schemes which can be able to uplift this downtrodden community (Ghatage, 2011).

Still today *nats* are downtrodden community and far behind from socio economic empowerment. Thus there is a need for study of this community in social aspect. Keeping all above concerns in mind the present article has the following objectives:

- To study the socio – economic profile of nat community.
- To access the educational status of nat Children.
- To examine their access to health services.
- To find out the discriminatory practices against nat community and their access to government schemes.

Methodology

The present study was conducted in Isuapur block of Bihar. A total number of 316 nat families were living in ten gram *panchayat* of Isuapur block (Table – 1). From Isuapur block, gram *panchayat Sahawa* was selected purposively. A total of 40 *nats* (both male and female) were selected randomly as respondents from Sahawa village. An interview schedule having both open and closed ended questions along with observation and focus group discussion were used for collecting qualitative as well as quantitative data from *nat* respondents.

In the present study some quotations of the respondents are selected from the in – depth interviews in qualitative form. These selected quotations are quoted here to support the collected data in quantitative form. The interview extracts of the respondents are mentioned here along case wise and referenced in the following manner: case – 1; means that the quote was taken from interviewee – 01.

Table 1: Nat population in Isuapur block

Name of Panchayat	Name of village	Number of Nat family	Total population
Rampur Atauli	Tola Rampur Atauli	05	16

Lauwa	Mudwa Khaas	32	268
Datrapur Sauli	Pyarepur	35	191
Ramchaura	Usuri, Bangra	25	84
Sahawa	Sahawa	62	332
Aatanagar	Bela, Goha, Bisunpura	23	120
Jaythar	Galimapur	04	22
Chapiya	Fenhara	03	18
Isuapur	Achitpur	118	677
Kerwa	Parsa	09	38
Chakhan	--	--	--
Agauthar Sundar	--	--	--
Nipaniya	--	--	--
Total		316	1766

Result with Discussion

• Socio – economic characteristics of the Respondents

Analysis of data reveals that out of total respondents, 19 (47.5%) were male and 21 (52.2%) were female. All the respondents were married and belonged to Hindu religion. Age – wise distribution of data show that age of most of the respondents (45%) were between 31 – 41 years and 30% of the respondents were above 41 years. On the other hand, age of 25% of the respondents was between 20 – 30 years.

Educational status of *nat* community was found to be very poor. Out of total respondents, most of them (85%) were illiterate. On the other hand only 3 (7.5%) of the respondents were primary educated, while 02 (5%) were middle passed. Only one respondent was graduate in the present study.

When respondents were asked question regarding to their occupation then all of them informed that their father and forefather was professionally dancer, acrobat but now they had left this traditional profession because they were unable to get financial benefit from this work to sustain the livelihood of their family.

Some of the quotations extracted from the narrations of the respondents regarding to the traditional occupation are given below:

Case – 20, aged 35 years old man told as –

“Currently *nat* cannot financially support his family by dancing, singing or performing different arts.”

Case – 38, 21 years old female told about traditional occupation of their community as below –

“At present time there are so many means of entertainment that no one thinks it is right to pay money to an acrobat after watching dance, singing, juggling etc. Hence we earn through other means of livelihood.”

All the respondents informed that they were landless. In spite of traditional occupation of acrobat, male respondents were skilled/unskilled labourer working in different fields such as agriculture land, brick kiln, skinning, hotels, extracting and selling alcoholic liquor made from the sap of palm trees etc. Out of total female respondents, eight were house wives while rest ten were doing different occupation as domestic maid, labourer in agricultural fields, brick kiln etc.

Analysis of data also reveals that most of the *nats* in Bihar had given up the nomadic lifestyle and were living permanently in one place. The *nat* hamlet was situated on the outskirts of the village. A total of 62 *nat* families were living in the *nat* hamlet of *Sahawa* village.

On asking household conditions, 65% of the respondents informed that they had pucca houses. The respondents informed that pucca houses were allotted to them under 'Pradhan Mantri Awas Yojana'. Before getting the benefits of this scheme, they lived in muddy or temporary houses with thatched roof or plastic cover roof.

35% of the respondents informed that still they had not got the house under 'Pradhan Mantri Awas Yojana'. To avail the benefit of this scheme, they made several rounds to the village *sarpanch* but were unable to get the benefits of housing schemes of government. 10% of the respondents had kuccha houses made up of mud with thatched roof. While 25% of the respondents were living in temporary houses having plastic cover roof.

Basic amenities and household articles are also indicators of socio – economic conditions of any community. Electricity connection, installation of means of drinking water such as tap/hand pump etc and toilets are some basic necessary amenities of a home and are essential for proper functioning of life.

In the present study, 75% of the respondents had electricity connection in their house. Regarding drinking water, 70% of the respondents informed that there was neither a tap nor a hand pump in their house. There was a public hand pump in *nat* hamlet from where all the families of *nat* community used to fill water.

Swachh Bharat Mission (Grameen) was launched on 2nd Oct 2014 aiming with to achieve Open Defecation Free (ODF) Status in all the villages of country, by 2nd Oct, 2019 by providing access to toilets to all rural households. Under SBM (G), there is a provision for incentive of Rs 12,000/ for construction of Individual Household Latrine (IHHL) for all BPL households who do not have toilets in their home. Despite *Lohiya Swachh Bharat* Scheme, almost 68% of the respondent family did not had toilets in their home. This shows loopholes in the implementation of the government schemes and also indicates that the people from lower strata of the society are still deprived from the benefits of different government schemes.

Some household articles such as Gas stove, Refrigerator, Television, vehicle such as cycle/motor cycle, mobile phones, washing machines, mixer grinder etc make life comfortable. Mobile phones, Gas stoves and television were found as articles occupied by most of the *nat* family. Most of the respondents had a bicycle. Only a few respondents had motorcycle.

None of the respondents had other household articles such as Washing machines, refrigerator, mixer grinder (Table – 2).

Table 2: Basic Amenities and other articles occupied by Nat community

Basic Amenities and other articles	Occupied by most of the respondents	Rarely occupied by the respondents	Occupied by none of the respondent
Agriculture land			✓
Electricity connection	✓		
Installation of tap or hand pump in house		✓	
Toilet		✓	
Mobile Phones	✓		
Gas Stoves	✓		
Television	✓		
Cycle	✓		
Motorcycle		✓	
Washing Machines			✓
Refrigerator			✓
Mixer Grinder			✓

• Nat children and their education

Youths are our future and educating them is an essential need for development of any country. Uneducated youths push back the development of society. When the *nat* respondents were asked about educational status of their children, than 72.5% of them reported that their children did not go to school. In the present study *nat* hamlet was situated on the outer edge of the village and there was no government school in *nat* hamlet. Distance of school from *nat* hamlet was found to be a major reason for a girl child not being enrolled in school. It was also found that children of these families who were going to government school of village told that they experienced social discrimination in the school because they belonged to *nat* community. The respondents informed that children of other castes especially upper castes did not want to make close contact with *nat* children. Upper caste children called them dirty and smelly. They never shared their tiffin or water bottle with *nat* children. They preferred to sit away from *nat* children. The respondents also informed that upper caste children of school never played with the *nat* children because they did not like them to be their playmates. Some of the parents of *nat* children complained to head master about such discriminatory behaviour. Still school authority did not take any action against upper caste students. Caste based discrimination was found to be one of the reasons for low enrolment or drop out of *nat* children from school. Child labour is very common in the *nat* community. It was also found in the study, instead of school their parents preferred to send their children

to earn money. These children worked in restaurants, brick kiln, and agriculture fields etc and support their family economically.

Some illustrations of interview extracts narrated by the respondents regarding to school and school going children are given below:

Case – 2 informed about long distance of school from *nat* hamlet. She narrated as below:

“I have three children – two daughters and one son. There is no school in my *tola*. Both of my daughters are not going to school due to long distance from my *tola*. Present time is unsafe for girls, so that my daughters help me in household work instead of going to long distance school.

Case 4 expressed her reluctance to send her daughter to school and said that:

“What is the benefit of educating girls? In the future, they will have to take care of the house as a housewife.”

Case – 11 stated about caste based discrimination experienced by his children in the government school. He reported that:

“The children of my family go to a government school, located in another *tola* of my village. They experience caste based discrimination in the school. Upper caste children do not even like to sit beside my children by saying that *nats* are dirty and smelly.”

Case 15 narrated about his children who went in a government school as below –

“.....There is a hand pump in the school of my son. My son says that children of upper caste don't let him drink water from the hand pump and tell him to let them drink water first. Whenever they see hand pump touched by any *nat* children then they first wash it and then drink water. My child has complained from school teachers many times but they do not pay any attention.....I also complained to Head Master of school but he does not take any action against these upper castes children. Due to such discriminatory practices my son does not want to go school many of the days.”

Thus far distance of school, discriminatory practices and child labour were found as obstacles in education of *nat* children. The government should establish schools in the *nat* hamlet, so that *nat* children can go to school without any fear and hesitation. In this situation their absence from school and drop out will not occur. If the school will be in *nat* hamlet then *nat* children will also not face caste based discrimination, especially from upper caste. Child labour is common among *nat* community. There is a need to run many campaigns and awareness program by government and non – government bodies so that *nats* send their children to school instead of pushing them into child labour.

• Health Services accessibility by Nat Community

Sound health is an indicator of Nation's development. Health facilities provided by health care settings are very important component for health outcomes. Rural people from lower socio - economic status generally avail health facilities from public sector. Private health

care providers mainly give their services in cities. Ayushman Bharat Program and Pradhan Mantri Jan Arogya Yojna (PMJAY) launched in 2018 by Prime Minister Mr. Narendra Modi ji with the mission to deliver comprehensive primary health care services to entire population. These programs also have mission to improve hospitalization services and its access at secondary and tertiary level for people at grass root level.

In the present study, a Primary Health Centre (PHC) was found at a short distance from nat hamlet. Despite government's scheme for quality health service accessibility, *nat* people informed that most of the times, there was unavailability of doctor or hospital staffs in PHC. The target of accessibility to comprehensive primary health care (PHC) must be achieved particularly those from socially marginalised groups (Sacks et al, 2020). According to World Health Organisation (WHO), equal access of healthcare is an issue of social justice and is important in improving health inequalities that support universal health coverage for essential health services (WHO, 2007). However more than half of people are far behind from equal access to universal essential health services worldwide (WHO, 2018). Lack of quality health care facility at PHC resulted in simultaneous evolution of private health care systems (Peters, Rao and Fryatt, 2003). Due to expensive health care in private clinics, generally patients from lower socio – economic status do not able to avail the health facility from private health providers and mainly dependent upon public health sector.

Case – 31 experienced the problem in availing the health services in PHC and narrated as:

“We do not get health services and proper treatment in the primary health centre of our village. Mostly, whenever we come there during sickness, we do not find any doctor.”

When respondents were asked about their access to private clinics, then case 30 responded as:

“.....we somehow manage to run our family's livelihood with our income. In private clinics, both doctor's fees and medicines are very expensive. We can't afford so much. We mostly go to government hospitals for treatment instead of private clinics.”

Due to these shortcomings of PHC, most of the *nat* people preferred to visit to district government hospital away from their village.

Case – 36 pointed out the shortcomings of the primary health centre of his village and narrated that:

“We mostly prefer to get our treatment from quacks due to the unavailability of both doctors and medical staffs in PHC of our village. Sometimes we go to the district government hospital. Health care facility in government hospital is better than PHC of our village, we get treatment there. Doctors and medicines both are available there. Although the government hospital is away from the village due to which we have to spend a lot of fare to reach there.”

There is low level of health awareness among *nat* community. It was found in the present study that *Anganwadi* workers were also reluctant for both to visit the *nat* hamlet and provide their services. Health awareness camp was hardly organised by *Anganwadi* workers in *nat* hamlet. They also did not provide correct information on health, immunisation, proper meal

etc to pregnant women and lactating mothers. The problem of malnutrition is very common among *nat* children and adolescent girls. Nutritious food was not distributed by *Anganwadi* workers regularly. The government scheme of *Ayushman Bharat card* is applicable for socio – economically weaker section of the society. The scheme ensures to receive medical treatment needed by marginalised section of society without facing financial hardships. *Nat* is a downtrodden community facing socio – economic challenges in their life. But in the present study only six respondents informed that they had *Ayushman Bharat Card*. This data show that government schemes designed for the socio – economically backward groups are actually beyond their reach due to different shortcomings.

• **Caste based discriminatory practices and their access to government schemes:**

Caste system gives rise to many evils in the society. Caste based discrimination and exploitation is one of them. The practice of caste discrimination is an expression of deprivation of a section of society from socio – economic resources, opportunities and political power (Ghatage, 2006). In rural India, caste based discrimination can be easily observed even today. In the present study, the respondents told that people of other castes did not treat the people of *nat* community like untouchables but they did not had willingness to invite *nats* in various socio – religious functions of village. *Nat* people also did not participate much in socio – religious functions other than their own community. Overall, it was found in the present study that *nat* community had very low civic engagement outside their own community. It was also found in this study that those *nats* whose financial condition was a little better were attending in the socio – religious activities of the village. Hence economic betterment has the potential to reduce caste based discrimination.

Some examples of caste based discrimination of different cases extracted from their narratives are given below:

Case – 18 said and narrated about his civic engagement:

“.....we are poor. We don't have enough facilities. People from other castes, especially upper castes, do not take much interest in inviting us in village functions. We also prefer to attend various events in our own community.”

Case 21 told that:

“There are community meetings in our village on various issues, in which we are neither invited nor do we participate.”

Political representation along with economic strength reduces caste based discrimination. In this study, it was found that no one from *nat* family was involved in politics nor was any member in a government job. Despite reservation in local civic body elections, no *nat* candidate was elected. Economic deprivation, low demographic strength and domination of other castes were some of the important factors in this study due to which *nats* were unable to muster the courage to stand as candidates even in the local civic body elections. Some examples of quotations extracted from the narrations are given below:

Case – 14 shared about political representation of his community:

“.....we are somehow making a living. Who will vote for us in the elections? Our number is nominal compared to entire population of village. Dominant castes will not even tolerate us contesting for election”.

Observations from the field show that due to lack of political empowerment and economic hardship, *nats* often became victims of humiliation and abusive behaviour of dominant castes. Socio – economic and political deprivation reduced their civic engagement.

The government is implementing many schemes such as Pradhanmantri Awas Yojana, Lohiya Swachha Bihar Abhiyan, Ujjawala Yojana, Ayushman Card, Free Ration, and Old Age Pension Scheme etc to uplift the socio – economically deprived groups. Despite these programs, downtrodden groups were away from the benefits of government’s beneficiary schemes even today. It was found in the study that many respondents had made several rounds to government offices and village sarpanch to avail the benefits of different government schemes but they could not get the benefits of the schemes like Lohiya Swachha Bihar Abhiyan, Ujjawala Yojana, Ayushman Card, Old Age Pension Scheme etc. It was found that most of the respondents were benefitted from Pradhanmantri Awas Yojana (65%) and Free Ration only (85%).

Quotes from narratives of some respondents regarding to government’s beneficiary schemes are given below:

Case – 36 was benefitted by government scheme Pradhanmantri Awas Yojana. He told that:

“I made several rounds to *sarpanch* and then I could get a *pucca* house under *Pradhanan Mantri Awas Yojana* Scheme. Before this, I used to live in a house made of plastic and mud.”

It was also found that some respondents could not avail the benefits of government schemes despite making a lot of efforts, as narrated by Case – 39:

“I have made several rounds to the government office of my block and village *sarpanch* but still I have not received the benefit of any government scheme.”

Conclusion

The study has explored the vulnerabilities and discrimination experienced by *nat* community. Different socio – cultural constraints based on their caste system responsible for prejudiced mindset against *nat* community. Biased attitude amongst other upper caste has hampered their access to health, education and civic engagement. Despite of legal and constitutional provisions to protect their fundamental rights and different government schemes to uplift them socio – economically, they still at the margin of the society. Due to socio – cultural norms and discriminatory practices they are outreach to access government’s beneficiary schemes. Due to the social identity based on caste and their traditional notions of criminal offences, even today they are excluded from mainstream society. The gap between execution of different socio – developmental programmes and their access show the loopholes at

administrative level which is ultimately responsible for their backward socio – economic status. Close monitoring and evaluation should be ensured in implementation of policies and programmes for socio – economic development of *nat* persons. Government should take strict action towards those health functionaries in public sectors and *Anganwadi* workers who are not performing their duties properly, due to which the downtrodden groups have to suffer the most. Local community leaders and different NGOs should run different campaigns and awareness programmes to change the mindset of people who have wrongly internalized discriminatory practices of caste system. There is a need to conduct more research on vulnerable groups like *nats* and strategic plans should be developed to meet their needs.

Department of Sociology
Mahila Mahavidyalaya PG College, Kidwai Nagar, Kanpur
preetdwivedi1000@gmail.com

References:

1. Azeez, A., Toolsiram, R. & Mishra A. (2017). RajNats of Rajasthan and the sex work: An ethnographic study. *Contemporary Voice of Dalit*, 9(1):37-47.
2. Crooke, W. (1974). *The Tribes and Castes of the North Western India*. vol. 1. Cosmo Publications.
3. Ghatage, B. S. (2006). *Nomadic tribes and social work in India*. Shruti publication. Jaipur.
4. Jangir, Hemraj P. & RajNat, Vikram (2020). Impact of pandemic on women engaged in bar dances and sex work: A case of *nat* community in Rajasthan. *Social Work with Groups* vol. 45 (1): 68 – 73. (<https://doi.org/10.1080/01609513.2020.1840192>)
5. Kaushik, A. (2018). From hunger deaths to healthy living: A case study of *dalits* in Varanasi District, Uttar Pradesh, India. *Contemporary Voice of Dalit*. 10(2): 173 – 181. (<https://doi.org/10.1177/2455328X17744623>)
6. Kiswar, M. (2017). Violating child rights on the pretext of rescue operation. *The Sunday Guardian*. Article published on 25 November 2017.
7. Moshabbir Alam, M.D., Singh Moksha (2021): A sociological analysis of religion and caste among the Nat Muslim in India. *International Journal of Psychosocial Rehabilitation*, 25 (2): 772 – 791.
8. Pal, Gobinda, C. (2016). Caste and access to public services: ‘intensified’ disadvantages. *Economic and Political Weekly*, vol 51, No. (31): pp 102 – 107.
9. Peters P. H., Rao K. S., Fryatt, R. (2003). Lumping and splitting: The health policy agenda in India. *Health Policy and Planning*. Vol 18 (3): 249 – 260.
10. Sacks, E., Schleiff, M., Were, M., Chowdhury, A. M., and Perry, H. B., (2020). “Communities, Universal Health Coverage and Primary Health Care.” *Bulletin of the World Health Organization*, 98 (11): 773 – 780.
11. Sawarankar R. C. (2008). Ethnographic study of community – based sex work among Nats. Rohini Sahni, V. Kalyan Shankar & Hemant Apte (ed). *Prostitution and beyond: An analysis of sex work in India*. pp: 118 – 125. Sage publication: New Delhi.
12. Sharma S.L., Ghuman, B.S., Prakash, Shital (2014). *Higher Education in India: The Changing Scenario*. Rawat Publication: Jaipur
13. World Health Organisation (2007). Everybody’s Business Strengthening Health Systems to Improve the Health Outcomes: WHO’s Framework for Action, Geneva. Available at: https://www.who.int/healthsystems/strategy/everybodys_business.pdf
14. WHO (2018). *Declaration of Astana*, Geneva: WHO.

Exploring Spiritual Ecology and Animistic Wisdom in Mamang Dai

Shweta Singh¹, Divya Joshi²

Abstract:

Amidst unprecedented ecological crises such as climate change, biodiversity loss, and ecosystem degradation, indigenous perspectives emerge as indispensable frameworks for ecological survival. This paper examines Mamang Dai's *The Black Hill* and *The Legends of Pensam* through the lenses of spiritual ecology and animism, uncovering narratives that offer transformative paradigms for addressing contemporary environmental challenges. Dai's works vividly illuminate the profound interdependence between indigenous communities and their natural surroundings, celebrating a worldview where nature is revered as a living, sacred entity. By exploring these indigenous beliefs and practices, this study challenges reductionist and anthropocentric approaches to environmental ethics, advocating for holistic frameworks rooted in ecological reverence. Integrating theoretical insights from spiritual ecology and animism, it reveals how indigenous knowledge systems provide innovative, sustainable solutions for fostering ecological balance and resilience. Juxtaposing Dai's literary portrayals with pressing environmental challenges, the paper calls for an urgent paradigm shift, urging the global community to incorporate indigenous perspectives into environmental policies and practices as a non-negotiable imperative for sustainability. Through this exploration, the paper contributes to a deeper understanding of the intersection between literature, indigenous knowledge, and environmental ethics, emphasizing the need for a more inclusive and holistic approach to resolving the ecological crises of our time.

Keywords: Animism, Spiritual Ecology, Culture, Indigenous, Environment, Sacred.

Introduction

Globally, approximately 476 million Indigenous people inhabit over 90 countries, representing an extraordinary diversity of cultures and languages, with over 4,000 languages spoken (IWGIA, 2023). Despite comprising only 6% of the global population, Indigenous peoples disproportionately account for 19% of the world's poor, reflecting persistent socio-economic marginalization. These populations predominantly reside in regions of high biological diversity, emphasizing the intrinsic connection between cultural and ecological richness (Gray, 1991). India, recognized as one of the world's mega-diverse nations, exemplifies this intersection of cultural and ecological wealth. The country supports nearly 7–8% of the world's recorded species and encompasses four of the 34 globally recognized

biodiversity hotspots: the Himalayas, Indo-Burma, the Western Ghats and Sri Lanka, and Sundaland. India's biodiversity is further enriched by its extensive repository of traditional ecological knowledge associated with biological resources. To date, over 91,200 species of animals and 45,500 species of plants have been documented across the nation's ten biogeographic regions, with new species regularly identified through ongoing exploration and surveys. Within this ecological diversity, India is home to approximately 705 formally recognized ethnic groups categorized as Scheduled Tribes. Commonly referred to as Adivasis, or "original inhabitants," in central India, these groups collectively represent an estimated 104 million individuals, constituting 8.6% of the nation's population (IWGIA, 2024). However, many additional ethnic groups that meet the criteria for Scheduled Tribe status remain unrecognized, suggesting that the actual number may be higher. Forest ecosystems, covering 23.39% of India's geographical area—75% of which is concentrated in the north-eastern states—are particularly noteworthy for their ecological and cultural significance. This region not only boasts 16 major forest types and 251 sub-types (Convention on Biological Diversity, n.d.), but also harbors the highest density of Indigenous populations in the country. The proximity of these communities to such biodiverse landscapes underscores their vital role in sustaining and preserving these ecosystems.

However, despite this ecological richness, indigenous communities face numerous environmental challenges. Historically, these communities have endured significant adversities, including land dispossession and the detrimental impacts of large-scale developmental projects, which threaten both their cultural heritage and their natural environment. Today, they also confront modern concerns such as genetic resource exploitation, biopiracy, and intellectual property rights, alongside problems arising from urban migration. Climate change further aggravates these difficulties, especially since many indigenous peoples live in isolated and vulnerable areas that are highly sensitive to environmental shifts. In the contemporary discourse on environmental sustainability, the intersection of spirituality and ecology offers profound insights into the human-nature relationship. As the world grapples with climate change, biodiversity loss, and environmental degradation, there is a growing recognition that technological solutions alone are insufficient. Spiritual ecology and animism, therefore, provide a holistic framework that emphasizes the intrinsic value and interconnectedness of all elements within the natural world. As Thomas Berry, a renowned religious scholar, aptly states, "The universe is a communion of subjects, not a collection of objects," underscoring the sacredness and agency of all beings within the ecosystem (Berry 2006, p. 17). This perspective resonates with many indigenous cultures, which often regard nature as imbued with spirit and agency. In *Braiding Sweetgrass*, Robin Wall Kimmerer highlights the wisdom inherent in indigenous practices and their deep ecological consciousness, illustrating how such perspectives foster sustainable living (Kimmerer, 2013). Similarly, scholars in spiritual ecology, such as David Suzuki and Amanda McConnell in *The Sacred Balance*, stress the need for a holistic approach to environmentalism that integrates spiritual perspectives (Suzuki, McConnell, & Mason, 2008). This integrated view is crucial as it not only addresses the

symptoms of environmental crises but also promotes a profound shift in how we perceive and interact with the natural world. Llewellyn Vaughan-Lee, in *Spiritual Ecology: The Cry of the Earth*, further emphasizes the urgency of reconnecting with the sacred aspects of nature to address the ecological crises we face (Lee, 2013).

In the vibrant landscapes of the Northeast India, indigenous communities like the Naga tribes exemplify the profound integration of spiritual ecology and animism into their daily lives. These communities showcase a conservation ethos deeply intertwined with cultural traditions, where community-reserved forests stand as both ecological havens and vital livelihood resources. This approach reflects a holistic and collective strategy for conservation that harmonizes ecological sustainability with the needs of the community (International Work Group for Indigenous Affairs (*The Indigenous World* 2023, p. 200). The animistic beliefs of the Naga people play a pivotal role in this practice, leading to the protection of certain species and natural features—large trees around villages are left untouched, and specific animals and birds are safeguarded due to their cultural or spiritual significance. This conservation perspective is grounded more in spiritual and social responsibility than in a conventional climate change framework (*The Indigenous World* 2023, p. 200). Yet, the encroachment of economic pressures and government policies favoring monoculture plantations, particularly the expansion of oil palm cultivation, threatens both local biodiversity and traditional conservation methods (*The Indigenous World* 2023, pp. 200-201). This situation starkly reveals the tension between enduring indigenous practices and the relentless push of modern economic development, which jeopardizes the sustainability of traditional knowledge systems (*The Indigenous World* 2023, pp. 200-201).

Similarly, Mamang Dai's fictional works present a rich tapestry of indigenous wisdom and ecological consciousness, depicting a world where spiritual ecology and animism are integral to the characters' lives. The novel critiques modern environmental degradation through its portrayal of the indigenous characters' harmonious relationship with nature. Dai not only celebrates the spiritual traditions of the indigenous people but also provides a potent commentary on contemporary ecological issues. This paper delves into the interplay between spiritual ecology, animism, and environmental ethics in Dai's novels, drawing on various theoretical perspectives to elucidate how Dai's work contributes to discussions on ecological sustainability and the integration of spiritual perspectives into environmental discourse. Utilizing insights from Leslie Sponsel's *Spiritual Ecology: A Quiet Revolution* (2012), Graham Harvey's *Animism: Respecting the Living World* (2005), and other seminal works, this analysis reveals how Dai envisions an ecological harmony rooted in spirituality and animistic beliefs, advocating for a more ethical interaction with nature. Exploring Dai's novels through the lenses of spiritual ecology and animism highlights the novel's significant contribution to ecological discussions. Dai's portrayal critiques modern environmental degradation while offering insights into fostering a sustainable relationship with nature. The paper underscores the relevance of spiritual ecology in addressing today's ecological challenges, positioning *The Black Hill* and *The Legends of Pensam* as a vital text in the

dialogue on environmental ethics and sustainability. By framing environmental sustainability within spiritual and animistic paradigms, the novel emphasizes the ethical imperatives to protect and nurture the Earth. This approach reflects efforts to incorporate indigenous knowledge and spiritual wisdom into global environmental policies and practices. As we face unprecedented environmental challenges, integrating spiritual ecology and animism into our understanding of sustainability offers a path towards a more harmonious and resilient relationship with our planet.

Sacred Interconnections: Spiritual Ecology and Animism

North-East India, often celebrated as the gateway to India's natural wonders, is a region of astonishing biodiversity, home to an incredible variety of flora and fauna. This area, with its blend of tropical, subtropical, deciduous, and alpine forests, thrives due to a unique interplay of climatic factors, earning it recognition as a "mega biodiversity area" on the planet. However, this richness is not just an environmental feature—it is deeply woven into the spiritual and cultural lives of the indigenous communities that inhabit the region (Dutta & Konwar, 2023). For these communities, the concept of spiritual ecology is intrinsic; their beliefs and practices are rooted in a profound respect for the natural world, seeing it as imbued with spiritual significance. Spiritual ecology plays a vital role in shaping their worldview, guiding their sustainable practices and conservation efforts. This intimate connection to their environment highlights the critical contribution that biodiversity plays in their daily lives, rituals, and spiritual well-being. Through spiritual ecology, these communities maintain a harmonious relationship with nature, ensuring the preservation of their ecosystems for future generations while fostering a deep sense of stewardship and reverence for the earth.

Leslie Sponsel's concept of spiritual ecology underscores the deep connections between spiritual beliefs and ecological systems. In her seminal work, *Spiritual Ecology: A Quiet Revolution*, Sponsel argues that spiritual values play a crucial role in fostering environmental stewardship. She contends;

If a single tree is viewed as part of a hierarchy of progressively larger ecological systems, then it can be significant for environmental and biodiversity conservation. Biodiversity encompasses not only the number of species in a given area, but also the diversity of their interconnections and interactions. (Sponsel, 2012, p. 25)

This perspective highlights the significance of individual elements within ecosystems, such as trees, which serve as critical habitats for numerous species and contribute to the resilience and health of the environment. Sponsel further emphasizes the role of sacred trees and groves in conserving broader ecological systems. She notes, "When a large tree is considered sacred, and accordingly afforded special protection from harm, then it may help to conserve a multitude of other species and their symbioses as well as particular microclimates, microenvironments, and soil and water resources" (Sponsel, 2012, p. 26). This insight illustrates how spiritual reverence can lead to the preservation of essential ecological functions, even when the primary intent is not explicitly conservation-oriented.

The protection of sacred trees, therefore, contributes significantly to maintaining biodiversity and ecological balance.

This intrinsic relationship is vividly illustrated in Mamang Dai's *The Black Hill*, where the indigenous characters exhibit a deep reverence for their natural surroundings. Their belief in the sanctity of the land and the spiritual beings inhabiting it mirrors Sponsel's assertion that spirituality profoundly influences ecological practices (Sponsel, 2012).

In *The Black Hill*, the centrality of land is poignantly expressed through Kajinsha's reflection:

The Tibetan lamas have books and you read your book for knowledge of God. We read the land. The land is our book. Everything here on this hill, the grass and rocks and stones is saying something. And what falls from the sky—rain, thunder, and lightning—are also the voices of spirits telling us something (Dai, 2014, p. 140).

This perspective aligns with discussion on how land shapes indigenous spirituality and ecological practices. Sponsel contends that "animism is by far the oldest religion of humanity" (Sponsel, 2012, Chapter 2, para 3) and Graham Harvey elaborates that "animists recognize personhood in other-than-humans" (Harvey, 2005, p. 187). This recognition fosters a profound connection with the environment, often transmitted through generations by elders and ancestors to ensure a harmonious existence. Animists also engage in communication with non-human entities, such as plants, to build meaningful relationships. Sacred trees, such as the banyan (*Ficus bengalensis*) and bodhi (*Ficus religiosa*), exemplify how religious associations shape ecological practices (Sponsel, 2012). The bodhi tree, under which the Buddha attained enlightenment, is revered in both Buddhism and Hinduism, explaining its sacred status and widespread presence due to its religious significance (Sponsel, 2012). Sponsel notes that traditional indigenous societies often practice what he terms nature religions or ecospirituality, living in harmony with nature—a theme resonant in *The Black Hill*, where the characters' lives are intricately connected to their environment.

Additionally, Francis Krick's journey to Tibet in *The Black Hill* reflects Leslie Sponsel's depiction of Tibet's spiritual and ecological significance. Often referred to as the 'Roof of the World,' Tibet's ecosystems and its critical role as Asia's water source emphasize its spiritual importance, mirroring Sponsel's argument (Sponsel, 2012, p. 161). These indigenous peoples, living in isolated environments, often view certain elements of their world as sacred, reflecting a profound connection between human and non-human beings that aligns with the spiritual ecology described by Sponsel.

Narratives of Harmony: Spiritual Ecology and Animism in Mamang Dai's Work

Mamang Dai's literary works vividly depict the profound relationship between indigenous communities and their natural environment, underscoring the centrality of spiritual ecology and animism in shaping cultural identities and ecological consciousness. Dai's narratives are imbued with elements that reflect the spiritual significance of nature, including spirits, shamanic rituals, and the cyclical nature of life. These recurring motifs reveal a worldview where the land and its natural elements are not merely passive backdrops but active

participants in the lives of the people who inhabit them. In her novel *The Black Hill*, Dai introduces the character Kajinsha, who encapsulates the indigenous perspective on the land with the assertion, “The land is our book. Everything here on this hill, the grass and rocks and stones is saying something. And what falls from the sky—rain, thunder, and lightning—are also the voices of spirits telling us something” (Dai, 2014, p. 140). This statement is emblematic of the animistic belief that the land is alive, imbued with spirit and agency. It suggests that the natural world is a living text, a source of knowledge and communication that disseminates messages from the spiritual realm to those attuned to listen. The land, in this context, is not a mere geographical location but a sacred space that holds the memories, emotions, and histories of its people. Harvey in his book *Animism* (2005), supports this view, arguing that “lands are not only foundational but formative” (p. 66). This perspective aligns with the indigenous belief that the land is integral to the formation of individual and collective identities. It is where the cycle of birth, life, and death unfolds, imbuing the land with a sacredness that demands respect and reverence. This deep attachment to the land shapes the ecological consciousness of Dai’s characters, influencing their actions and relationships with the environment. The bond between humans and their environment, as depicted in Dai’s work, is crucial to the formation of ecological harmony. The respect and reverence for nature fostered by this bond can lead to the preservation and nurturing of the environment, while the severance of this connection can result in ecological degradation and loss.

In *The Legends of Pensam*, Dai continues to explore the theme of spiritual ecology through her depiction of the Adi tribe of Arunachal Pradesh. The novel places significant emphasis on the importance of trees such as bamboo and orange, which are deeply intertwined with the tribe’s spiritual practices. Dai writes, “When the soul reaches that other place, ancestors step forward in greeting, and under the big tree, the pure soul is crowned with a shower of sacred leaves” (Dai, 2006, p. 87). This passage reflects the belief that certain natural elements, such as trees, hold spiritual significance and play a crucial role in the journey of the soul after death. The granary, too, is regarded as a sacred property, highlighting the reverence with which the tribe approaches their environment. The Adis’ animistic faith is described as being “woven around forest ecology and co-existence with the natural world” (Dai, 2006, p. xi). This statement underscores the tribe’s belief in the interconnectedness of all living things and their environment. The natural world is not seen as separate from the human world but as an integral part of it. This belief system fosters a sense of stewardship and responsibility toward the environment, as the well-being of the land is directly tied to the well-being of the community. The Adis’ spiritual practices are thus not only religious in nature but also ecological, as they promote sustainable living and environmental conservation.

Dai’s chapter “The Boy Who Fell from the Sky” in *The Legends of Pensam* further delves into the animistic belief systems of the Adi tribe, illustrating how the tribe interprets the natural world through spiritual lenses. The discovery of a fish in a deceased man’s pocket, for example, is suspected to be a manifestation of a spirit. This belief reflects the tribe’s

view that animals and other natural elements can be carriers of spiritual messages, further blurring the lines between the human and non-human worlds. Similarly, the tribe conducts serpent rituals to cure a sick child, attributing the illness to the presence of a snake spirit. This ritual highlights the belief that illness and health are not purely physical conditions but are influenced by spiritual forces that reside in the natural world. Other examples in Dai's work include the belief that certain trees are homes to ancestral spirits, making them sacred and untouchable. The reverence for these trees is so strong that no one dares to cut them down, as doing so would disturb the spirits and bring misfortune to the community. This belief system serves as a natural form of environmental conservation, as it protects the trees and other natural resources from over-exploitation. The tribe's relationship with the land is thus characterized by a deep respect for the non-human entities that inhabit it, reflecting a worldview where humans are but one part of a larger, interconnected web of life.

Spiritual and animistic beliefs play in guiding ecological practices. The indigenous worldview presented by Dai offers a profound understanding of sustainability, one that is not based merely on resource management but on a holistic integration of spiritual reverence and ecological stewardship. The land is not just a physical resource but a spiritual entity that demands respect and care. This belief system inherently promotes environmental sustainability, as it discourages exploitation and encourages a symbiotic relationship with nature. By portraying the land and its natural elements as living, spiritual entities, Dai highlights the importance of maintaining a harmonious relationship with the environment. This relationship is not only central to the cultural identity of the indigenous people but also plays a crucial role in promoting environmental sustainability. The animistic wisdom embedded in these narratives offers a counter-narrative to the often destructive tendencies of modern industrial societies, where nature is frequently viewed as a commodity rather than a sacred, living entity. In this context, Dai's work serves as a vital contribution to the discourse on environmental sustainability. Her portrayal of spiritual ecology and animistic practices challenges contemporary approaches to ecology, which often separate the spiritual from the environmental. By reintegrating these elements, Dai suggests that true sustainability can only be achieved when we recognize the inherent value and agency of the natural world. The spiritual practices of the tribes, as depicted in her work, provide a model for how communities can live in harmony with their environment, ensuring the well-being of both the land and its people.

Moreover, the concept of cyclical time and the reverence for ancestral spirits in Dai's narratives emphasize the importance of continuity and respect for past traditions in shaping future sustainability. According to Sponsel, "most consider the human body to be the residence of one or more spirits. Many more spirits are believed to inhabit mountains, forests, waters and rocks in the local landscape, which is often viewed as sacred geography" (Sponsel, 2012, Chapter 3). The belief that ancestors continue to influence the living world encourage practices that honor the land and preserve its integrity for future generations. This contrasts sharply with the linear, exploitative approach to resources that characterizes

much of modern development.

Redefining Sustainability: The Role of Spiritual and Indigenous Perspectives in Environmental Ethics

The contemporary discourse on sustainability often emphasizes technological advancements, resource management, and economic strategies as the primary solutions to environmental challenges. However, these approaches, rooted in a human-centric worldview, frequently overlook the profound connection that indigenous communities maintain with the natural world. For indigenous peoples, the environment is not just a resource to be exploited but a living entity with which they share a deep spiritual and cultural bond. This relationship, underpinned by animistic beliefs and spiritual ecology, offers a compelling alternative to conventional sustainability practices, highlighting the importance of reverence, respect, and ethical stewardship of the earth.

Indigenous communities, as depicted in Mamang Dai's works, embody a worldview that is intricately connected to the land and its ecosystems. Their beliefs and practices are rooted in the idea that the land is alive, filled with spirits and beings that deserve respect and care. As expressed in *The Black Hill*, "everything here on this hill, the grass and rocks and stones is saying something" (Dai, 2014, p. 140). This perspective reflects a fundamental understanding that the natural world is not separate from humanity but is deeply intertwined with human existence. The tribes in Dai's narratives are depicted as being unwilling to give up their beliefs, holding steadfast to the notion that all rituals are deeply rooted in tradition, as Krick suggests, and that every occurrence in a person's life is influenced by the actions of good and evil spirits.

This indigenous perspective contrasts sharply with modern environmental ethics, where nature is often seen as an inert backdrop for human activity. The dominant approach to sustainability tends to prioritize human comfort and economic growth over the well-being of the planet. In doing so, it neglects the long-term consequences of environmental degradation and the needs of future generations. Indigenous beliefs, however, encourage a different kind of relationship with the earth—one that is based on reciprocity, care, and a deep sense of responsibility. The reverence for nature seen in spiritual and animistic practices is not merely symbolic; it has practical implications for environmental sustainability. The Adi tribe's animistic faith, which is closely linked to forest ecology and co-existence with the natural world, is a prime example of how spiritual beliefs can guide sustainable practices. Sacred trees like bamboo and orange trees are protected, and rituals are performed to honor the spirits of the land. Even the granary is considered sacred, reflecting the community's deep respect for the resources that sustain them. In this way, spiritual beliefs help to preserve the environment by fostering a sense of stewardship and responsibility. This spiritual and indigenous approach to sustainability also has profound ethical implications. It challenges the anthropocentric worldview that places human beings at the center of the environmental equation and instead advocates for an ecocentric or biocentric perspective. By recognizing the intrinsic value of all life forms and the interconnectedness of all beings, these perspectives

promote a more holistic understanding of sustainability. This approach calls for a redefinition of environmental ethics, one that includes not only human interests but also the rights and needs of the natural world.

Incorporating spiritual and indigenous perspectives into modern environmental ethics offers valuable lessons for contemporary society. While it may not be feasible for everyone to adopt the specific beliefs and practices of indigenous communities, there is much to learn from their deep care and respect for the environment. These communities offer a model of sustainability that is rooted in a profound understanding of the earth's systems and a commitment to maintaining ecological balance. By integrating these principles into our own practices, we can move towards a more sustainable and just future. As humans, we have become increasingly disconnected from the natural world, prioritizing our comforts and conveniences over the health of the planet. This disconnection has led to the exploitation and degradation of the environment, with little regard for the consequences. In contrast, indigenous communities have maintained a close relationship with the land, guided by beliefs that emphasize the importance of caring for the earth and all its inhabitants. This relationship has not only allowed them to live in harmony with nature but has also played a crucial role in preserving the environment for future generations.

Bridging Theory and Practice: Contemporary Environmental Challenges

Globalization has profoundly affected indigenous communities, often paving the way for multinational corporations to exploit their lands and resources. This exploitation has resulted in the commodification of indigenous cultures, making their traditions and knowledge accessible to outsiders. At the same time, globalization has flooded markets with inexpensive manufactured goods that threaten local handicraft industries, further endangering indigenous livelihoods. National governments and international institutions frequently pursue economic growth through the exploitation of indigenous territories, while paradoxically professing to protect indigenous identities. This contradiction overlooks the deep spiritual and cultural connections that indigenous peoples have to their lands and often excludes them from vital decision-making processes. As a result, indigenous communities perceive globalization as a threat to their cultural survival, driving them to fight for their rights and autonomy.

The theoretical insights from spiritual ecology are vividly illustrated in the practices of indigenous communities, as depicted in Mamang Dai's works -*The Black Hill* and *The Legends of Pensam*. Dai's narratives portray a profound reverence for nature, where trees and forests are not merely viewed as resources but as sacred entities imbued with ancestral spirits. This belief fosters a cultural practice of protecting natural resources and ensuring their sustainability for future generations. The Adi community in Arunachal Pradesh, for instance, adheres to strict taboos that prevent the killing of certain animals and the cutting of specific trees, reflecting a practice that aligns with modern conservation principles. The sacred groves in Arunachal Pradesh, such as the Donyi-Polo sacred grove and the Hoolock Gibbon Wildlife Sanctuary, exemplify the integration of spiritual beliefs with environmental conservation. The Donyi-Polo grove, dedicated to sun and moon deities, and the Hoolock

Gibbon Sanctuary, which serves as both a conservation area and a sacred space, highlight the cultural and ecological significance of these sites (Sacred Earth Trust). The Adis' belief that harming certain animals and plants leads to negative consequences reinforces their commitment to ecological preservation. This practice serves as a model of sustainable living, contrasting with modern exploitative practices that often prioritize short-term gains over long-term ecological health.

Similarly, the sacred groves, or kavus, of Kerala reflect the traditional ecological wisdom of the region. Historically widespread across the state, these groves were integral to local biodiversity conservation. However, modern development has led to their decline, with many being lost to urbanization. Despite this, the remaining groves continue to serve as biodiversity reservoirs and cultural landmarks. The traditional image of a kavu, characterized by sacred trees and religious rituals, underscores the enduring role of spiritual practices in environmental conservation. These groves remind us of a time when people worshiped nature alongside their deities, conserving both biodiversity and cultural heritage (Rohinikrishnan, 2019).

Modern development has however increasingly encroached upon these sacred spaces, threatening their ecological and cultural significance. A significant example is the rapid expansion of oil palm cultivation in the north-eastern regions of India, particularly within the Naga territories of Nagaland State and certain Naga districts in Manipur, driven by the involvement of large corporations. The Kezekevi Thehou Ba (Peace Morung) has raised concerns, stating that the "push for oil palm cultivation in the Northeast raises alarm bells" (The Indigenous World 2024, p. 213). Initially, oil palm plantations in Nagaland began with 140 hectares in 2015-2016, and by March 31, 2021, this area had expanded to 4,623 hectares. As of July 2023, the plantation area further increased to 5,423 hectares, marking a 39-fold growth since 2015 (The Indigenous World 2024).

IWGIA 2024 report highlighted that the forest lands targeted for oil palm cultivation are essential for biodiversity, climate resilience, and the protection of Indigenous cultures, their lifestyles, and livelihoods. Due to the "ecological and cultural significance" of the region, the report advocates that the Northeast should be considered a "No-Go" area for oil palm cultivation (The Indigenous World 2024, p. 213). To mitigate the environmental challenges posed by the rapid expansion of oil palm cultivation in north-eastern India, particularly in Naga territories, a multifaceted approach is essential. Promoting sustainable agriculture that integrates biodiversity conservation with economic crops can reduce the ecological footprint of plantations. Strengthening legal protections for forest lands and Indigenous territories is crucial, ensuring these areas are recognized for their ecological and cultural significance. Empowering local communities through conservation initiatives and alternative livelihood programs can preserve traditional knowledge while providing economic stability. Restoration projects in degraded areas can rebuild biodiversity and ecosystem services, while educational campaigns can raise awareness about the long-term impacts of deforestation.

International collaboration can also amplify these efforts, driving policy changes and providing crucial support for sustainable development in the region. Indigenous Peoples'

involvement in Sustainable Development Goal (SDG) processes is notably limited, primarily due to a lack of awareness and insufficient opportunities for meaningful participation. This issue is compounded by restricted access to information on the SDGs and their direct impact on Indigenous communities, which leaves them vulnerable to external development projects that threaten their livelihoods and security. Moreover, the lack of data disaggregation by ethnicity in official statistics renders Indigenous contributions to sustainable development largely invisible, undermining efforts to address their specific challenges. To overcome these barriers, it is essential to increase awareness within Indigenous communities about the SDGs and ensure they have the tools and opportunities to actively engage in these processes. Enhancing data collection methods to include ethnicity will better highlight the unique challenges Indigenous Peoples face, ensuring their inclusion in the broader sustainable development agenda and fulfilling the SDGs' promise to leave no one behind. A crucial step is to recognize and incorporate Indigenous and traditional knowledge as a valid form of scientific knowledge within SDG processes. This integration not only honors the rich, time-tested wisdom of Indigenous communities but also enriches the broader scientific discourse with diverse perspectives essential for sustainable development.

Integrating spiritual ecology with modern environmental practices offers a nuanced approach to addressing the pressing challenges of deforestation, climate change, and biodiversity loss. By incorporating indigenous perspectives, these strategies become not only scientifically sound but also culturally and spiritually informed, fostering a holistic framework for sustainability. However, a significant challenge lies in the historical and ongoing marginalization of indigenous peoples' identities and cultural expressions. Institutions often fail to respect their ownership of knowledge and traditions, instead treating these as resources for external exploitation by governments, academics, and museums. Today, while many indigenous sites are valued for their cultural, scientific, and communal importance—some even gaining recognition as World Heritage sites—the deeper connections between these sites and the communities that preserve them often remain overlooked. This gap highlights the need to integrate cultural and ecological systems into conservation efforts, ensuring they honor both the natural world and the traditions that sustain it. The sacred groves of Kerala and Arunachal Pradesh exemplify this synergy. Spaces such as the Donyi-Polo grove and the kavus are not merely biodiversity hotspots; they represent the intertwining of spiritual reverence and ecological stewardship. These examples, along with Leslie Sponsel's insights into spiritual ecology, underscore how spiritual beliefs can serve as a foundation for environmental conservation. By embracing spiritual ecology, environmental strategies can move beyond immediate challenges to cultivate a deeper, enduring relationship between humans and the natural world. Bridging indigenous perspectives with modern conservation practices ensures ecological health while safeguarding cultural heritage for future generations. It is a pathway to sustainability that honors the interconnectedness of all life, reinforcing the idea that environmental stewardship is not just a scientific endeavor, but a cultural and spiritual responsibility.

Conclusion

In the face of escalating environmental challenges, the search for effective solutions increasingly draws upon diverse worldviews. Mamang Dai's novels, *The Black Hill* and *The Legends of Pensam*, provide a profound exploration of how spiritual and animistic perspectives offer alternative models for environmental stewardship. Through her rich narratives, Dai illuminates the deep connection between indigenous cultures and their natural surroundings, offering insights that are both timely and transformative. The indigenous communities depicted in Dai's work embody a holistic understanding of nature as a living, sacred entity. This perspective challenges the conventional divide between humanity and the environment, urging a reconceptualization of our role within the natural world.

The theories of scholars like Leslie Sponsel and Graham Harvey reinforce the notion that sacred spaces and traditional rituals contribute significantly to biodiversity conservation and ecological resilience (Sponsel, 2012; Harvey, 2005). These practices reflect a deep-seated respect for nature that modern environmental policies often overlook. In conclusion, addressing contemporary environmental challenges requires integrating indigenous and spiritual perspectives into our sustainability strategies. As exemplified in Mamang Dai's work, reconnecting with the sacred dimensions of our relationship with nature can significantly enhance our approach to environmental stewardship. Dai's narratives underscore the value of merging traditional wisdom with modern scientific understanding to develop more comprehensive and respectful solutions to the crises we face. By promoting a framework for conflict prevention, consultation, participation, benefit-sharing, and dispute resolution, particularly in relation to ancestral lands and natural resources, we can support the empowerment of indigenous communities. This approach not only conforms to international legal standards but also incorporates the profound insights offered by indigenous and spiritual perspectives. Embracing the sacred stewardship depicted in Dai's novels invites us to reconsider and enrich our environmental ethics, paving the way toward a more harmonious and sustainable future.

¹Department of English
MGSU, Bikaner.

star.shweta05@gmail.com

²Department of English
Govt. Dungar College, Bikaner
divya.jsh@gmail.com

References:

1. Berry, T. (2006). *Evening thoughts: Reflecting on Earth as sacred community* (M.E. Tucker, Ed.). Sierra Club Books.
2. Convention on Biological Diversity. (n.d.). *Country profile: India*. Secretariat of the Convention on Biological Diversity. Retrieved January 15, 2025, from <https://www.cbd.int/countries/profile?country=in>
3. Dai, M. (2006). *The Legends of Pensam*. Penguin Books.

4. Dai, M. (2014). *The Black Hill*. Penguin Books.
5. Dutta, B. M., & Konwar, J. (2023). Biodiversity profile of North-East India. *International Journal of Creative Research Thoughts*, 11(1). Retrieved from <https://www.ijcrt.org>
6. Gray, A. (1991). *Between the spice of life and the melting pot: Biodiversity conservation and its impact on indigenous peoples* (IWGIA Document No. 70). IWGIA.
7. Harvey, G. (2005). *Animism: Respecting the living world*. Columbia University Press.
8. International Work Group for Indigenous Affairs (IWGIA). (2023). *The Indigenous World 2023* (D. Mamo, Ed.). IWGIA.
9. International Work Group for Indigenous Affairs (IWGIA). (2024). *The Indigenous World 2024* (D. Mamo, Ed.). IWGIA.
10. Jain, A., & Das, A. (2022). North-East India: A unique biodiversity paradise unexplored or lost? *International Journal of Scientific and Research Publications*, 12(4), 112–124. <https://doi.org/10.29322/IJSRP.12.04.2022.p12417>
11. Jain, S. (2011). *Indigenous roots of sustainability in India: A cultural perspective*. Concept Publishing Company.
12. Kimmerer, R. W. (2013). *Braiding sweetgrass: Indigenous wisdom, scientific knowledge, and the teachings of plants*. Milkweed Editions.
13. Lee, L. V. (2013). *Spiritual ecology: The cry of the Earth*. The Golden Sufi Center.
14. Plumwood, V. (2002). *Environmental culture: The ecological crisis of reason*. Routledge.
15. Rohinikrishnan, R. (2019). *Kavus (sacred groves) of Kerala: A historical study of their tradition and culture* (Doctoral dissertation). Pondicherry University. Available at: <http://hdl.handle.net/10603/381719>
16. Sen, G. (1992). *Indigenous vision: Peoples of India, attitudes to the environment*. Sage Publications.
17. Shiva, V. (1988). *Staying alive: Women, ecology, and development*. Zed Books.
18. Singh, K. S. (1993). *The tribal societies of India: An anthropological perspective*. Manohar Publishers.
19. Sponsel, L. E. (2012). *Spiritual ecology: A quiet revolution*. Bloomsbury Academic.
20. Suzuki, D., McConnell, A., & Mason, A. (2008). *The sacred balance: Rediscovering our place in nature* (Updated ed.). Allen & Unwin. (Original work published 1997).
21. Sacred Earth Trust. (n.d.). *Sacred grove forest directory*. Retrieved January 17, 2025, from <https://sacredearthtrust.in/sacred-grove-forest-directory/>

Deconstructing Patriarchy: Zero Tolerance and Mindset Shift for Gender Justice

Surendra Kumar Yadawa

Abstract:

The Nirbhaya and the Kolkata incidents jolted the collective conscience of Indians. They demand stringent laws, and exemplary punishments to deal violence against women. Indeed, such steps are instrumental as deterrents but insufficient to create an environment of safety. A sense of legal obligation with a deep-seated human sensitivity can foster a genuine atmosphere of respect for women. A cultural shift brings a profound change in mindsets that could challenge patriarchal dominance while addressing the root causes of gender-based violence. As women strive for equal rights across all spheres, it's crucial to shift the male-dominated mindset and make public spaces more inclusive and accommodating for gender equality. A transformative approach is essential to challenge stereotypes and discrimination to reshape societal attitudes toward women. The article concludes that fostering such socio-cultural change and enforcing stringent laws (zero-tolerance) is crucial for creating an environment where women live with dignity, respect, and equal rights.

Keywords: Changing mindset; gender-neutrality; empathy; gender-sensitisation; deconstructing; speedy justice.

1. Introduction: Balancing dreams and Strengthening security

The Nirbhaya incident triggered nationwide outrage, exposing the systemic failure to safeguard women in India. Despite significant legal reforms following the J.S. Verma Committee's recommendations, the persistent violence against women reveals the limitations of punitive measures in addressing deep-rooted cultural and social dynamics. Patriarchal norms and systemic gender bias continue to undermine women's safety and equality, highlighting that stringent laws alone cannot dismantle entrenched structures of gender-based violence. In a rapidly evolving society, the aspirations of individuals, particularly women, are soaring as they strive for equality, freedom, and empowerment. However, these dreams are often hindered by persistent challenges related to safety and security. Gender-based violence, societal stereotypes, and entrenched patriarchal norms continue to obstruct progress toward a more equitable society. The need to strike a balance between empowering women to pursue their dreams and ensuring their safety has never been more critical. Strengthening security measures, while fostering an environment of respect and dignity is essential to

address this deeply disturbing issue. Without a transformative approach which protects and uplifts, achieving true equality remains elusive. The challenge lies in not only creating robust legal frameworks but also in cultivating a cultural shift that prioritizes both the security and empowerment of women.

Indeed, Indian women are fighting for a safe environment where they can give wings to their dreams. However, increasing violence against women in society is a matter of concern for both society and the law-enforcing agencies as well. Legal reforms are essential to curb violence against women, but this is not enough to create a safe environment for women. Here, a change in attitudes towards women is essential. This issue has deep-rooted causes, so solving it requires a multifaceted approach that combines strict law enforcement with gender-sensitisation. Consequently, we need to have laws in place that deter crimes and punish culprits, but we need to change the social norms and attitudes that contribute to violence. This includes sensitizing people about gender equality and respect.

The patriarchal mindset perpetuates fails to recognise women's rising status in society. The outlook, which views women as inferior to men, often fuels crimes against them, reinforcing harmful attitudes and behaviours that undermine gender equality. Women have high odds of experiencing spousal violence if living in a social ecology with unfavourable social norms, higher rates of domestic crimes, and a higher prevalence of underage marriage (Ahmad et al., 2021). This is due to several factors, including stigma, fear of retaliation, and lack of access to justice. Nowadays, as women increasingly occupy public spaces and leadership roles, men having stereotypes respond with resentment and frustration, because of the lack of accountability for perpetrators and the low rate of conviction, some individuals commit violence against women and evade punishment or receive lenient sentences, conveys a message that such acts are tolerable. This emboldens perpetrators and discourages victims from seeking justice (Aejaz, 2022). The study advocates an integrated approach that focuses on reshaping social attitudes, challenging patriarchal ideologies, and promoting a culture of inclusiveness and respect, along with legal measures. It emphasises the critical need to bridge the gap between legal frameworks and societal change by promoting zero tolerance for gender-based injustice and prioritizing mindset shifts. By exploring the interplay of patriarchal norms, cultural narratives, and institutional biases, this study proposes actionable strategies that combine legal enforcement with education and social reform. It contributes to the discourse on sustainable gender equality, urging a transformative approach to achieve a safer and more equitable society for women.

Reducing violence against women requires a two-pronged approach: changing mindsets and enforcing zero-tolerance:

Zero tolerance means having a clear and strong stance against all forms of gender-based discrimination and violence. This requires enacting and enforcing laws and policies that protect women and hold perpetrators accountable. This deals with violence against women while adopting strict policies and measures that leave no room for leniency or excuses when dealing with acts of violence or abuse. It entails immediate legal action, harsh penalties, and

exemplary punishment for all forms of gender-based violence, whether physical, emotional, or psychological.

Changing mindsets involves transforming the stereotypes and norms that perpetuate gender inequality. This can be done through education, awareness-raising, and social movements that promote gender equality. This approach aims to create a culture of accountability, protect victims, and deter potential offenders by reinforcing the message that violence against women is unacceptable under any circumstances. When these two approaches are combined, they can create a powerful force for gender justice. This can also help to change mindsets and create a more supportive environment for women.

This article searches for a possible synthesis of zero tolerance and gender sensitisation to tackle crimes against women and create an environment where women can get a level playing field in all walks of life.

2. A fusion of shifting mindsets

Gender equality is a fundamental aspect of human rights and social equity, aimed at reducing imbalances and disparities experienced by women based on their gender. Deeply ingrained societal norms often perpetuate discrimination against individuals and do not accept equal status roles, especially for women. Achieving gender justice requires a multifaceted approach that encompasses both changing societal mindsets and adopting a zero-tolerance policy towards gender-based discrimination and violence. Changing Mindsets is one of the critical challenges in achieving gender equality is the persistence of traditional gender stereotypes. Changing mindsets involves challenging these stereotypes and promoting more inclusive and egalitarian views of gender roles (Eagly & Wood, 2012).

A comprehensive gender education plays a pivotal role at all levels of the educational system to raise awareness about gender issues, promote critical thinking, and challenge stereotypes. Education is a medium to bring about change in mindset, which challenges the socio-political, economic and cultural factors prevalent in a society. It is naive to presume that education universally promotes institutional and value changes that are desired by policymakers (Chanana, 1990). Popular culture has a profound impact on shaping societal mindsets. A responsible media representation, the portrayal of diverse gender roles can positively influence public perceptions and challenge stereotypes (Zhou & Moy, 2007). Zero tolerance for gender-based discrimination and violence requires robust legal frameworks and mechanisms for reporting and addressing such incidents. Studies highlight the significance of laws and policies that criminalize gender-based violence and protect victims (Heise, 2011).

Comprehensive support services, such as hotlines, shelters, and counselling, are essential in implementing deterrent policies and access to these services can empower victims and provide the necessary resources to address gender-based violence effectively (Sikweyiya et al., 2020). Community engagement and advocacy are crucial in enforcing zero-tolerance policies. Engaging with local communities and promoting collective responsibility can foster a culture of accountability and discourage gender-based violence (Michau et al., 2015).

Enforcing strict zero-tolerance policies against gender-based violence and discrimination is crucial for ensuring accountability and deterring harmful behaviours. However, such policies alone are insufficient without addressing deeply entrenched gender stereotypes. Education and awareness play an equally vital role in challenging these stereotypes and fostering lasting cultural change. Without both punitive measures and a shift in societal attitudes, progress toward gender equality may stagnate. Therefore, integrating concrete action with mindset transformation is essential to creating a more inclusive, safe, and equitable society.

2.1 Alarming situation needs radical transformation

The horrific Nirbhaya case of 2012, followed by mass agitation, rocked the nation with such force that lawmakers were forced to strengthen laws and infrastructure that were meant to ensure such dreadful incidents would not be repeated. After the Nirbhaya incident, the UN Human Rights chief called “rape and violence against women in India” a “national problem”, which would need “national solutions” (Hindu, 2019). However, the increasing number of violence is painting a different story. According to National Crime Records Bureau statistics, A total of 4,45,256 cases of crime against women were registered during 2022, showing an increase of 4.0 per cent over 2021 (4,28,278 cases) (CRB, 2022). The NCRB report revealed a significant rise in crimes against women, with reported cases climbing from 3,71,503 in 2020 to 4,45,256 in 2022 compared to the 4,28,278 cases recorded in 2021. These included rapes, rape and murder, dowry harassment, kidnapping, forced marriage, trafficking, and online harassment. Regrettably, according to the data released by the National Crime Records Bureau in 2017, a total of 3.59 lakh cases of crimes against women were reported, a 6 per cent rise compared to 2016. Of this, assaults on women with intent to outrage her modesty comprised 21.7 per cent, and rape was 7 per cent (Hindu, 2018). The process of trials resulting in a conviction of the accused is a casualty in courts that are flooded with pending cases. However, rising cases show that more needs to be done to create a safe environment for women. Gender justice requires a radical transformation in the way society thinks about and treats women. Here, it is necessary to challenge the patriarchal norms and attitudes that perpetuate violence against women and other forms of gender inequality.

Gender justice needs a synthesis of changing mindsets and zero tolerance. Changing mindset requires educating the public about the harmful effects of gender inequality and challenging traditional gender roles. Zero tolerance means having a policy of no tolerance for gender-based discrimination and violence. When these two approaches are combined, they can create a more just and equitable society for all.

3. Socio-feminism

Feminists contend that in a patriarchal society, men have more political, economic, and social power than women; therefore, men can use violence as a way to subordinate women (Bograd, 1990). Individual attitudes also appear to be associated with the perpetration of violence against a partner (Basile et al., 2013a). Violence may be used by a male who wants to be dominant in a relationship but does not have a high level of education, wealth,

or professional status. How society creates a safe environment for women is a significant challenge. Law-enforcing agencies are bound to do their due course, but society cannot leave all work single-handedly to them. Here, the section that advocates a social order based on women's equal participation says that a zero-tolerance approach is the only acceptable course against increasing violence against women. Society always makes some inbuilt mechanism to control itself with the help of beliefs, traditions, norms, and conventions. Moral and ethical obligations do play an important role in controlling human behaviour. Indeed, society is also responsible for controlling its members' dysfunctional activities. It depends on how people respond to correct inappropriate behaviour. Gender sensitisation and justice demand a supportive, inclusive environment "While responding to crimes committed by perpetrators, shifts in mindsets and institutional cultures are needed to ensure that women's rights and needs are placed at the centre of domestic law and practice" (United Nations, 2018).

3.1 Transforming perspectives

Some people in society don't care about laws, criminal justice, or punishment; they don't care about belief systems. Any laxity on the side of the government in such a setting makes it difficult to deal with violence against women; the only viable solution is zero tolerance. The authoritative figure must send a clear message that will help develop attitudes. It will determine conduct patterns as well. The fact that the relatives of the girls in certain circumstances are reluctant to come forward because it is associated with the family's reputation and it is considered that if it is brought up, women's lives will become extremely tough and living a life of dignity and honour will become practically impossible is a huge concern. In such a situation, a change in mindset is very important, because unless the family members and the women themselves come forward to fight such things, it will be challenging to eliminate it.

3.2 Gender liberation

Gender liberation requires comprehensive efforts, beginning with gender education to challenge stereotypes and foster respect for women. Providing essential support services—such as counselling, shelters, and legal aid—is crucial for helping survivors rebuild their lives. Women must also be empowered to lead awareness campaigns and advocate for policy reforms. Governments need to invest in education, enforce stronger laws, and establish fast-track courts for timely justice. Networks like Gender at Work are vital in helping organizations analyse and transform gender relations to promote lasting equality within societies. Empowering women's groups is essential for driving systemic change (Rao & Kelleher, 2003). Awareness is key to protecting civil rights and ensuring women have equal opportunities in education, income, and autonomy. Educated women access better healthcare, secure jobs, and economic independence. Involving women in decision-making reduces exploitation, while equal pay and positions enhance national human capital and wealth, benefiting society as a whole "Group-based workshops with women and men to promote egalitarian attitudes and relationships; gender empowerment training for women and girls; economic/cash transfers; and community mobilization to promote egalitarian gender norms"

(WHO, 2019).

3.3 Breaking barriers

What options do we have for achieving true gender equality? Changing cultural mindsets and breaking societal barriers are key to creating a level playing field for women. Upbringing plays a crucial role in shaping behaviour, and schools can provide a safe environment for girls to explore their potential. A gender-sensitive curriculum, coupled with effective programs, fosters this change. Mindset shifts are necessary for both boys and girls to ensure long-term equality. A shared paternity and maternity leave, as practised in some countries, sends a clear message that men and women can equally share childcare responsibilities. Society must ensure that women and girls receive the education needed to fulfil their ambitions, free from obstacles. Mindsets must evolve to recognize that men and women can perform any profession and household duties equally. Only by changing perceptions and expectations can we dismantle barriers to true gender equality.

4. Behavioural change

While sex is a biological determinant, gender is a societal construct that creates distinctions in strength, ability, and social roles between men and women. Biology does not inherently discriminate, yet society often positions women as weaker and subordinate to men “Gender refers to the roles, behaviours, activities, and attributes that a given society at a given time considers appropriate for men and women. The social attributes and opportunities associated with being male and female and the relationships between women and men and girls and boys (UN Women, 2010).” Gender refers to the socio-cultural distinctions between men and women, encompassing the ways in which societies differentiate between them and assign various social roles (Bhasin, 2000). Gender sensitisation is instrumental in the change of behaviour and evolution of the community’s mindset towards women. It teaches the attitude of respecting women as equal to men. Challenging gender inequality must start at the school level, instilling the belief that men and women are equal by birth. Without addressing persistent biases, genuine equality remains unattainable. The National Commission for Women believes that “introducing Gender Sensitization and Legal Awareness Programme at school level would facilitate inculcating values of equality, inclusivity, and diversity, which are essential for building a healthy society among adolescent boys and girls” (NCFW 2020a). Increasing their literacy levels, providing useful information through different media, facilitating access to productive resources, and establishing women’s organisations in the locality—these efforts would help to achieve a higher level of gender awareness among women (Parveen, 2007).

5.1 Recognition of women’s abilities

Recognizing women’s contributions to family, society, and nation-building is essential for achieving true socio-economic progress. Women have significantly shaped our country’s development, yet their efforts often go unnoticed due to societal ignorance. Gender sensitisation can bridge this gap, ensuring women’s capabilities receive the attention they

deserve. As women grow more confident in their roles, it is vital to recognize that all economic activity operates within gendered relationships. This awareness can drive better policies to reduce gender inequality (Elson, 1993). Women have consistently demonstrated exceptional leadership, particularly during challenging times such as the pandemic. Their capacity for decision-making and governance has been evident throughout history, underscoring the importance of increasing women's participation in leadership roles. Expanding opportunities for women in leadership is crucial for fostering inclusive, resilient, and forward-thinking societies that benefit from diverse perspectives and approaches.

5.2 Level playing field

By creating a supportive socio-economic environment, gender discrimination can be reduced, empowering women to thrive. If women's opinions and suggestions are given importance to society's primary platform, it will bring its overall development. At the community level, women should be encouraged to play their roles equally (UNFPA, 2018). Male violence against an intimate partner is especially likely to be used as the ultimate resource to gain power and control if there is (or the male partner perceives that there is) a lack of or an imbalance in key resources (e.g., income, educational attainment, occupational prestige) favouring the other partner (Basile et al., 2013b). Programs for women's empowerment must be action-oriented, aiming to secure their rightful place in society. Civil society and institutions can foster accommodative habits, particularly among students, by promoting gender inclusivity. A women-friendly society requires a shift in mindset and behaviour, starting within families. Dedicated efforts are crucial in fostering environments where women's talents can thrive. Women themselves play a vital role in combating bias and discrimination, essential for achieving the UN's Sustainable Development Goals on gender equality and economic empowerment. Not only is it an end in itself but it has further been promoted for its potential to create positive externalities, including the reduction of intimate partner violence (IPV) (Eggers del Campo & Steinert, 2022). It is pertinent to create awareness among the common people about gender issues while giving correct communication of information to society, especially women. Steps will be taken to reach out to women through gender-sensitive campaigns and outreach programmes. The ultimate goal is to create an environment that will sensitize the whole society on a matter related to gender. Education is a catalyser and foundation for other freedom. An educated girl will be able to access better health services, later in life attain better jobs and earn a higher income (Saavedra & Barron, 2020).

6.1 Gender sensitisation

The surge in violence against women reflects deep-rooted patriarchy. Masculinity is not only about men's attitudes but also about how they behave to ensure their place of power in their families. Gender relations that exist in their social and familial context shape the notions of masculinity held by men (Nanda et al., 2014). Targeted educational programs for men and empowering women with legal knowledge are essential, along with challenging patriarchal

norms for equal opportunities and a just society. Gender sensitisation is the modification of behaviour by raising awareness of gender equality and its concerns (Sharma, 2017). It is not a personal trait, but rather theoretical knowledge and pedagogical training (Lahelma, 2011). Moreover, knowledge of laws relating to women and gender sensitization is crucial for the balanced development of young minds; it will also help build correct values, self-discipline, and national spirit (NCFW, 2020b). Anand (2009) explores integrating a gender perspective in social work education to help students ‘unlearn’ gender stereotypes ingrained through socialization. Gender sensitisation and empowerment programs during adolescence, when gender attitudes are formed, have the potential to diminish gender inequity (Vyas et al., 2020). Gender sensitivity among medical students improves over the curriculum, with women showing fewer stereotypes than men. Integrating gender-sensitive teaching can enhance knowledge, reduce bias, and improve patient care quality (Rrustemi et al., 2020). Raising both boys and girls with understanding and openness around sexuality breaks taboos and empowers women to report assault. Addressing the academic and business gender gap is key to true equality. A new gender-aware framework that provides a springboard for future research and policy that can begin to mitigate this gender gap (Brush et al., 2009), the problem cannot be tackled without addressing the basic question of power inequality under patriarchy more seriously (Ghosh, & Choudhuri, 2011).

6.2 Deconstructing patriarchy

Patriarchy, deeply embedded in societies, perpetuates gender discrimination by systematically excluding women from socio-economic, political, and religious power. This system reinforces their subordination, limiting their opportunities and decision-making roles. To dismantle this oppressive structure, mere recognition of inequality is insufficient. We must actively challenge patriarchal norms that perpetuate gender disparities, questioning practices that maintain male dominance across various spheres (UNFPA, 2018b). Equal access to opportunities, education, and freedoms for both boys and girls is essential to fostering a just and equitable society (Sider, 2007). Without gender parity in decision-making, the potential for true progress is stifled, as critical perspectives and voices remain excluded. Empowering women means more than symbolic gestures—it requires structural changes that ensure their participation in leadership, economics, and culture on an equal footing with men (Bulte & Lensink, 2019). By integrating equal opportunities with the dismantling of patriarchal structures, societies can advance toward a future where gender equality is not an ideal but a reality. To achieve true gender justice, social attitudes and systemic structures can be dismantled by eliminating the pervasive effects of patriarchy and gender inequality. Piecemeal solutions and policy enforcement alone are insufficient; instead, an integrated approach is needed that builds awareness, cultural change and strong mechanisms at the grassroots level. Central to this change is gender-sensitive education, which can challenge ingrained prejudices and reshape social attitudes. Economic empowerment alone cannot eradicate patriarchy, as its persistence can be seen even in financially stable families where cultural norms and expectations maintain subtle forms of discrimination. These socio-economic

dynamics underscore the need to address the multi-dimensional impact of patriarchy on career opportunities, domestic responsibilities and access to leadership.

7. Speedy justice

Reported cases of sexual assault are increasing year after year, a cause for concern, but the number of unreported cases could be much higher. Law enforcement authorities are carrying out their duties, but not to our satisfaction. In the case of sexual offences, timely filing of the charge sheet and gathering evidence are essential for the effective conviction of the perpetrators. In cases of sexual assault, the lack of a nearby forensic lab has made it difficult to collect and review forensic evidence, which has hampered court procedures. Enhancing police accountability and integrity is primarily meant to establish, restore or enhance public trust and rebuild the legitimacy that is a prerequisite for effective policing (UNDOC, 2011). The Nirbhaya fund was created in 2013, there is a need for diversified allocations to build more infrastructure across the country and to fund the use of the latest technology in investigations to facilitate a speedy trial. The courts and tribunals are ordinary Indians who might go for remedy and protection and are beset with massive problems of delay, cost, and ineffectiveness (Galanter & Krishnan, 2003). The Nirbhaya movement catalysed the enactment of the Criminal Law (Amendment) Act 2013, driven by the Justice J.S. Verma Committee's recommendations. This landmark amendment reformed the Code of Criminal Procedure, Indian Evidence Act, Indian Penal Code, and the Protection of Children from Sexual Offences Act, introducing capital punishment for rape (. The 2018 update extended death sentences to gang rape cases. In a notable instance, the fast-track court sentenced the accused to death in 2013, a decision upheld by the Supreme Court in 2017 despite subsequent appeals and mercy petitions (J S Verma et al., Jan 2013). Justice condemns inequalities and commands their remedy through the transformation of our domestic practices (Cohen, 1992). India's law enforcement requires urgent reform for swift action in rape cases. Public institutions must operate seamlessly to ensure efficient investigations. Strengthening these institutions is essential, as evidenced by Nari Adalats effectively addressing various domestic violence cases (Kethineni et al., 2016). Moreover, the National Commission of Women and every State's Women Commission, which are dedicated organs of the state for the cause of women, must take dynamic steps to eradicate gender bias mentality of the common people.

8. Conclusion

Deconstructing patriarchal norms and stereotypes is essential to achieving gender justice. The increased presence of women in public spaces highlights the critical demand for an environment that provides equality, respect, and dignity. When we challenge traditional gender norms, we seek to pave the way for a more accepting and inclusive society. This cultural change not only empowers victims to seek justice and support but also fosters a more informed and empathetic public through educational campaigns that promote gender respect. Implementing zero-tolerance policies is essential to hold perpetrators accountable

and ensure justice for women. By achieving gender justice, we open the door to greater opportunities for marginalized gender groups in education, employment, and leadership roles. Such measures not only promote inclusivity but also ensure that all voices are represented in decision-making processes. The effects of changing mindsets and adopting zero-tolerance policies can spur long-term social change, influencing generational attitudes and behaviours toward greater equality. The education system plays a vital role in preventing patriarchal ideas and stereotypes among youth. At the same time, it is important to actively challenge and eliminate various forms of patriarchal structures to promote a rational, innovative, and equitable society for women. The information revolution has increased awareness among women about their rights and roles. Through these efforts, we can create a more just and equal society where everyone is valued and empowered.

Department of Political Science
IMS Unison University
Dehradun-248009, Uttarakhand
skyinnervoice@gmail.com

References:

1. Aeijaz, T. (2022, Sep30). Bilkis Bano Case: Gujarat's Remission of Prison Sentence of 11 Convicts Turns Justice into A Farce, *Outlook*. <https://www.outlookindia.com/national/bilkis-bano-case-gujarat-s-remission-of-prison-sentence-of-11-convicts-turns-justice-into-a-farce-magazine-225044>
2. Ahmad, J., Khan, N., & Mozumdar, A. (2021). Spousal violence against women in India: A social-ecological analysis using data from the National Family Health Survey 2015 to 2016. *Journal of interpersonal violence*, 36(21-22), 10147-10181. <https://doi.org/10.1177/0886260519881530>
3. Anand, M. (2009). Gender in social work education and practice in India. *Social Work Education*, 28(1), 96-105. <https://doi.org/10.1080/02615470802404226>
4. Basile, K. C., Hall, J. E., & Walters, M. L. (2013). Expanding resource theory and feminist-informed theory to explain intimate partner violence perpetration by court-ordered men. *Violence Against Women*, 19(7), 848-880. <https://doi.org/10.1177/1077801213497105>
5. Bhasin, K. (2000). Understanding Gender. Kali for women. *New Delhi*. <https://www.arvindguptatoys.com/arvindgupta/kamla-gender1.pdf>
6. Bograd, M. (1990). Why we need gender to understand human violence. *Journal of Interpersonal Violence*, 5(1), 132-135. <https://doi.org/10.1177/088626090005001013>
7. Brush, C. G., De Bruin, A., & Welter, F. (2009). A gender aware framework for women's entrepreneurship. *International Journal of Gender and entrepreneurship*, 1(1), 8-24. <https://doi.org/10.1108/17566260910942318>
8. Bulte, E., & Lensink, R. (2019). Women's empowerment and domestic abuse: Experimental evidence from Vietnam. *European economic review*, 115, 172-191. <https://doi.org/10.1016/j.eurocorev.2019.03.003>
9. Chanana, K. (1990). The dialectics of tradition and modernity and women's education in India. *Sociological bulletin*, 39(1-2), 75-91. <https://doi.org/10.1177/0038022919900105>
10. Cohen, J. (1992). Okin on justice, gender, and family. *Canadian Journal of Philosophy*, 22(2), 263-286. <https://doi.org/10.1080/00455091.1992.10717280>
11. Eagly, A. H., & Wood, W. (2012). Social role theory. *Handbook of theories of social psychology*, 2, 458-476. https://www.researchgate.net/profile/Wendy-Wood-7/publication/285179532_Social_role_theory/links/58b8dbd4a6fdcc2d14d9a7ea/Social-role-theory.pdf

12. Elson, D. (1993). Gender aware analysis and development economics. *Journal of International Development*, 5(2), 237-247. <https://doi.org/10.1002/jid.3380050214>
13. Eggers del Campo, I., & Steinert, J. I. (2022). The effect of female economic empowerment interventions on the risk of intimate partner violence: A systematic review and meta-analysis. *Trauma, Violence, & Abuse*, 23(3), 810-826. <https://doi.org/10.1177/1524838020976088>
14. Galanter, M., & Krishnan, J. K. (2003). Bread for the Poor: Access to Justice and the Rights of the Needy in India. *HASTIngS LJ*, 55, 789. https://repository.uclawsf.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=3554&context=hastings_law_journal
15. Ghosh, B., & Choudhuri, T. (2011). Legal protection against domestic violence in India: scope and limitations. *Journal of family violence*, 26, 319-330. <https://link.springer.com/article/10.1007/s10896-011-9369-1>
16. Heise, L. (2011). What works to prevent partner violence? An evidence overview. https://researchonline.lshtm.ac.uk/id/eprint/21062/1/Heise_Partner_Violence_evidence_overview.pdf
17. Hindu (Editorial 2018, October, 18). "Gone girls: on Crime against women". *The Hindu*. <https://www.thehindu.com/opinion/editorial/gone-girls/article66022436.ece?homepage=true>
18. Hindu (Editorial, 2019, December 4). National shame: On gender sensitisation. *The Hindu*. <https://www.thehindu.com/opinion/editorial/national-shame-on-gender-sensitisation/article30152614>
19. J S Verma Committee, (Jan 2013): A Report of the Committee on Criminal Justice. https://adrindia.org/sites/default/files/Justice_Verma_Amendmenttocriminallaw_Jan2013.pdf
20. Kethineni, S., Srinivasan, M., & Kakar, S. (2016). Combating violence against women in India: Nari Adalats and gender-based justice. *Women & Criminal Justice*, 26(4), 281-300. <https://doi.org/10.1080/08974454.2015.1121850>
21. Lahelma, E. (2011). Gender awareness in Finnish teacher education: an impossible mission?. *Education Inquiry*, 2(2), 263-276. <https://doi.org/10.3402/edui.v2i2.21979>
22. Michau, L., Horn, J., Bank, A., Dutt, M., & Zimmerman, C. (2015). Prevention of violence against women and girls: lessons from practice. *The Lancet*, 385(9978), 1672-1684. [https://doi.org/10.1016/S0140-6736\(14\)61797-9](https://doi.org/10.1016/S0140-6736(14)61797-9)
23. Nanda, P., Gautam A., Verma R., Khanna A., Khan N., Brahme D., Boyle S., and Kumar S. (2014). *Study on Masculinity, Intimate Partner Violence and Son Preference in India*. International Centre for Research on Women. https://www.youthpower.org/sites/default/files/YouthPower/files/resources/Masculinity-Book_Inside_final_6th-Nov.pdf
24. National Commission for Women. (2020). 'Gender Sensitization and Legal Awareness Programme in collaboration with Education Boards for Class 11th and 12th across India'. http://ncw.nic.in/sites/default/files/Bookletpercent20Genderpercent20Sensitization_0.pdf
25. NCRB (2022). *Crime in India, National Crime Bureaus*, Ministry of Home Affairs. <https://www.ncrb.gov.in/uploads/nationalcrimerecordsbureau/custom/1701607577CrimeinIndia2022Book1.pdf>
26. NCFW (2019, September). Gender Sensitization Module, National Commission for Women, New Delhi. https://rodelhi.kvs.gov.in/sites/default/files/Module-percent20Genderpercent20Sensitization_3.pdf
27. Parveen, S. (2007). Gender awareness of rural women in Bangladesh. *Journal of International Women's Studies*, 9(1), 253-269. <https://vc.bridgew.edu/jiws/vol9/iss1/14>
28. Rao, A., & Kelleher, D. (2003). Institutions, organisations and gender equality in an era of globalisation. *Gender & Development*, 11(1), 142-149. <https://doi.org/10.1080/741954264>
29. Rustemi, I., Locatelli, I., Schwarz, J., Lagro-Janssen, T., Fauvel, A., & Clair, C. (2020). Gender awareness among medical students in a Swiss University. *BMC medical education*, 20, 1-8. <https://doi.org/10.1186/s12909-020-02037-0>
30. Saavedra, Jaime & Barron, Maria. (2020) Changing Mindsets, *On Education for Global Development*. <https://blogs.worldbank.org/education/changing-mindsets/>
31. Sharma, R. (2017). Gender sensitization: An appraisal of the roles of teachers and educational institutions. *International Journal of Humanities and Social Science Invention*, 6(6), 38-40. [https://www.ijhssi.org/papers/v6\(6\)/Version-4/G0606043840.pdf](https://www.ijhssi.org/papers/v6(6)/Version-4/G0606043840.pdf)

32. Sikweyiya, Y., Addo-Lartey, A. A., Alangea, D. O., Dako-Gyeke, P., Chirwa, E. D., Coker-Appiah, D., ... & Jewkes, R. (2020). Patriarchy and gender-inequitable attitudes as drivers of intimate partner violence against women in the central region of Ghana. *BMC public health*, 20, 1-11. <https://doi.org/10.1186/s12889-020-08825-z>
33. Sider, R. J. (2007). Gender and Justice Today. *Priscilla Papers*, 21(2). <http://surl.li/qigpm>
34. UN Women Training Centre (2017). *Training For Gender Equality and Women's Empowerment* [Catalogue 2017]. <https://trainingcentre.unwomen.org/mod/glossary/view>
35. UN Women (2010). OSAGI Gender Mainstreaming - Concepts and definitions. <https://trainingcentre.unwomen.org/mod/glossary/view.php?id=36&mode=letter&hook=G&sortkey&sortorder&fullsea>
36. UNDOC (2011). A comprehensive structure for effective police accountability, Handbook on police accountability, oversight, and integrity, *Criminal Justice Handbook Series*, pp. 14 https://www.unodc.org/pdf/criminal_justice/Handbook_on_police_Accountability_Oversight_and_Integrity.pdf,
37. UNFPA (2018), Adolescents, Youth and Gender, *United Nations Population Fund India*, p.14. [https://india.unfpa.org/sites/default/files/pub-pdf/UNFPApercent 20Profile_combined.pdf](https://india.unfpa.org/sites/default/files/pub-pdf/UNFPApercent%20Profile_combined.pdf)
38. UNICEF (2020). Strategy for Ending Violence Against Children. *The United Nations Children's Fund*. https://www.unodc.org/documents/justice-and-prison-reform/endVAC/Strategy_to_End_Violent_Against_Children.pdf
39. United Nations (2018). *Ending Violence Against Women, A Practitioner's Toolkit on Women's Access to Justice Programming*, p-17, https://www.ohchr.org/sites/default/files/Documents/Publications/PractitionerToolkit/WA2J_Module3.pdf
40. Vyas, A. N., Malhotra, G., Nagaraj, N. C., & Landry, M. (2020). Gender attitudes in adolescence: evaluating the Girl Rising gender-sensitization program in India. *International Journal of Adolescence and Youth*, 25(1), 126-139. <https://doi.org/10.1080/02673843.2019.1598450>
41. WHO (2019). *Violence against women, Intimate partner and sexual violence against women*, World Health Organisation. <https://trainingcentre.unwomen.org/mod/glossary/view.php?id=36&mode=letter&hook=G&sortkey&sortorder&fullsea>
42. Zhou, Y., & Moy, P. (2007). Parsing framing processes: The interplay between online public opinion and media coverage. *Journal of communication*, 57(1), 79-98. <https://doi.org/10.1111/j.0021-9916.2007.00330>

Renewable Energy and Its Role in India's Economic Growth: An Econometric Analysis

Mouneshwari G¹, H H Bharadi²

Abstract:

India's rapidly growing economy has driven a significant rise in electricity consumption due to factors like population growth, urbanization, and industrialization. Coal remains the dominant energy source, contributing around 70% of electricity generation. However, the government is actively promoting renewable energy to reduce reliance on fossil fuels and address climate change. Initiatives such as the National Solar Mission and National Wind Mission aim to shift the energy mix towards renewables. Challenges like power shortages, transmission losses, and infrastructure limitations persist. This study examines how growth in renewable energy consumption influences India's GDP and CO₂ emissions, using CAGR to identify trends and employing a correlation matrix and linear regression analysis on time-series data

Keywords: Electricity, Energy Resources, Consumption, Energy Demand, Power Generation

JEL Classification: Q2, Q3, Q4, P28 and P42

Introduction

In the face of the ever-growing challenges posed by climate change and the pursuit of sustainable economic development, the relationship between renewable energy consumption, Gross Domestic Product (GDP), and carbon dioxide (CO₂) emissions has become a central focus of economic research. Nowhere is this trinity of concerns more pertinent than in the Indian subcontinent, where rapid economic growth, coupled with an expanding population, underscores the critical importance of understanding how renewable energy adoption influences both economic performance and environmental sustainability. India's dynamic economic landscape and ambitious renewable energy targets have placed it at the forefront of the global transition towards a sustainable energy future. As one of the world's largest and fastest-growing economies, India's energy choices carry substantial weight in determining not only its own trajectory but also the global prospects for mitigating climate change.

According to the REN21 Renewables 2022 Global Status Report, India ranks fourth in the world in installed renewable energy capacity, fourth in wind power capacity and fourth in solar power capacity. At COP26, the country raised its goal of generating 500 gigawatts of

non-fossil fuel-based energy by 2030. This was an important promise as part of Panchamrit. India's installed non-fossil fuel capacity has increased by 396 percent in the past eight-and-a-half years, reaching more than 179,322 GW in 2023, about 43 percent of the country's total capacity. India recorded the highest annual growth rate of renewable energy additions in 2022 at 9.83 percent. The installed capacity of solar energy has increased 24.4 times over the past nine years, reaching 67.07 million kW as of July 2023. Installed renewable energy capacity has increased by approximately 128 percent since 2014.

India has set a target of reducing the carbon intensity of its economy by less than 45 percent by the 2030s, with a total of 50 percent of its installed electricity sourced from renewable sources and zero net carbon emissions by 2030. India aims to have an installed renewable energy capacity of 500 GW by 2030. Green hydrogen one of the vital renewable energies to be used for vehicles, India aims to generate 5 million tonnes during next 6 years. With 125GW of energy capacity. Nearly 57 solar parks getting ready of 39 GW and wind energy 30 GW in next 6 years. The ambitious transition from fossil fuels to clean energy required greater economic stability and growth. In this context, this study investigates the impact of energy consumption and economic growth on the sustainable growth of a nation.

Review of Literature

Renewable energy consumption has emerged as a critical topic in the context of sustainable development, economic growth, and environmental preservation. This review of literature aims to provide a comprehensive overview of the existing research on the impact of renewable energy consumption on economic growth and the environment. It seeks to analyse the multifaceted relationships between renewable energy adoption, economic prosperity, and environmental sustainability.

Renewable Energy and Economic Growth:

Positive Correlation: Numerous studies have reported a positive correlation between the consumption of renewable energy sources and economic growth. Investments in renewable energy technologies have been shown to stimulate economic activity through job creation, infrastructure development, and increased energy efficiency (Hartman et al., 2019).

Energy Security: A consistent supply of renewable energy reduces dependency on fossil fuels and foreign oil, enhancing energy security and stabilizing economies (Zhang & Cheng, 2018). This contributes to the resilience of economies during energy crises.

Innovation and Technological Advancements: Renewable energy investments often lead to innovation and technological advancements, which can foster economic growth by opening up new markets and business opportunities (Apergis & Payne, 2010).

Environmental Implications:

Greenhouse Gas Emissions Reduction: One of the most significant environmental benefits of renewable energy consumption is the reduction of greenhouse gas emissions.

Wind, solar, and hydroelectric power generate electricity with minimal or no emissions, contributing to climate change mitigation (López-Prol et al., 2017).

Air and Water Quality: The adoption of renewable energy sources has also been associated with improvements in air and water quality due to the reduced release of pollutants, particularly in comparison to fossil fuel-based energy production (Koh & Kim, 2017).

Biodiversity Conservation: Some renewable energy projects, such as wind farms, may impact local ecosystems and wildlife. Research in this area highlights the importance of careful site selection and mitigation strategies to minimize negative effects (Loss et al., 2013).

Challenges and Trade-offs:

Intermittency and Reliability: The intermittent nature of renewable energy sources like solar and wind can pose challenges to grid stability and reliability. This necessitates investment in energy storage and backup systems (Ruan et al., 2017).

Costs and Economic Viability: While renewable energy technologies have become more cost-competitive, the initial investment costs can still be high. The transition to renewables may require government subsidies or incentives to accelerate adoption (Jacobsson & Lauber, 2006).

Land and Resource Use: Some renewable energy installations require substantial land and resource use, potentially conflicting with conservation efforts or agricultural needs (Jones et al., 2015).

Research Gap

Despite significant advancements in understanding the relationship between renewable energy consumption, economic performance, and CO₂ emissions, several research gaps remain. One notable gap is the limited analysis of how specific policies and government initiatives directly influence the adoption of renewable energy and its subsequent economic and environmental outcomes. Additionally, there is a lack of sector-specific insights into how renewable energy impacts various sectors, such as residential, industrial, and agricultural sectors, in unique ways. The study also shows insufficient exploration into the influence of technological advancements, like energy storage and smart grids, on economic growth and emissions. Future projections and scenario analyses regarding the long-term impacts of renewable energy remain underexplored. Moreover, the socio-economic impacts, including job creation and income distribution linked to renewable energy investments, have not been fully addressed. The dynamics of transitioning from non-renewable to renewable energy sources and their combined effects are also not comprehensively studied. The role of renewable energy in enhancing climate resilience and adaptation strategies has not been given enough attention. Furthermore, research on public perception and behavioral economics related to renewable energy adoption is scarce. Finally, there is a lack of comparative analysis with other nations to contextualize India's progress within the global renewable energy landscape.

Rationale for the Study

This study seeks to delve into the intricate interplay between renewable energy consumption, GDP growth, and CO₂ emissions within the Indian context. At its core, the research aims to answer two fundamental questions:

1. The Economic Nexus: To what extent does the integration of renewable energy sources into India's energy mix influence its economic growth, as measured by GDP? This dimension explores the economic dividends and trade-offs associated with the transition to renewable energy.
2. The Environmental Dimension: How does the adoption of renewable energy technologies correlate with reductions in CO₂ emissions, contributing to India's commitment to combat climate change? Understanding this aspect is vital not only for environmental sustainability but also for fulfilling India's international climate pledges.

Objective of the study

1. Quantitatively assess how the growth in renewable energy consumption and economic performance, as measured by GDP, affect the environmental sustainability, as measured by CO₂ emissions, in India.

Methodology

In this paper, we have collected data on renewable energy consumption and CO₂ emission from Statistical Review of the World Energy report 2023 by Energy Institute which are sourced from International Renewable Energy Agency, International Energy Agency, US Energy Information Administration and World Development Indicators, the data for GDP at current price was collected from NSO, MOSPI, Government of India.

Using correlation and regression analysis we observed the relationship between variables such as energy consumption, carbon emission, and GDP. To check the impact on the renewable energy consumption and economic growth on CO₂ emission.

$$Y_t = \alpha + \beta_{xt_0} + \beta_{xt_1}$$

Data Collection: The data was collected for the 10 years between 2013 and 2022. Collect data on relevant variables, including:

Dependent Variable: Environmental Impact (e.g., carbon emissions).

Independent Variables:

1. Renewable Energy Consumption (in exajoules).
2. Economic Growth (Gross Domestic Product at current price).
3. Control Variables (No controlled variables used since the model was linear regression model).

Data Preparation:

Data was handled to process and clean the missing values, outliers of variables and inconsistencies. Then organized the data in spreadsheet for each variable.

Multiple Regression Model:

Formulate the multiple regression equation:

$$Y_t (\text{Environmental Impact}) = \alpha + \beta_1(\text{Renewable Energy Consumption}) + \beta_2(\text{Economic Growth}) + \varepsilon$$

Where:

Y_t is Dependent variable

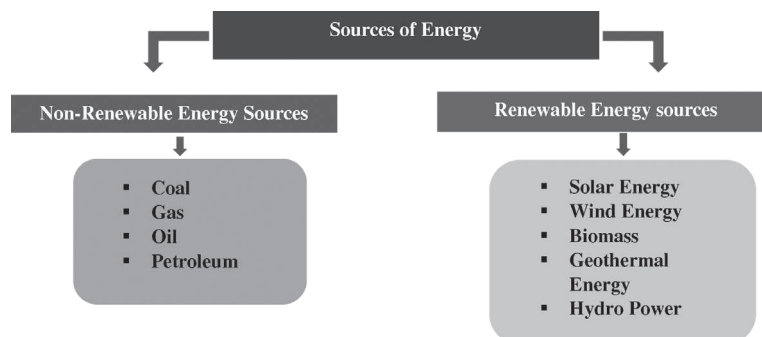
α is the intercept.

β_1 and β_2 are the independent variables.

ε is the error term.

Data Analysis in Excel:

To perform the multiple regression analysis, Microsoft excel was used, using "Data Analysis" in the "Data" tab regression analysis was performed with the model specified **Dependent Variable:** Environmental Impact. **Independent Variables:** Renewable Energy Consumption and Economic Growth.

Result and Discussion**Sources of Energy sources****1. Non-Renewable energy sources**

Non renewable energy sources or conventional sources or fossil fuel or commercial sources. This source has exhausted in nature when these sources are exhausted can't be provided.

- **Coal:** coal is dominate energy source in conventions energy sources, most of the electricity comes from the coal in India, coal use for different actives in the worldwide such as mainly use to coal electricity generations and cement production and chemical

production metal production etc. Production of coal was 893.19 MT during 2022-23, with a constructive growth of 14.8 percent. The energy generated out of coal was 205 GWh in 2023.

- **Oil:** it is come from the petroleum product, which is used to electricity generation and transport, generating heat, and used to vehicles and machinery. India is Crude oil depended on nation for different uses in the economy. Imported crude oil was 198 million tonnes during the fiscal, and its was 185 million tonnes last year. Imported low-sulphur crudes, marginally increased to 57.3 million tonnes during 2022-23 from 56.7 million tonnes last fiscal year, which is \$119 billion in value during 2022.
- **Gas:** it is also petroleum product, Natural gas mainly use for the electricity generation, heating and production propose in the industries, and transportation in the world. Cumulative natural gas production was 34450.27 MMSCM in India during 2022-23 fiscal year, which is 6 percent lower compared to targeted in this period, but 1 percent higher than production during last year.
- **Petroleum:** it is most important energy sources in the world, it is used electricity generation, transportation, industrial power etc. 30.49 Mt of crude petroleum was produced, which declined by 5.21 percent over the previous fiscal year.

Renewable Energy Resources

- **Solar energy:** Solar energy used to the electricity generation which is received by the earth from the sun. solar energy using the lighting, cooking, heating etc in household and used in agriculture proposes like water pumping, drying etc. India has 70,000 MW capacity of solar power generation, Rajasthan leading among all states in India. which contributes 17,839 MW, Gujarat 10,133 MW, and Karnataka 9,050 MW respectively while Madhya Pradesh 3,021 MW and Uttar Pradesh merely 2,526 MW solar energy capacity.
- **Wind energy:** Wind energy is another source of renewable energy it is also used to electricity generation. India is growing at faster rate is using wind energy for energy usage of renewable energy sources. India has vast coastline; India has installed power capacity of 41.666 GW of wind energy.
- **Biomass energy:** Biomass is the animal waste which is used to generate energy. Biomass in India is estimated to be available for use is 750 MMT annually and in addition 230 MMT available for use. India has grown at a CAGR of 4 per cent in biomass production which reached 10 GW in 2022.
- **Hydroelectricity energy:** It is a one of the renewable sources of energy, which is produced from fast flowing water. The amount of hydro electricity produced across India was 151.6-terawatt hours. In the South Asian country India is the 3rd largest producer as well as consumer of hydroelectricity in the world, with 400 gigawatts of installed generation capacity for national grid in India.

- Co-generation:** Co-generation is the process of fuel sources, such as natural gas, is used to produce both electricity and thermal energy in sugar mills. Potential of power generation through co-generation is about 3500 MW, and Maharashtra is producing 1250 MW energy capacity. Promotion of co-generation energy in sugar mills is one of the important schemes of India.
- Tidal energy:** Tidal is producing energy from tides as the mass of water moves incoming and outgoing. It can be used to generate electricity from the hydroelectric dams. It has not been prioritized in India, but India has estimated, tidal energy potential of 8,000 MW and alone Gulf of Cambay Gujarat has 7,000 MW, and in the Rann of Kutch it is 1,200 MW which is also in Gujarat, and Gangetic delta of the Sundarbans West Bengal has 100 MW.
- Geothermal:** Geothermal energy available from the hot interior of the earth. On an average, temperature increases by 300 c per km as one move towards the centre of earth. India has geothermal potential of producing 10,600 MW of power.

Figure 1: Share of Different Sources Non-Renewable energy for 2023 in Gigawatt

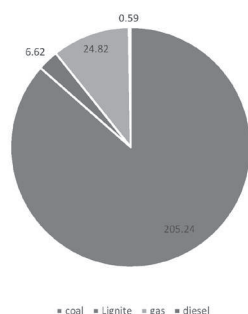
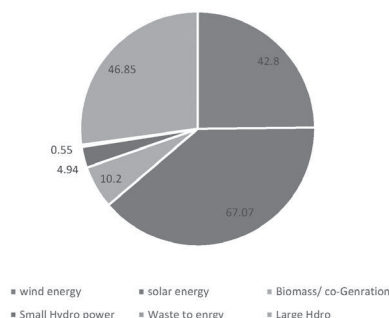
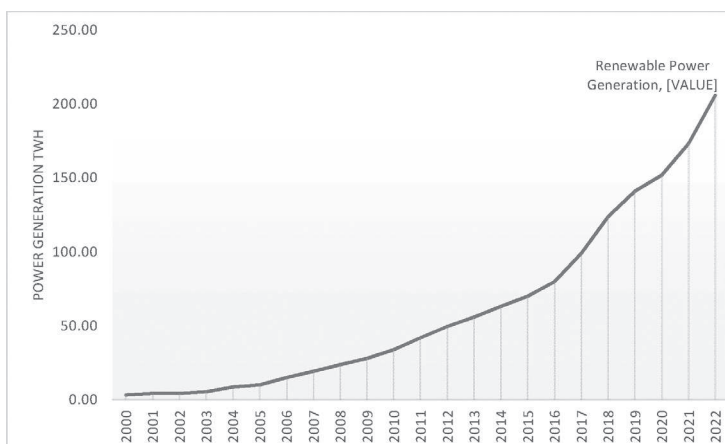


Figure 2: Share of Different Sources Renewable energy for 2023 in Gigawatt



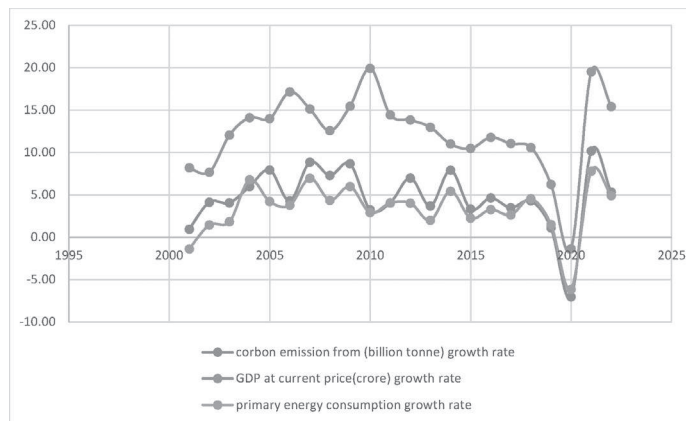
The figure of the different source is given in the figure 1 and 2 which depict the division of energy use between different sources in renewable energy and fusel fuel energy sources.

Figure 3: Growth of the Renewable Power Generation in Tera Watt Hours



With the growing demand for clean energy in the world, developed and developing countries, already started to move towards the renewable energy sources, and for country like India where the burden of growing economy is high and force to import more crude oil and coal to produce energy out of it, it is essential to generate more energy out of renewable sources in India, the growth in power generation is steadily increasing at 15.3 percent growth annually from 2012 to 2022, in 2022 growth was at its high with 18.9 percent increase in generation of power which we can see in figure 3.

Figure 4: Growth Trends of Energy consumption, GDP, and carbon emission



We can see in the figure 4 that there is positive correlation between the variable's energy consumption, GDP at current price and carbon emission from the energy use. In India's energy sources more than 80% depends on the fossil fuel source such as coal, oil, natural gas, petroleum, these sources are produced the CO₂ emission in atmosphere. CO₂ emission create the environmental degradation which causes climatical variation like increase the global temperature melt the ice, drought, adverse effect on human health.

Electricity is by supplementary use sectors such as in home, business, agriculture, industries, commercial sectors etc. CO₂ emission from electricity generation can be allocated to the sectors that use the electricity, looking at CO₂ emission by end use sector can help us understand power demand across and change in energy use over time. Coal grouping is more carbon intensive than burning gas or petroleum for generation electricity. While the electricity power sector includes the generation, transmission, and distribution of electricity therefore vast majority CO₂ emission coming from fossil fuel combination electricity.

Empirical Evidence from the Model

Multiple Linear Regression model was performed to see how well the measures of Renewable Energy consumption and GDP at current price can predict the CO₂ Emission

Table 1: Summary of the Regression Model

Regression Statistics	
Multiple R	0.976586639

R Square	0.953721464
Adjusted R Square	0.940499025
Standard Error	0.051424798
Observations	10

Regression Analysis Output Explanation: Regression Statistics

Summary of the data obtained by the model are given below.

Multiple R: This is the correlation coefficient. It tells the relationship of linear variable and the intensity of the relation. For example, a value of one means there is perfect positive relationship among the variable and a value of zero means there is no relationship at all with the variables. It is the square root of r squared we got 0.976586639 which is very strong linear relationship which also tells us the correlation coefficient.

R squared: is the Coefficient of Determination. It tells about regression line and its points laying on it. for example, 80 percent means that 80 percent of variation in the y-values around the mean are explained by x-values. In other words, 80 percent of the values fit the model. We got R Square value 0.953721464 which we multiply by 100 will be 97 percent, which mean 97 percent of the variance in CO₂ emission can be accounted for by the renewable energy consumption and GDP at current price, the other 3 percent may be caused by some other factors.

Adjusted R square: The adjusted R-square is adjusted number of terms in a model. Use Adjusted R2 instead of R Square if you have more than one x variable.

Standard Error: An estimated form of the standard deviation of the error term. It is not same as the standard error in descriptive statistics, coefficient is probably different from 0, if the coefficient is large compared to standard error in regression. We have 0.051424798 value it means that it is 0.051 billion tonnes deviated from the original values.

Table 2: ANOVA description of the regression and residuals

	Df	SS	MS	F	Significance F
Regression	2	0.381492	0.190746	72.12901	2.13E-05
Residual	7	0.018512	0.002645		
Total	9	0.400003			

Anova gives us the descriptive analysis of the predictive multiple regression analysis, and which is understood by the hypothesis test, for our model.

They are measured using the following formula:

Ho: $\mu = \mu_0$

Ha: $\mu \neq \mu_0$

Here,

Ho = null hypothesis

Ha = alternate hypothesis

Null Hypothesis: There is no linear relationship between the Renewable Energy consumption, GDP at Constant price, and CO₂ emission.

Alternative Hypothesis: There is a linear relationship between the Renewable Energy consumption, GDP at Constant price, and CO₂ emission.

Regression Analysis Output Explained: Anova.

- $SS = 0.381492$
- Regression MS = $0.381492 / 2$.
- Residual MS = $(0.002645 / 7)$.
- F: Overall F test for the null hypothesis which is 35.78061935
- **Significance F:** The significance associated P-Value. For Null Hypothesis $P > 0.05$ for Alternative Hypothesis it is $P \leq 0.05$. As we can see the P value for this model is considerably low to the alpha value 0.05, which is 0.0000213, so we can conclude that the multiple linear regression model is significant, and we reject the null hypothesis.

The output you get is depicts the ANOVA and basically gives significant values of hypothesis testing, It splits of sum of squares into individual components. If you're just doing linear regression. For example, to calculate R² from this table, you would use the following formula: $R^2 = 1 - \text{residual sum of squares} (0.018512) / \text{Total sum of squares} (0.400003)$. In the above table, residual sum of squares = 0.018512 and the total sum of squares is 0.400003, so: $R^2 = 1 - 0.018512/0.400003 = 0.04627$

Regression Analysis Output Explained: Interpret Regression Coefficients

Table 3: Interpretation of the Regression Coefficients

	Coefficients	Standard Error	t Stat	P-value	Lower 95%	Upper 95%	Lower 95.0%	Upper 95.0%
Intercept	1.207895266	0.139977	8.629253	5.6E-05	0.876903	1.538888	0.876903	1.538888
Renewable energy consumption	-0.596203775	0.219063	-2.72161	0.029696	-1.11421	-0.0782	-1.11421	-0.0782
GDP at current price	9.97987E-08	2.23E-08	4.470968	0.002898	4.7E-08	1.53E-07	4.7E-08	1.53E-07

This section of the table 3 gives specific information about the components you chose to put into your data analysis.

1. Coefficients: Gives the least squares estimates of the model.
2. Standard Error: Gives standard deviation of the model.
3. T Statistic: is used to test null hypothesis vs. the alternate hypothesis.
4. P Value: gives the result for the hypothesis test.

5. Lower 95%: The lowest limit for the confidence interval.
6. Upper 95%: The upper limit for the confidence interval.

The linear regression equation for the model

$$Y = mx_1 + mx_2 + b.$$

$$Y = \text{slope} * x + \text{intercept}.$$

For the above equation, the values would be approximately:

$$Y = -0.596203775 * X_1 + 9.9798 * X_2 + 1.207895266$$

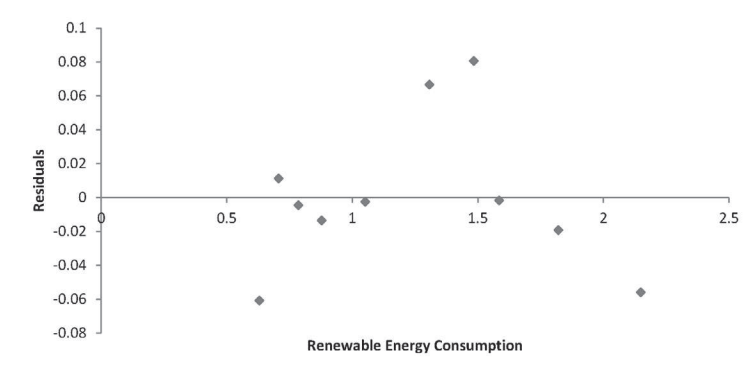
As we can see the P value for Renewable energy consumption and GDP at current price is considerably low to the alpha value 0.05, that is REC= 0.0296 and GDP= 0.00289 so we can say that the multiple linear regression model is significant and reject the null hypothesis.

Table 4: Predicted Residual Values

Observation	Predicted carbon emission from energy (billion tonne)	Residuals	Standard Residuals
1	1.95350196	-0.06088	-1.3424
2	2.030884067	0.011193	0.246793
3	2.114376753	-0.00454	-0.10016
4	2.220700185	-0.01347	-0.29692
5	2.286427168	-0.00262	-0.05768
6	2.314947707	0.066708	1.470884
7	2.32662265	0.080652	1.778333
8	2.239144039	-0.00167	-0.03689
9	2.48405174	-0.01934	-0.42654
10	2.651875486	-0.05603	-1.23542

The Table 4 represents the Predicted values of the tabled value we used for the analysis $Y = -0.596203775 * 0.62979175 + 9.9798 * 11233522 - 1.207895266 = 1.95350196$. Predicted carbon emission from energy, residual are the differences between actual values and predicted value.

Figure 5: Renewable Energy Consumption Residual Plot



Plotted figures 5 and 6 gives the picture of the scattered residual of the model for each observation in the observed data for the analysis of the renewable energy consumption and GDP at current price.

In the table 4 we can see Standard Residuals, which is standardized residual is the residual divided by an estimate of its standard deviation, we can think of these as Z scores, they are useful in identifying the outlier in the sample, generally the standardised residuals value $> \pm 3$ which indicate the value is outlier. As we can see in the table the model standardised residual is within $> \pm 3$ Values.

Figure 6: GDP at current price Residual Plot

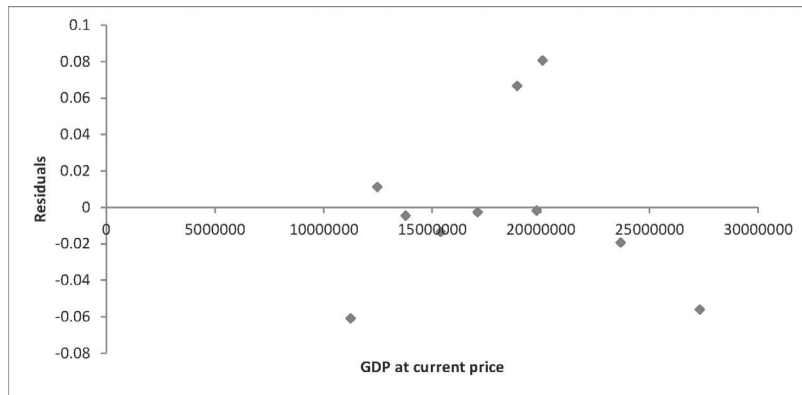
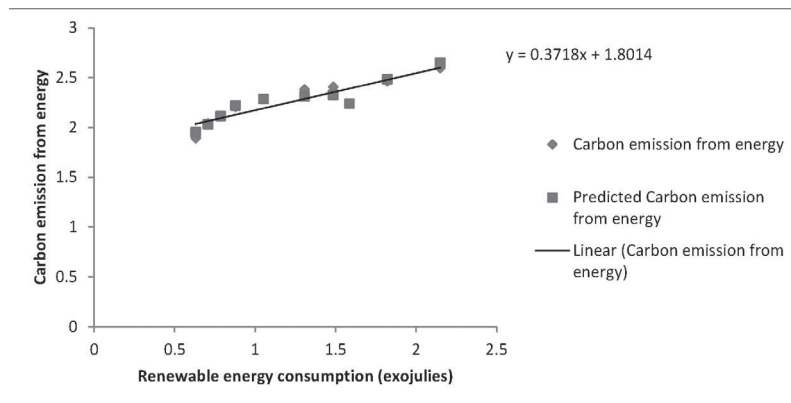
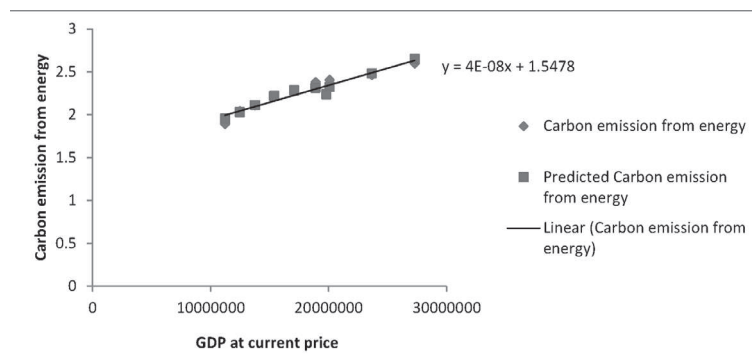


Figure 7: Renewable energy consumption Line Fit Plot

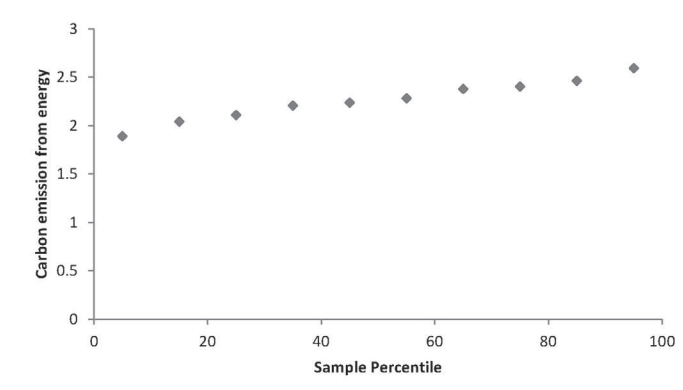


It is observed in the line fit figures of 7 and 8. It is obvious since the model found to be linear regression model and it is significant, we can see there is a trend line and equation of the model fitted in the figure for the variables measuring impact of renewable energy consumption and GDP at current price on the environment.

Figure 8: GDP at current price Line Fit Plot**Table 5: The Normal Probability Plot**

Percentile	Carbon emission from Energy
5	1.892621
15	2.042077
25	2.109834
35	2.207234
45	2.237471
55	2.283811
65	2.381656
75	2.407274
85	2.464707
95	2.595846

The normal probability plot is useful to assess the normality of the dependent variable data which is Y axis which suggests whether the Y data fits the normal distribution, essentially to see straight line, which we can see in the figure 9 that the data is having straight line which suggests that the values are normally distributed. It is essential to note that Y variable does not have to be normally distributed for a linear regression test.

Figure 9: Normal Probability Plot

Findings:

1. **Positive Economic Impact of Renewable Energy:** The study indicates that increased renewable energy consumption is positively correlated with economic growth, evidenced by a moderate to strong relationship between renewable energy use and GDP growth in India.
2. **Reduction in CO₂ Emissions:** A consistent trend of reduced carbon emissions aligns with higher renewable energy usage, showing the potential of renewables to mitigate environmental degradation.
3. **Sectoral Disparities:** The impact of renewable energy adoption varies across different sectors, with industrial and commercial sectors seeing more substantial benefits compared to residential areas.
4. **Insufficient Technological Integration:** While renewable energy has grown, technological innovations like energy storage and grid management remain underutilized, limiting potential efficiency gains.
5. **Energy Transition Challenges:** The transition from fossil fuels to renewables is ongoing but faces challenges related to infrastructure, investment, and policy gaps.
6. **Pandemic Influence:** The COVID-19 pandemic highlighted vulnerabilities in the energy supply chain but also accelerated some renewable energy initiatives.
7. **Global Comparison:** India shows significant progress in renewable energy adoption but lags behind developed countries like the US and Germany in terms of per capita consumption and technological integration.

Policy Suggestions:

1. **Strengthen Policy Frameworks:** Enhance policies supporting renewable energy, such as subsidies, tax incentives, and simplified regulations for renewable energy projects, to encourage broader adoption across sectors.
2. **Invest in Technological Advancements:** Promote investments in energy storage solutions, smart grids, and innovative technologies to improve the efficiency and reliability of renewable energy.
3. **Sector-Specific Initiatives:** Implement tailored policies to encourage renewable energy use in residential, industrial, and agricultural sectors to maximize economic and environmental benefits.
4. **Public-Private Partnerships (PPPs):** Foster partnerships between the government and private sector for large-scale renewable energy projects and infrastructure development.
5. **Enhanced Financial Support:** Develop funding programs and financial mechanisms to support small and medium enterprises (SMEs) and local communities in adopting renewable energy technologies.

6. **Education and Training:** Implement workforce development programs to equip individuals with the skills needed for renewable energy jobs, aiding in economic growth and job creation.
7. **Integrate Resilience Strategies:** Ensure policies incorporate climate resilience to safeguard energy systems from future disruptions, such as extreme weather events or global crises like pandemics.
8. **International Collaboration:** Engage in knowledge-sharing partnerships with developed nations to learn best practices and gain access to advanced technologies.
9. **Public Awareness and Incentives:** Increase public awareness campaigns and introduce consumer incentives to promote energy-efficient practices and the adoption of renewable energy systems at the household level.
10. **Data and Monitoring:** Improve data collection and monitoring mechanisms to track renewable energy adoption and measure policy impacts on both economic growth and emissions.

Conclusion:

This study underscores the transformative potential of renewable energy in shaping India's economic growth and environmental sustainability. It highlights the significant positive correlation between the adoption of renewable energy and the country's GDP growth, illustrating that investing in clean energy not only addresses climate change but also stimulates economic development. The findings reinforce the critical role of sector-specific strategies and advanced technological integration in optimizing renewable energy use.

However, the study also identifies key challenges, including inadequate infrastructure, limited technological adoption, and the need for stronger policy frameworks. While India has made commendable strides in renewable energy development, the comparison with developed nations such as the US and Germany reveals the gaps in per capita energy consumption and technological implementation.

The study concludes that for India to maintain a trajectory of sustainable growth, it must prioritize policies that encourage innovation, investment in new energy technologies, and cross-sector collaboration. By addressing these challenges, India can harness the full potential of renewable energy to drive long-term economic growth and contribute to global environmental goals, fostering a balanced approach to development that supports economic, social, and environmental well-being.

*Department of Studies in Economics
Karnatak University, Dharwad, Karnataka*

¹*mounishwarig1997@gmail.com*

²*hbbharadikud@gmail.com*

References:

1. Hartman, C., Lawson, A., & Harvey, D. (2019). Renewable energy and sustainable development: A review. *Renewable and Sustainable Energy Reviews*, 105, 482-496.
2. Zhang, X., & Cheng, X. (2018). Renewable energy, carbon emission, and economic growth. *Journal of Cleaner Production*, 195, 551-563.
3. Apergis, N., & Payne, J. E. (2010). Renewable energy consumption and economic growth: An evidence from a panel of OECD countries. *Energy Policy*, 38(1), 656-660.
4. López-Prol, J., Boso, À., Martínez-Chico, D., & Borrell, R. (2017). Environmental performance of renewable energy technologies: Life cycle assessment and policy implications. *Renewable and Sustainable Energy Reviews*, 69, 842-856.
5. Koh, S., & Kim, S. (2017). Renewable energy policies and greenhouse gas emissions: The case of the solar and wind energy industries. *Energy Policy*, 104, 201-211.
6. Loss, S. R., Will, T., & Marra, P. P. (2013). Direct mortality of birds from anthropogenic causes. *Annual Review of Ecology, Evolution, and Systematics*, 44, 99-120.
7. Ruan, Y., Wang, G., & Lu, L. (2017). Challenges and solutions for grid-connected renewable energy generation: A review. *Energy Procedia*, 105, 4113-4118.
8. Jacobsson, S., & Lauber, V. (2006). The politics and policy of energy system transformations: Explaining the German diffusion of renewable energy technology. *Energy Policy*, 34(3), 256-276.
9. Jones, T., Fthenakis, V., & Korman, L. (2015). Land use and environmental impacts of US utility-scale solar energy: Current state of knowledge and areas for investigation. *Renewable and Sustainable Energy Reviews*, 51, 812-822.

Temples in Shaping Socio-Economic Condition of Medieval Tamil Nadu

Priyanka Singh

Abstract:

This study examines temple institutions' economic and social impact in mediaeval Tamil Nadu during the Chola dynasty and subsequent periods under the Pallavas, Pandyas, and Vijayanagara rulers. Temples were important socio-economic centres that functioned as financial organisations, employers and landowners. Their significant endowments brought them immense wealth, which they used to fund communal initiatives, social welfare and agricultural growth. These institutions were also hubs of art, education, and culture, promoting the preservation and dissemination of Tamil traditions and religious practices. The temple culture fostered under the Cholas, Pandyas, and Vijayanagara rulers, profoundly influenced the evolution of Tamil society by fostering social cohesion, economic prosperity, and cultural preservation. This study provides a comprehensive analysis of multifaceted roles temples played in shaping the socio-economic fabric of Tamil Nadu, emphasizing their enduring contributions to communal harmony, economic stability, and cultural heritage. By examining these dimensions, the research underscores the lasting legacy of temple institutions in the historical evolution of Tamil society.

Keywords: Temple, Development, Condition, Social, Economic, Culture, Welfare, Community

Introduction

The temples have held significant importance in Indian society since ancient times, with each of the thousands of temples possessing a unique historical background.¹ Historically the temple is more prominent as a social and economic institution than purely religious one.² The Hindu temples reached their zenith of socio-economic influence during medieval Tamil Nadu, particularly under the imperial Cholas. This fame, wealth, honors and prominence also continued under the patronage of the later Pandya and Vijayanagar Hindu kings. There are about 32,000 public temples in Tamil Nadu, most of which are religious and, economically and socially significant.³ According to Champakalakshmi (2011), the Chola dynasty in particular played a crucial role in the spread of temple construction and the promotion of Tamil culture and religious practices. The Brihadeeswarar temple in Thanjavur, for example, is a testimony to the architectural and cultural peak of the Chola period. These dynasties not only built magnificent temples but also promoted the arts, education and public welfare

through these religious institutions.⁴ Primarily, the temples were a centre for spirituality, art, architecture and culture. In the mediaeval Tamil country, the temples became wealthy due to the enormous donations of land, gold and money. With this power of wealth, temples were the most powerful economic institutions that were not only sustained by the generous and continuous donations of the society but also enabled the other members to turn to them when they needed economic support. Temples were not only economic powerhouses, but also centres for the preservation and dissemination of culture. Nilakanta Sastri states, “The temple and the matha were the most significant recipients of gifts of land and money, playing an important role in shaping the economic and social life of the neighborhoods”.⁵

As a wealthy institution with extensive land holdings, the services rendered by the temple in the socio-economic sphere of mediaeval South India were manifold. With their surplus wealth, temples played a multifunctional role as landowners, promoters of cultivation and agricultural production, employers and bankers. Although the role of mediaeval temples was multifaceted, their critical roles as employers, bankers, and stimulators of agriculture through irrigation and reclamation will be considered in the following discussion. This is because land was a crucial factor in these activities.⁶ In modern times, temples influence various aspects of life in Tamil Nadu. They are central to promoting social cohesion, preserving cultural heritage and contributing to the local economy through tourism and related activities. The annual festivals and daily rituals attract millions of pilgrims and tourists, generating substantial revenue and providing employment opportunities to the local population.⁷ Swaminathan (2008) emphasises the economic impact of temple tourism in Tamil Nadu and points to its role in promoting the local economy and infrastructure development.

Historical Background of Temples in Tamil Nadu:

The historical development of temples in Tamil Nadu spans several centuries with major contributions from the Pallava, Chola, Pandya and Vijayanagara dynasties. The involvement of temples in developing settlements in Tamil Nadu is not a new phenomenon. This section offers insights into the historical connections between temples, dynasties and local development in Tamil Nadu. The temple is central to the rural economy in Tamilnadu and throughout South India before the expansion of British control in the eighteenth and nineteenth centuries.⁸ Historians emphasised the multiple economic functions of many mediaeval temples: landowners, employers, banks and consumers of goods and services.⁹

From the Pallava dynasty (sixth to ninth centuries CE) onwards, marked the beginning of significant temple construction in Tamil Nadu and the temples developed a growing influence on the emerging political and commercial networks in South India. The Pallavas pioneered stone architecture in South India and Tamilnadu. They built stone-carved temples and the transition to structural temples, the Kailasanathar temple in Kanchipuram and the Shore temple in Mahabalipuram, and Architectural innovations and stylistic elements introduced by the Pallavas.¹⁰ During the subsequent reign of the Chola kings (ninth to thirteenth centuries), who succeeded in bringing the entire in Tamil country under their

rule, small towns grew around temples in many parts of the region. This process broadly fits the definition of subaltern urbanisation because, according to James Heitzman, the urban development of these places around temples during this period were relatively independent, indigenous developments that were quite new in South India and whose development patterns were subject to few external influences. Build the Brihadeeswarar temple in Thanjavur, the Gangaikonda Cholapuram temple and the Airavatesvara temple in Darasuram.¹¹ Following these dynasties, the Pandya and Vijayanagar empires revived the temple culture and temple architecture in Tamilnadu and built the Meenakshi temple in Madurai or the Varadaraja Perumal temple in Kanchipuram or extended the existing temples.

Temples were also among the most important vehicles of agricultural development during the Chola and Vijayanagar periods, especially irrigation.¹² Neither the Chola nor the Vijayanagar kingdoms had an irrigation or public works department to look after temples and often undertook agricultural improvements and irrigation programmes. Apart from irrigation schemes, temples were also essential centre's that provided capital for the agricultural development of their area. The money belonging to the temple was often lent to village communities for development purposes but also to commercial firms and individuals.¹³

Additionally, temple gardens (nandavanams) cultivated medicinal plants essential for traditional Ayurvedic and Siddha medicine, supporting the health and well-being of local communities. These temple gardens played a significant role in supporting the health and well-being of surrounding communities by providing essential remedies and support. Additionally, temple priests or healers associated with the temples often offered medical guidance to those in need. The temple complexes also included rest houses, known as *choultries*, which served dual purposes: providing accommodation for travellers and pilgrims and functioning as recovery centre's for the sick. Epigraphical evidence indicates that certain temples allocated funds to cover the salaries of physicians and apothecaries, thus positioning themselves as early models of community healthcare institutions.

In addition to promoting art and architecture, temples were also centres of education. They housed schools and provided a platform for the study of scriptures, literature and science. Scholars, poets and philosophers met in the temples to exchange knowledge and hold intellectual discussions. These intellectual activities contributed to the enrichment of Tamil literature and philosophy and left a lasting legacy.

Contribution of Temples in Determining Social Landscape:

The temples were the integral to shaping daily life in the Hindu community - religious, cultural, educational and social. The temples in mediaeval Tamil Nadu played an essential role in shaping the region's social and cultural landscape. These religious institutions were not only centre's for spiritual activities but also place for social interaction, education, art and public welfare. Their influence extended beyond the religious sphere, permeating various aspects of daily life and contributing to the development of mediaeval Tamil society. Kesavan Velluthat has emphasized the socio-economic role of temples in his work "The

Early Middle Ages in South India".¹⁴ According to him, the temple preserved the morals of society and the religious faith of the people. Burton Stein also held the view that the temples of the moral order of mediaeval and modern South Indian society. The temple as a religious institution should become the centre of social activities. Thus, it also contributes to the economy and is supported by the benevolence of the spiritual society.¹⁵ In the newly "formed caste society, the temple served as an integrating factor that united the high and the low in service and drew the various castes and lower castes to itself as customers.

The temples played a central role in promoting social cohesion and community activities. The patron deity of the village is a goddess who is celebrated in an annual festival that usually brings together the different social segments of the village—the central role of these village goddesses and their annual festivals in creating a symbolic village unity.¹⁶ The temples organised various festivals and events that brought people together and fostered a sense of community and social cohesion. Festivals like Panguni Uthiram, Navaratri and Vaikunta Ekadasi were celebrated with extensive participation and were significant social events.¹⁷ Temples also played a decisive role in coping with disasters in times of famine, drought or war. Inscriptions on the temple walls point to the establishment of granaries on the temple grounds, which ensured a continuous supply of food in times of crisis. The temples organised communal meals, especially during festivals, to ensure that the poorest sections of the population did not go hungry. These institutions also served as safe havens during conflicts and offered refuge to those displaced by war or invasion.

The temples often served as the setting for significant life events such as marriages, naming ceremonies and other passage rites, reinforcing their role as the centre of social life. They were also the meeting places for scholars and Vedic scholars. Important religious testaments and epics on various aspects of human life and mythology, from education and art to renunciation and God-realisation, were discussed here by specialists in the field. The kings and nobles met with the citizens in temples, and even coronations and victory celebrations of kings were held in temples.¹⁸ Temples in Tamil Nadu held significant importance in disaster management during famine, drought, or warfare. Inscriptional records reveal the presence of grain storage facilities within temple premises, which ensured a consistent food supply for communities during times of crisis. Additionally, temples organized communal meals, particularly during religious festivals, to guarantee that the most vulnerable sections of society had sustenance. These sacred institutions served as safe havens during periods of conflict, offering refuge to individuals displaced by wars or invasions, thereby contributing to the welfare and resilience of local communities.

Temples were also the centre's for official activities. Hospitals were often located in the temple precincts. The mamhas or monasteries attached to the temples were almost canters of selfless service. The monks cared for the poor, nursed the sick and suffering, comforted the afflicted, and set up schools to educate children and young people.¹⁹ In short, temples were not only places of worship but also places where socio-cultural life was reflected. The word "temple" contains the essence of village or town life.

Contribution of Temples in Determining Economic Condition:

The Indian temples were or are an important economic centre of the state and each temple was an important economic powerhouses. The temples functioned as economic activity centre's and influenced various aspects of the economy, including agriculture, trade, crafts and resource management. The renowned historian K A Nilakanta Sastri, in his famous work "The Colas", emphasises the economic function of the temple as a landowner, employer, consumer of goods banker etc.²⁰ The finances of a temple are complex. A typical temple's income can come from various sources, such as offerings, payments for special services, concessions, and usufruct and land leases and donations. Religious donations were made by kings, secular donors and Brahmins to generate revenue for the maintenance of the temples and the holding of festivals in honour of the deities.²² The lands granted to the temple had two functions: (1) to generate an income with which to maintain a particular ritual service on behalf of the donor of the land; (2) to provide a productive place to invest funds granted to the temple for the performance of services on behalf of the donor of the money.²³

In ancient time the employment opportunities in the temples needed to be improved. However, large religious institutions like the Tanjavur Brihadisvara temple were built during the Chola imperial period and after that their construction and maintenance employed numerous workers.²⁴ This temple architecture has given work to many people, as they needed people for construction, maintenance and daily operation. They employed workers to build temples, artisans for arts and crafts, sculptors and many servants to deal with the various activities of the temple. To prove this, A. Appadorai writes that "the position of the temple as an employer, providing employment and livelihood to many people, is most striking in this context."²⁵ Temple construction and maintenance provided work for several architects and artisans who outdid each other in bold planning and skilful execution. The great temples offered permanent employment to several priests, musicians, dancers, cooks, and many other servants. According to D. Dayalan, the temple played an important role in socio-economic life as an institution that employed many people. It thus became one of the most critical employment sources for the people and the state. The mediaeval temples provided many employees and paid them directly or indirectly with land. The employment opportunities that the temples offered society thus had a direct impact on the economic life of society. The employment opportunities created by the temples contributed significantly to providing for the local population and promoting economic growth. Therefore, the temples in mediaeval Tamila were not just places of worship. They occupied an essential place in the socio-economic life of the people.²⁶

Since every temple had a treasury, it served the purpose of a bank. The large donations of land and gold given to the temple by the various donors of society made the temple one of the wealthiest institutions. Many donors, from the royal family to individuals, donated gold and money to the temples. Due to the availability of vast amounts of money, Indian temples fulfilled an economic function as a bank, which helped the agrarian society at that time. Regarding the economic function of temples as bank is concerned; B.K.Pandeya argues

that temples functioned as money lenders but not as banks. He further states, "The temples of the early Period did not serve as a modern bank but as its prototype."²⁷ The following are the key roles that a temple plays as a model bank:

- It lent money to private organisations and village assemblies with or without collateral.
- Farmers borrowed money from the temple treasury whenever they needed to carry their own cultivation.
- Money was also lent to private individuals for essential purposes. If they could not repay the loan, they sold part of their land to pay off their debts.
- Parents of girls who wanted to marry off their daughters but were in a desperate situation borrowed sums of money to cover the costs of their daughter's weddings.
- The temple treasury helped the needy riots by selling part of the temple land and using the amount for the wedding to repair the village cisterns when they broke down.
- The funds for the maintenance of the irrigation systems came from various sources, and as a quasi-private institution, the temples' share in this respect was naturally considerable. Wealthy temples that had surplus funds and landed property directly or indirectly undertook to repair or renovate tanks for public use.²⁸

The temples of Tamil Nadu were instrumental in regulating trade practices. Trade guilds like the Ayyavole and Manigramam worked under the auspices of the temples and adhered to ethical guidelines influenced by religious principles. The temples acted as arbitration centre's to settle disputes between traders and ensured fair practices. Temple festivals were important commercial events that attracted merchants from distant regions and boosted the local economy. The Indian temples also extended a helping hand to non-Brahman village communities, small farmers and individuals. Though, in many cases, the temples acquired the lands instead of the money they lent, the timely financial help provided by the temples to people in need in times of drought and famine and without government support should be noticed.²⁹

Conclusion

The temple has assumed great importance in the life of the Indian people from the past times. It is considered too old, and each of the thousands of temples has a history. Temple is more important as a social and economic institution than a religious one. Hindu temples peaked their influence on the socio-economic life of mediaeval Tamil Nadu, especially under the imperial Cholas. This fame, wealth and honour continued under the patronage of the later Pandya's and Vijayanagar's Hindu kings.

Temples in medieval Tamil Nadu were not only places of worship but were also crucial to the economic and social fabric of the region. They were essential landowners, employers and financial institutions and promoted agricultural and economic development through their extensive land holdings, wealth and influence. The diverse roles of temples in mediaeval Tamil Nadu emphasise their importance in shaping the socio-economic landscape of the

region. The temples served as centres of spiritual life and as pillars of economic stability and growth. They influenced various aspects of daily life and contributed to the overall development of Tamil society. Understanding these contributions provides valuable insights into the interplay of religion and economy in this historical context. It highlights the enduring legacy of temples in the socio-economic history of Tamil Nadu.

CSSEIP

JNU, New Delhi

prrajput39055@gmail.com

References:

1. Rajan, K. M. (2019). Multifaceted role of temples in medieval South India. In R. K. Mohanta (Ed.), *Redefining India*, Delhi: Kumud Publications, p.84.
2. Sastri, K. A. Nilakanta. (1972). *The Pandyan Kingdom*. Madras: Swathi Publications, pp. 56-76.
3. Presler, F. A. (1983). The structure and consequences of temple policy in Tamil Nadu, 1967–81. 56(2), p. 234.
4. Michell, G. (1988). *The Hindu temple: An introduction to its meaning and forms*. Chicago: University of Chicago Press, pp. 100-115.
5. Sastri, K. A. Nilakanta. (1964). *The culture and history of Tamils*. Calcutta: Firma K.L. Mukhopadhyay Publishers, 2, pp. 356-357.
6. Kavitha, M. (2017). Socio-economic functions of temples during medieval Tamil country (11th–16th century AD). *International Journal of Business and Management Invention*, 6(7), p.18.
7. Trouillet, P.-Y. (2017). Hindu temples and development of localities in Tamil Nadu (South India). In E. Denis & M. H. Zerah (Eds.), *Subaltern urbanisation in India: An introduction to the dynamics of ordinary towns*, Delhi: Springer, p. 4.
8. Ibid.
9. Stein, B. (1960). The economic function of a medieval South Indian temple. *The Journal of Asian Studies*, 19(2), pp.163–176.
10. Branfoot, C. (2002). Expanding form: The architectural sculpture of the South Indian temple, ca. 1500–1700. *Artibus Asiae*, 62(2), pp.189–245.
11. Orr, L. C. (2007). Cholas, Pandyas, and ‘imperial temple culture’ in medieval Tamil Nadu. In A. Hardy (Ed.), *The temple in South Asia*, New Delhi: British Association for South Asian Studies, 2, pp. 83-104.
12. Stein, B. (1960). The economic function of a medieval South Indian temple. *The Journal of Asian Studies*, 19(2), pp. 163–176.
13. Trouillet, P.-Y. (2017). Hindu temples and development of localities in Tamil Nadu (South India). In E. Denis & M. H. Zerah (Eds.), *Subaltern urbanisation in India: An introduction to the dynamics of ordinary towns*, Delhi: Springer, p. 4.
14. Dayalan, D. (1992). *Early temples of Tamil Nadu: Their role in socio-economic life (c. AD 550–925)*. New Delhi: Harman Publication House, pp. 154-162.
15. Dayalan, D., op.cit., p.162.
16. De Neve, G. (2000). Patronage and ‘community’: The role of a Tamil ‘village’ festival in the integration of a town. *Journal of the Royal Anthropological Institute*, 6(3), p.503.
17. Champakalakshmi, R. (2011). *Religion, tradition, and ideology: Pre-colonial South India*. Oxford: Oxford University Press, pp. 50-55.
18. Rajan, K. M. (2011). Multifaceted role of temples in medieval South India. In R. K. Mohanta (Ed.), *Redefining India*, Delhi: Kumud Publications, p. 91.

19. Ibid.
20. Rajan, K Mavali, op.cit., p. 92.
21. Presler, F. A. (1983). The structure and consequences of temple policy in Tamil Nadu, 1967–81. *Pacific Affairs*, 56(2), p. 239.
22. Trouillet, P.-Y. (2017). Hindu temples and development of localities in Tamil Nadu (South India). In E. Denis & M. H. Zerah (Eds.), *Subaltern urbanisation in India: An introduction to the dynamics of ordinary towns*, Delhi: Springer, p. 4.
23. Stein, B. (1960). The economic function of a medieval South Indian temple. *The Journal of Asian Studies*, 19(2), p.164.
24. Kavitha, M. (2017). Socio-economic functions of temples during medieval Tamil country (11th–16th century AD). *International Journal of Business and Management Invention*, 6(7), p.18.
25. Michell, G. (1988). *The Hindu temple: An introduction to its meaning and forms*. Chicago: University of Chicago Press, pp. 110-115.
26. Kavitha, M, op.cit., p. 19.
27. Rajan, K Mavali, op.cit., p. 96.
28. Appadorai, A. (1990). *Economic condition in South India (1000–1500 A.D.)*, Madras: University of Madras, 1, pp. 275-276.
29. Rajan, K Mavali, op.cit., p. 97.

ISSN 0974-0066



डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सागर (मध्यप्रदेश) - 470 003

दूरभाष : 91-7582-264455

ई-मेल : madhyabharti_ss@dhsgsu.edu.in

